



कोटा राज्य का इतिहास

लेखक

स्व० श्री जगदीशसिंह गहलोत

एम आर ए एस, एफ आर जी एस

भूतपूर्व अधीक्षक

पुरातत्व व सप्रहालय विभाग, जोधपुर

सम्पादक

श्री सुखवीरसिंह गहलोत, एम ए (हिन्दी व इतिहास)

श्री जी आर. परिहार, एम ए (इतिहास व राजनीति)



प्रकाशक

बालकृष्ण पट्टनायक

हिन्दी साहित्य मन्दिर

गङ्गातट निवास मेड़ती बरवाबा

बोबपुर.

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित हैं ।

वर्ष १९६६ = कृत्त १९६६

कोटा राज्य



भौगोलिक व आर्थिक विवरण

नाम—आधुनिक राजस्थान के पांच डिवीजनो में कोटा डिवीजन भी एक है। इसमें भूतपूर्व राजपूताने की ३ रियासतें—कोटा, बून्दी व झालावाड़ शामिल हैं। कोटा राज्य राजपूताना प्रान्त के दक्षिण पूर्वी भाग में स्थित है। इस राज्य की राजधानी कोटा का नाम कोटिया नाम के भील नेता के कारण पडा और इसी से इस राज्य का नाम कोटा है।

सीमा—इस राज्य के उत्तर पश्चिम में चम्बल नदी है जो इसे बून्दी राज्य से अलग करती है। इस राज्य के उत्तर में जयपुर और टोक राज्य, पश्चिम में बून्दी और उदयपुर राज्य, दक्षिण-पश्चिम में इन्दौर, झालावाड़ राज्य और ग्वालियर राज्य की आगरा तहसील है, दक्षिण में खिलचीपुर और राजगढ़ राज्य, और पूर्व में ग्वालियर राज्य और टोक राज्य की छवडा तहसील है। इस राज्य का आकार चतुष्पद के समान है।

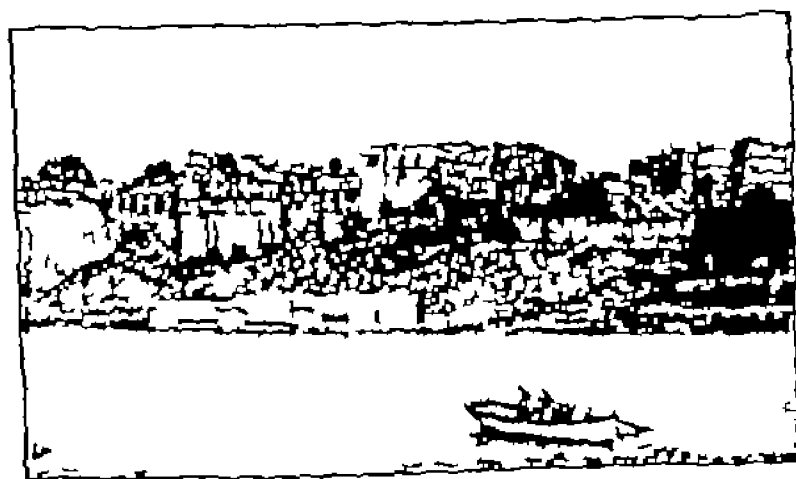
विस्तार—इस राज्य का क्षेत्रफल (आठ जागीर की कोटरियों सहित) ५,७१४ वर्ग मील है। यह २४ अंश, २७ कला तथा २५ अंश ५१ कला उत्तरांश और ७५ अंश ३७ कला तथा ७७ अंश २७ कला पूर्व रेखांश के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक—कोटरी इद्रगढ़ के उत्तरी सिरे से निजामत मनोहरथाने के दक्षिणी सिरे तक—लगभग ११५ मील और अधिक से अधिक चौड़ाई पश्चिम से पूर्व तक—निजामत लाडपुरा के पश्चिमी सिरे से निजामत शाहपुरा के पूर्वी सिरे तक—११० मील है। इस राज्य में एक नगर, ४ कस्बे और २,५२५ गाव हैं।

पहाड़—कोटा राज्य का अधिकतर भाग पहाड़ी है। ये पहाड़ ज्यादातर दक्षिण की ओर हैं। ये निजामत लाडपुरा के दक्षिणी कोने में आरम्भ होकर

१ कोटा राज्य का भौगोलिक व आर्थिक विवरण १९४७ के अनुसार है जब कि यह एक अलग इकाई था।

निजामत खेचट और प्रसनावर की उत्तरी सीमा बनाते हुए निजामत हकखेरा बकानी मनोहरमाना और छीपाबड़ोद में फैल हुए हैं। ये पहाड़ मासबा धार के उत्तरी भाग में हैं। यों कोटा राज्य का क्षेत्र प्राचीन काल में मालवा का ही एक भाग था। पहाड़ी भाग सम्पूर्ण राज्य का चौथाई भाग था। ये पहाड़ प्रसवसी और विन्ध्याखल पर्वत का हिस्सा हैं। इनकी एक ऊँची चोटी साबपुरा तहसील के दक्षिण में समुद्र की धरातल से १६०६ फुट ऊँची है। मालवा जाने का रास्ता इन पहाड़ियों में से ही होकर है। सबसे अच्छा व सुगम रास्ता निजामत खेचट के उत्तर पूर्वी भाग में मुमन्वरा (वरा) घाटी है। यही रेल मार्ग इसी घाटी में से होकर निकला गया है। इस पर्वत श्रृंखला की सम्बाई ६० मील के लगभग है। उत्तर की ओर इन्द्रगढ़ की पहाड़ियाँ हैं जो १५ फुट के लगभग ऊँची है। सबसे ऊँची पहाड़ी इस राज्य के पूर्व में घाटवाप क्षेत्र में है जो मामूली की पहाड़ी कहलाती है और १८०० फुट ऊँची है। ये पहाड़ वने जगलों से घिरे और झरियाँ से ढके हैं।

नदियाँ—इस राज्य की मुख्य नदियाँ चम्बल (प्राचीन नाम चर्मणवती) कासी सिंध और पार्वती हैं जो बारहों महीने बहती हैं। अन्य छोटी नदियाँ घाहू परवन मण्डेरी और कूर्ना हैं। ये सब नदियाँ उत्तर या उत्तर पूर्वी दिशा में



बहती हैं। चम्बल इन नदियों में सब से बड़ी और मुख्य नदी है। कोटा राज्य में यह लगभग ६ मील बड़ी है। इस नदी में १६७ फुट गह्रा तथा १२ फुट ऊँचा एक बांध कोटा नगर के पास बनाया जा रहा है। इससे राजस्थान राज्य की लगभग ७ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी तथा दो लाख तीस हजार

टन अतिरिक्त अनाज पैदा हो सकेगा और एक लाख किलोवाट विजली तैयार की जा सकेगी। यह बाध १९६२ तक तैयार हो जायेगा।^१

इस राज्य में चम्बल की दो बड़ी सहायक नदियाँ हैं—कालीसिन्ध और पार्वती जो विन्ध्याचल पर्वत से निकल कर इस राज्य के दक्षिण में होकर प्रवेश करती हैं। कालीसिन्ध गागरोण के किले के पास तथा पार्वती निजामत कुजड के दक्षिण पूर्वी कोने से प्रवेश करती हैं। कालीसिन्ध के तट पर इस राज्य के प्रसिद्ध स्थान गागरोण, पलायता तथा बडौदा हैं। पार्वती के किनारे पर जलवाडा, फूमोद और खातोली हैं। कालीसिन्ध लगभग ३५ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर, इन्दौर व भालावाड राज्यों से अलग करती हुई बहती है और पार्वती लगभग ४८ मील तक कोटा राज्य को ग्वालियर और टोक राज्य से अलग करती है। छोटी नदियों में आहू नदी महत्वपूर्ण है जो कोटा और भालावाड राज्य की सीमा नदी बन कर गागरोण के पास आकर कालीसिन्ध में मिल जाती है।

जलवायु—इस राज्य में तापक्रम गर्मी में अधिक में अधिक ११९.० तथा सर्दी में कम से कम ४४.० फारनहीट तक चला जाता है। इस राज्य में पानी का फैलाव ज्यादा रहता है अतः मच्छर ज्यादा होते हैं और इस कारण मलेरिया का प्रकोप बहुत रहता है। वर्षा का औसत ३० इंच है। कभी-कभी तो इतनी ज्यादा वर्षा होती है कि चम्बल में बाढ़ आ जाती है और कोटा नगर के कई हिस्सों में पानी भर जाता है।

भूमि व उपज—इस राज्य की ज्यादातर भूमि उपजाऊ और काली है। ऐसी भूमि चम्बल, पार्वती और अण्डेरी नदियों तथा दर्रे के पर्वत-श्रेणियों और कोटारियों के बीच में स्थित है। इसमें बारा, अन्ता, मागरौल, इटावा, बडौद, दीगोद, लाडपुरा, कनवास, सागोद, खानपुर और कुन्जेड की रियासतें आती हैं। यह भाग ज्यादातर मैदानी और उपजाऊ है। इसमें ईख, अफीम, तम्बाकू, रुई, तथा सब प्रकार के अनाज पैदा होते हैं। अफीम पहले यहाँ बहुत ज्यादा पैदा होती थी लेकिन अब सरकार के आदेशों के अनुसार उत्पादन कम किया जा रहा है। बारा में केन्द्रीय सरकार का अफीम का गोदाम है जहाँ से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती है। अफीम बेचने का अधिकार केवल केन्द्रीय सरकार का है।

यह राज्य राजपूताने का धान्य-भण्डार है। पश्चिमी राजपूताने के लोग अकाल के वक्त इस क्षेत्र में ही शरण लेते हैं। नदी व कुओं से काफी भाग में

सिंचाई होती आई है। अब चम्बस नदी पर बांध बन जाने पर काफी सिंचाई होने लगगी। अब फिर तो यह क्षेत्र राजस्थान का सबसे बड़ा धान्यागार ही पायेगा।

जंगल—पारसी नदी के पूर्व की घोर जंगल बने हैं। जंगलों में घास सफ़ाई गोंद महुवा मोम शहद भादि पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इनसे यहाँ के निवासी अपना जीवन-निर्वाह करते हैं क्योंकि जंगली भागों में खेती कम होती है। अधिकतर पेड़ बबूल गुमर डाल बड़ सागवान शीसम भादि के पाये जाते हैं। इन जंगलों में हिसक पशु बहुत रहते हैं। सिंह बाघ चीता रीछ, सांभर, हरिण नीलगाय बारहसिंहा सूअर भादि बहुतायत से पाये जाते हैं। साहबाद किशनगज सामपुर हकलेरा बनवास और प्रसनावर जंगली जानवरों के मुख्य आवास है। दर्रे की घाटी के आसपास इन जानवरों का अधिक खिकार किया जाता है। जंगली पक्षियों में चीस मार निकरा बाज तोता तीतर, गिद्ध बटेर भादि होते हैं। गागरोज का तोता सर्वत्र प्रसिद्ध है। जल-पक्षियों में सारस बगुला बतक जलमुर्ग भादि अधिक पाये जाते हैं।

संचार व्यवस्था—व्यापार की तरक्की के लिए तथा जनता की सुविधा के लिए यातायात की सुविधा होनी नितास्त आवश्यक है। रेल सड़कों तार डाल भादि से ही राज्य की प्रगति सम्भव हो सकती है। कोटा राज्य में संचार व्यवस्था की प्रारम्भ से ही कमी रही है। महाराज मोमसिंह के शासन-काल में यहाँ हवाई अड्डा बनाया गया है परन्तु उसका विशेष उपयोग नहीं होता। केवल शोकिया हवाई अड्डा उद्योग आते है। नदियों का नालों द्वारा व्यापार नहीं होने के कारण कोई विशेष उपयोग नहीं होता है। वर्षा के दिनों में तो इनमें बाढ़ आ जाने के कारण खेती नष्ट हो जाती है। आवागमन के मार्ग एक आते हैं। सामान्य संचार-व्यवस्था के साधन रेल व सड़क ही हैं और वे भी पर्याप्त नहीं है।

इस राज्य में दो रेलवे लाईनें हैं। एक कोटा-बीना लाइन का भाग और दूसरी मागदा-मपुरा लाइन का भाग। कोटा-बीना लाइन कोटा राज्य में ६६ मील लम्बी है। यह लाहपुरा दीगोद प्रस्ता बारा और कुम्हेड़ की रियासत में से होकर निकलती है। इस पर कोटा राज्य के कोटा जंक्शन दीगोद भीरा प्रस्ता विजीरा बारा छत्राबा घटक और मासपुरा कुस ६ स्टेशन हैं। दूसरी रेलवे लाइन कोटा जंक्शन से दक्षिण की ओर मुम्बैन तक ४५ मील लम्बी है। यह लाहपुरा बनवास और बेचट की रियासतों में से गुजरती है। कोटा राज्य की सीमा में इस पर कोटा जंक्शन कोटा मिटी डाकघरा ताप्ताब डाइरेवी

आलन्या, रावठा, रोड, दर्गा, मोडक, श्रीर रामगज मण्डी कुल ६ स्टेशन हैं। एक स्टेशन कोटा जकशन के उत्तर मे इन्द्रगढ स्टेशन भी है। इन रेल लाइनों से राज्य को ७० लाख रुपये मालाना की आय है।

कोटा राज्य मे १६४७ ई० मे पक्की सडकें २७५ और कच्ची सडके ५७० मील लम्बी थी। कच्ची सडके केवल गर्मी और सर्दी की मौसम मे काम आती थी। राज्य की सब तहसीले सडको से सम्बन्धित थी। वर्षा ऋतु मे भूमि चिकनी होने के कारण व नदी-नालों की भरमार के कारण यातायात बन्द रहता था। मुख्य सडके निम्नलिखित थी—कोटा से भालावाड (५३ मील पक्की सडक), कोटा से बून्दी (२२ मील पक्की सडक), कोटा से वारा (५० मील पक्की सडक), कोटा से कुवाई (६६ मील सडक) बून्दी मे कोटा होता हुआ भालावाड को जाने वाली सडक राष्ट्रीय राजपथ है। कोटा-बून्दी तथा कोटा-भालावाड सडको का रास्ता वर्षा के समय चम्बल व आहू नदी आ जाने के कारण रुक जाता है। उस समय नदी पार करने के लिए नावे काम मे लाई जाती है। अब तो इन सडको का काफी विस्तार हो रहा है तथा नदियों मे जगह-जगह रपटे बनाई जा रही है।

१६४७ मे कोटा राज्य मे ४५ डाकघर और ५ तारघर थे। अब तो इनकी सख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है।

खनिज पदार्थ—कोटा मे कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। पहले राज्य को इससे काफी आमदनी होती थी लेकिन धीरे धीरे विदेशी प्रतियोगिता के कारण इसकी आमदनी कम हो गई। खनिज पदार्थों मे यहा पत्थर मुख्य रूप मे मिलता है जो सफेद, लाल और काले रंग का होता है। कही-कही इसकी लम्बी-लम्बी पट्टिया निकलती हैं तो कही-कही छोटे-छोटे कातले और कही-कही केवल टुकडे। यहा का सफेद पत्थर बहुत सुन्दर होता है। उस पर घडाई व छटाई बहुत बढ़िया की जा सकती है। इसकी खाने मोडक, रामगज मडी व दर्दे तक फैली हुई है। लाल पत्थर की खाने निजामत लाडपुरा, कुन्जेड और खानपुर मे पाई जाती है। लाल इमारती पत्थर लगभग सब जगह पाया जाता है। गेरू, रातई और पीली मिट्टी भी निजामत शाहबाद, इकलेरा और छीपावडौद मे पाई जाती है। अन्ता, मोडक, इन्द्रगढ, वारा खेडा और जगपुरा कसार मे चूना बनाने का पत्थर बहुतायत से मिलता है। मोडक और इन्द्रगढ के पत्थर से सीमेन्ट बनाया जाता है।^१ लाहे की खानें शाहबाद और इन्द्रगढ की पहाडियों मे स्थित हैं परन्तु उनका उपयोग नही किया जाता है क्योंकि आसपास कोयले

१ सर्वाई माघोपर तथा लाखेरी मे सीमेन्ट के कारखाने हैं

की खानें न होने के कारण सोहा निकालना महंगा पड़ता है। कहीं कहीं पर सुलमानी पत्थर भी मिलता है। कुम्भी और मोठपुर के पास काप बनाने की रेश भी पाई जाती है। कोटा राज्य के क्षेत्र में खनिज भरे पड़े हैं। यदि इनका पता लगा कर निकाला जाय तो प्रमुख्य पदार्थ निकल गे।

धन्धा—यहां के लोगों का मुख्य धन्धा सतीबाड़ी है। उपजाऊ कासी मिट्टी होने के कारण तथा वर्षा व सिंचाई के पर्याप्त साधन होने के कारण कोटा के ज्यादातर लोग खेती करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यह क्षेत्र राजपूताने का धान्य भाण्डार कहलाता रहा है। दोनों फसमें—रबी व खरीफ पर्याप्त मात्रा में यहाँ बोई जाती हैं। यह सब कुछ होते भी यहाँ का किसान वर्ग गरीबी में ही रहता आया है। इस क्षेत्र में भूमिहीन किसानों की संख्या बहुत ज्यादा है। राज्य में बड़े बड़ी धान की मण्डियाँ—कोटा बारां प्रन्ता मांगरोल सीसवसी सांगोद खानपुर सारोला रामगंज आदि स्थानों पर हैं। यहाँ का दूसरा मुख्य धन्धा कपड़ा बुनना है। कोटा की मलमस महमूदी डोरिया भानि अपनी बारीकी और रंगों के लिये बहुत प्रसिद्ध है। बारां के घुन्डी के बने हुए साफे व सुष्ट्र अपनी बन्द्याई के लिये प्रसिद्ध हैं। कोयला की रेजी प्रसिद्ध है। जैबून व मांगरोल करवा उद्योग के मुख्य केन्द्र हैं। प्राचीन काल में कोटा की तलवार प्रसिद्ध थी। अब तो तलवारों का कम ही उपयोग होता है।

सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक विवरण

निवासी—इस राज्य के अधिकांश निवासी धार्मिक और सिध्दियम वर्ग के हैं। भारत में जितने विदेशी आक्रमण हुए और विदेशी भारत में घसे वे सब कोटा व क्षेत्र में भी रहे। अब कोटा जो कि मामला का धर्म कहलाया जाता

है, वहाँ कई जातियों का सघर्ष-स्थल रहा है। यही कारण है कि यहाँ मिश्रित जातियाँ अधिक पाई जाती हैं।

सामाजिक दृष्टि से आवादी विभिन्न जातियों में बँटी हुई है। इसका मोटा विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मुसलमान, कृषक व श्रमजीवी है। कृषकों में धाकड़, कराड़, मीणा व भील हैं। श्रमजीवी जातियों में चमार मुख्य है।

राजपूतों ने यहाँ शासन स्थापित कर अपना प्रभुत्व सामाजिक जीवन में भी स्थापित किया। उनके रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा तथा आचार-व्यवहार जनता अपनाते लगी। लोगों की खर्षों राजपूतों की खर्षों की तरह होने लगी। इनका खाना-पीना बड़ा सादा था। ग्राम जनता व कृषक लोग मक्की, जवार व घाट खाते हैं। माँस व मदिरा का प्रयोग कम किया जाता है परन्तु राजपूत वर्ग में इसका प्रयोग अधिक है। इनकी वेश-भूषा में धोती-अगरखी तथा सोफा मुख्य है। साफे के स्थान पर ज्यादातर पगड़ी बांधी जाती है। बहु शादी करने का रिवाज है। बड़े भाई की स्त्री को देवर से विवाह करने की प्रथा भी है। शादी-गमी के अवसर पर माहिरा किया जाता है। शादी के लिए वचन में ही मँगनी तय करली जाती है और कभी कभी तो गर्भावस्था में ही शादी के वचन पक्के कर लिए जाते हैं। लड़की का जन्म अशुभ समझा जाता है। समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव अधिक है। अन्धविश्वास व अन्य कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियों के कोटा के लोग शिकार हैं। स्त्रियों का पहनावा घाघरा, काँचली व ओढनी होती है जो मोटे कपड़े की होती है। पर्दा-प्रथा व्यापक है। राजपूत स्त्रियाँ तो बहुत पर्दा करती हैं। ग्राम जनता की स्त्रियाँ सिर्फ घूँघट निकाल लेती हैं। गहने पहनने का बड़ा शौक है। राज्य की तरफ से जिसे सोना बख्शा जाता है, समाज में उसकी इज्जत होती है। महाजन ऋण देने का काम करते हैं। परन्तु समाज में राजकीय पुरुष का प्रभाव अधिक होता है।

लोग अधिक पढ़े-लिखे नहीं हैं। पहली बार राज्य की ओर से शिक्षालय सन् १८७२ में खोला गया जिसमें दो अंग्रेजी, दो फारसी, दो हिन्दी के अध्यापक नियुक्त किए गए और दस रुपये उनका मासिक वेतन था। स्त्री-शिक्षा भी प्रारम्भ की गई। प्रारम्भ में पाँच लड़कियाँ ही पढ़ने आती थीं। सन् १९४७ तक लोक-शिक्षण की अधिक प्रगति नहीं हुई। सम्पूर्ण कोटा राज्य में एक इन्टर कालेज (हरवर्ट इन्टर कालेज), तीन उच्च विद्यालय (हाई स्कूल) थे। हर तहसील में एक मिडल स्कूल तथा एक प्राइमरी स्कूल थी। शिक्षा उन्नति के लिए राजकीय आय का २५ प्रतिशत बजट खर्च किया जाने लगा और सालाना

तीन लाख रुपये शिक्षा के लिए खर्च किये जाते थे। यही व्यवस्था स्वास्थ्य विभाग की थी। प्राधुनिक क्षेत्र का एक अस्पताल कोटा में था। बाकी सहस्रीसों में सिर्फ डिस्पेन्सरी होती थी। १९४७ तक स्वास्थ्य के लिए १ लाख २० हजार सालाना खर्च किया जाता था।

धर्म—कोटा राज्य में हिन्दू अधिक संख्या में होने के कारण धाम धम हिन्दू है। यद्यपि हिन्दुओं के सभी सम्प्रदाय पाए जाते हैं परन्तु कोटा के शासक और जनता वैष्णव सम्प्रदाय को अधिक मानते हैं। श्रीमायजी गोस्वामी वर्ग के वैष्णवों का कोटा में बहुत प्रभाव है और कई मन्दिर इस प्रकार के पाए जाते हैं। कोटा स्थित मधुरेशजी का मन्दिर वैष्णव धर्म का प्रतीक है। यहां के महाराज वैष्णवों को खूब दान देते थे। द्वारिका हरिद्वार मथुरा आदि वैष्णव केन्द्रों पर धार्मिक यात्राएँ की जाती थीं। महाराज किशोरसिंह प्रथम ने तो बृज भूमि में जाकर बृज लीला का आनन्द भोग किया था और महाराज रामसिंह ने नाब द्वारा एक वैदल यात्रा की थी। नित्य दो कोम चल कर ढाई मास में नाथद्वारा पहुँचे। महाराज किशोरसिंहजी आसिमिह भ्रामा से अप्रसन्न होकर नाथद्वारा गए और कोटा का राज्य श्रीमायजी की भेंट कर दिया था।

वैष्णव धम के साथ साथ कोटा की जनता शिव व सूर्य की उपासक भी हैं। अजमेरापाटन में स्थित सूर्य मन्दिर इस बात का द्योतक है कि हाड़ौती की कमता एक समय में सूर्य की उपासक थी। भोमगढ़ में प्राप्त एक विशाल शिव सिङ्ग पाया गया है जिसका अन्वय इस क्षेत्र में शैव मत प्रभावशाली होना बत साता है। कोटा में जैन धर्म का प्रचार भी था। खेरगढ़ में ग्यारहवीं शताब्दी की तीन शक्ति जैन प्रतिमाएँ भी हैं। यह एक राजपूत सरकार द्वारा बनवाई गईं। इससे प्रतीत होता है कि जैन धर्म के अनुयायी न केवल व्यापारी वर्ग ही था परन्तु राजपूतों ने भी इसे स्वीकार किया। धर्म धर्मावसन्धियों में मुसलमान अधिक हैं। राज्य की धार से उन्हें ऊँचे ऊँचे पद दिये जाते थे। इससे स्पष्ट है कि शासकों ने धर्म-संज्ञमशीलता की नीति अपनाई थी। धार्मिक अन्धविश्वास भूत प्रत आदि का प्रभाव जनता पर अब भी है। धार्मिक मेलों में कोटा में बहाहरा का महा धरमत्त महस्वपूर्ण है। बहाहरा के अवसर पर यह मेला सात दिन लगा रहता है।

भाषा—यहाँ की भाषा राजस्थानी है क्योंकि इसमें राजस्थानी शब्द अधिक बतलर होते हैं। यहाँ की बोसचास की भाषा हाड़ौती नहीं जाती है। कुछ लोग मामबी बोसते हैं। हाड़ौती कुछ राजस्थानी भाषा नहीं जिसे डिगस का स्वरूप

दिया जा सके। हाडोती उच्चार और व्याकरण की दृष्टि से गुजराती से मिलती-जुलती है। कुछ यह मालवी भाषा के प्रभावयुक्त हो गई है। मालवी भाषा अधिकतर मनोहरथाना, छीपाबडौद, अकलेरा, बकानी, असनावर और चेचट में ज्यादा बोली जाती है और शुद्ध हाडोती कोटा व कोटारियों में बोली जाती है। प्रारम्भ में राजकीय भाषा संस्कृत थी लेकिन ई. सन् १८७३ में फारसी हो गई और फिर कालान्तर में हिन्दी ने फारसी का स्थान १८८० में ले लिया। अंग्रेजी राज्यकाल के समय १९०० ई० के बाद राज्य में अंग्रेजी का ज्यादा प्रचार हो गया। शाह-बाद में सहरियों को अलग बोली है।

महाराव भीमसिंह ने वल्लभ सम्प्रदाय ग्रहण किया और गढ़ में मन्दिर बनवा कर वृजनाथ की मूर्ति की उसमें प्रतिष्ठा की थी। दुर्जनसालजी के समय सम्वत् १८०१ में मथुरानाथजी बून्दी से कोटा लाए गए। राव दुर्जनसाल बड़े भगवद्-भक्त थे। वि. स. १७९७ में उन्होंने सप्त स्वरूपों में एक लाख रुपया खर्च किया था। अन्नकूट आदि वल्लभ सम्प्रदाय के उत्सव शुरू कराये।

कोटा राज्य का शासन-प्रबन्ध

कोटा राज्य मुगल मल्तनत की देन है। मुगलों की शासन-व्यवस्था तो कोटा राज्य में नहीं थी परन्तु कुछ उस ढाँचे के आधार पर कालान्तर में अंग्रेजों के आने से पहले तक बन गई। कोटा का राज्य हाडा माघोसिंह के वंश के शासकों का रहा है। यहां के शासकों को 'महाराव' कहा जाता है। महाराव का राज्य-चिन्ह का उद्देश्य 'अग्नेरपितेजस्वी' अर्थात् अग्नि से भी तेजस्वी है। इस राज्य-चिन्ह के मध्य में एक गरुड़ आकृति और इसके आसपास दो उड़ते घोड़े बने हुए हैं।



महाराज कोटा राज्य के अध्यक्ष हैं। राज्य के बहु सर्वेसर्वा हैं। राज्य की व्यवस्थापिका कार्यकारिणी सभा न्यायवास्तिका शक्तियें राज्य के महाराज के हाथ में निहित हैं। महाराज निरंकुश शासक है और प्रान्तरिक रूप में देवताओं के प्रतिनिधि रूप में देखे जाते हैं परन्तु वे हमेशा ही मुगलों के अधीन रहे हैं। बाह्य में प्रपञ्चों के। मुगलों के वे सिपहसाधार व मनसबदार थे। मुगलों और प्रपञ्चों को वे हमेशा सिराज देते रहे हैं। मुगल प्रभाव सिर्फ कागजी था।

केन्द्रीय शासन-सत्ता शासक में निहित थी। पूर्ण रूप से हिन्दू कानून प्रचलित था और यहाँ की प्रजा सब भीति कोटा नरेश की प्रजा थी। राज्य में सरकारी पद पर नियुक्ति महाराज के नाम पर होती थी और भारत में महा राजाधिराज महाराज थी 'बचनाव' ऐसा लिखा जाता था। राज्य की देखरेख करने के लिए दीवान की नियुक्ति होती थी। यह नियुक्ति महाराज करते थे। राज राणा जामिमसिंह के बाद अफगनी गुप्त सन्धि के अनुसार सन् १८१६ से सन् १८३७ तक दीवान का पद म्हालों के पास में पतुक रहा। परन्तु जब महत सिंह म्हाला को म्हालावाड़ का राज्य प्राप्त हो गया तो पुनः यह पद महाराज की शक्ति के अन्तर्गत था गया। दीवान प्रायः-सब कोष प्रायः की देखरेख करता था। दूसरा मन्त्री फौजदार होता था जो सेना का अध्यक्ष होता था तथा राज्य की व महाराज की सुरक्षा का भार उसी पर होता था। उसकी नियुक्ति भी महाराज करते थे परन्तु राज राणा जामिमसिंह व उनके उत्तराधिकारियों ने इन दोनों पदों को एक मिला कर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। दीवान या प्रधान या मुसाहिबघामा के साथ ठाकुर चौधरी और हुजासगीर होते थे। पुलिस तथा पुलिसियत विभाग प्रसंग-प्रसंग गहो थे। मिरदगार करने वाला ही न्यायाधीश बन जाता था।

राज्य कई परगनो मे विभक्त होता था । प्रत्येक परगने में एक चौधरी, एक कानूगो और एक हवालगीर रहता था । हवालगीर प्राय राजपूत होता था और दरबार से नियत किया जाता था । परगने मे एक फौतदार भी होता था । हवालगीर को १०) मासिक वेतन मिलता था और सिपाहियो का वेतन ३) मासिक था । कानूगो का कार्य हकत और पडत जमीन का हिसाब रखना तथा उसकी उन्नति करना था । चूकि साम्राज्य के प्रत्येक परगने का कानूगो सम्राट द्वारा नियत किया जाता था इसलिए कोटा के परगनो के कानूगो भी शाही फरमान द्वारा नियुक्त किए जाते थे । इस प्रकार कानूगो शाही प्रतिनिधि होता था । परगने की भूमि लगान, आमद तथा खर्च का हिसाब वह दफ्तेर खाता आली (हिसाब विभाग) मे भेजता था । परगने के चौधरी, जागीरदार, प्रजा आदि कानूगो की सलाह से कार्य करती थी । कानूगो का पद परम्परागत था परन्तु एक कानूगो के मरने के बाद उसके पुत्र को शाही फरमान लेना आवश्यक था । इनका वेतन नगद था । परन्तु कालान्तर मे आय के अश के रूप मे दिया जाने लगा । कोटा नरेश की आज्ञा का पालन करना उनका एक कर्त्तव्य होता था । परगनो पर कोटा महाराव का अधिकार तीन रूप मे था—जागीर, मुकाता और इजारा । कोटा शासक सामन्तो की सेवा के बदले मे जागीर देते थे । अपने सम्बन्धियो को जागीर देते थे । जागीर के परगने से मुगलो का सम्बन्ध नाममात्र था । जो परगने मुगल बादशाह बखसोस करते थे वे मुकात कहलाते थे । अधिकतर मुगल शासक कोटा नरेश को इनायत के रूप मे देते थे । इनकी खिराज मुगलो को दी जाती थी । इसी प्रकार इजारा जागीर कोटा नरेश महाराव को प्राप्त थी । कोटा महाराव इन परगनो का मतालवा मुगल राज्य मे साढे तीन लाख वार्षिक देते थे जो बाद मे मराठो को दिया जाने लगा ।

शासन की छोटी इकाई गाव थी । गाव मे पटेल का प्रभाव बहुत था । राज्य की भूमि-कर-आय वसूल करने का अधिकारी वही होता था । जालमसिंह के समय से यह पटेल-प्रथा हटादी गई और पटेलाई व्यवस्था स्थापित की गई । पटेलाई की प्राप्ति के लिए नजराना दिया जाता था । हर नए महाराव के समय पटेलाई नये रूप से नजराना देकर लेनी पडती थी । गाव मे पचायत का मुखिया चौधरी कहलाता था । पचायत सामाजिक व आर्थिक सगठन का केन्द्र था ।

भूमि-प्रबन्ध कोटा राज्य मे मुगल प्रबन्ध की तरह ही था । लगान उपज का तृतीयांश लिया जाता था । नकद या उपज के रूप मे जमा करा दिया जाता था । कोटा मे भूमि का विभाग कभी नही स्थापित किया गया । खडी

हुई फसल को राज्य-कर्मचारी गाँव के मुख्य किसानों के सामने कूता करते थे। इस कती हुई उपज का तीसरा हिस्सा राज्य में आता था। दूसरा आगीरदार स मते था। एक हिस्सा कृपक सता था। जमीन नापने का काम उसी समय पड़ता था जब कि किसी को माफी दी जाती थी। आगीरदार को सान्नीद की जाती थी कि उनके छोटे फसल को मष्ट न करें। जिन किसानों को बीज नहीं मिलता था उन्हें राज की धोर से लिया जाता था। पटेसों से लबराना प्रति बर्ष लिया जाता था तथा उन्हें राज्य से पगड़ी दी जाती थी जिसका खर्चा परगने के बजट से निकाला जाता था। किसानों को कुमिस के समय तकाबी दी जाती थी। राजराजा आलिसिंह ने पटेसों की कौसिस जिन प्रकार कि प्राधुनिक रेवेन्यू बोर्ड होता है, का निर्माण किया। कृपकों के भगाड़ों की यह एक प्रकार से प्रशस्त प्रपीस थी। भूमि का नाप करवाया गया। उपज के अनुसार भूमि बाँटी जाने लगी—मीवत सड़ा धौर मास। भगान निश्चित करके यह घोषित कर दिया गया कि कड़वा नकद लिया जावेगा उपज के रूप में नहीं। प्रति बीघा कड़ धाना पटेस की रसूम नियत की गई। उन तमाम गाँवों में जहाँ की जमीन प्रच्छी उपजाऊ थी वहाँ पर आलिसिंह ने राज के हवाले स्थापित किए। इन हवाल्लों के वास्ते किसानों से जमीन खीन सी जाती थी। कृपि में उत्पत्ति की गई। नाना प्रकार के कर सने की व्यवस्था कौटा राज्य में थी। मुख्य कर भूमि कर था जो उपज का एक तिहाई लिया जाता था। यह कर कड़ते के प्रश से वसूल किया जाता था। प्रारम्भ में नकद प्रनाज के रूप में परन्तु ई० सन् १८ के बाद नकद के रूप में लिया जाता था। दूसरी प्रकार का कर मुकाता होता था। एक व्यक्ति से गाँव का निश्चित भगान वसूल करके उसको यह अधिकार दिया जाता था कि कृपकों से यह स्वयं भगान वसूल कर ल। राज्य द्वारा श्रृण धनाज या सती को गिरवी रखने पर दिया जाता था। मास हासिस के प्रसाबा २१ प्रकार के धौर कर थे। नंबरमटकी पटमसूटी पट वारी बसाई गजबघनी सराई छपों नापों सकात प्रादि। जगतों की नियुक्ति राज्य की तरफ से होती थी। भूमि कर के दो सींग थे—साससा धौर आगीर। साससा से भूमि कर बटाई या सटाई द्वारा वसूल किया जाता था। आगीरदारों से कर नकदी वसूल किया जाता था। जिसना आगीरदार नहीं देता था वह श्रृण मान कर इस पर ध्यान सिमा जाता था। य सय कर प्राय के माधम था। परगने के प्रफसरों को वार्षिक बजट के अनुसार परगने की प्राय में से तर्ष करते का अधिकार था। तर्ष के बाद खया यदि बपता तो राजकीय खजाने कोटा स भेज दिया जाता था। प्राय धौर तर्ष का हिसाब परगने की

कचहरी में रहता था और प्रति वर्ष दीवान के पास भेजा जाता था। खर्च के मुख्य मद—पुण्यार्थ, दरगाही, हनूरीकातन राजलोक, महल, कारखाना, बोहरा को देना, देश का खर्च, अटाला, आम्बार, सेना आदि थे। बेगार प्रथा द्वारा भी राजकीय कार्य होता था। बेगार में प्रत्येक बेगारी को जबरदस्ती कार्य करना पड़ता था और उसे केवल पेट-पूर्ति के लिए नाम मात्र पैसे दे दिये जाते थे। राजपूताने में जागीर प्रथा का यह एक विशेष अंग था।

न्याय हिन्दू प्रणाली से किया जाता था। परम्पराओं को दृष्टिकोण में रख कर ही दंड दिया जाता था। गाव की पचायतो को दण्ड देने का अधिकार था। उनकी अपील हो सकती थी। प्रत्येक परगने के मुख्य गाव में कोतवाली का चबूतरा होता था। कोतवाल ही अपराधियों को पकड़ता था और वही उनको दण्ड देता था। न्याय विभाग कोई प्रथक नहीं था। चौधरी, कानूंगे और ठाकुर से भी न्याय करने की प्रथा थी। शिकायतो की सुनवाई होती थी। कांगजी कार्यवाही कम होती थी। चोरी, डकैती और हत्या के अपराधियों को प्रायः अंग-भंग व प्राण-दण्ड ही दिया जाता था। छोटे अपराधों का अर्थ-दण्ड दिया जाता था। व्यभिचार पर दण्ड जुर्माना होता था। राज-नियम का भंग करना घोर अपराध माना जाता था। राजा की कोप दृष्टि होते ही उस व्यक्ति का सर्वनाश हो जाता था। तोप से उड़ा देना, सिर कटवा देना, हाथी के नीचे कुचलवा देना राजा के वाए हाथ का खेल था। इसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं की जा सकती थी।

सेना का अध्यक्ष फौजदार कहलाता था। कोटा की सैनिक व्यवस्था मुगल व्यवस्था से मिलती-जुलती थी। कोटा की सेना में भी फौजदारी, फौलखाना, शूतुरखाना, रिसाला, तोपखाना, हरावल आदि होते थे। सेना में दो प्रकार के सिपाही थे। एक तो जागीरदार भेजते थे जिनका खर्चा स्वयं जागीरदार देते थे। दूसरे महाराज स्वयं भर्ती करते थे। महाराज का यह कार्य फौजदार करता था। जालिमसिंह के पहले स्थायी सेना सुव्यवस्थित रूप से रखने की कोई प्रणाली नहीं थी। जालिमसिंह ने छावनी (भालावाड) में स्थायी सेना का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। कवायद, शिक्षा, अनुशासन से सैनिक सगठन में सुधार किये। हाथी, घोड़े, ऊटो का प्रयोग सेना में होता था। अधिकतर घोड़े काम में लाए जाते थे। पैदल सैनिक को युद्ध की पूर्ण शिक्षा दी जाती थी। अधिकतर सैनिक लोहे के कवच और टोप पहनते थे। तलवार, ढाल, बर्छी, भाला व तोप काम में लाए जाते थे। कोटा के मुख्य किले का जीर्णोद्धार करवाया जाता था

जिससे राज्य की सुरक्षा हो सक। मन्थ बिस दरगह मनोहरयाना चाहवाद व गागरोल के व ।

सन् १८५७ तक कोटा की उपरोक्त शासन-व्यवस्था बनी रही। मिदयान्त के रूप में सारा कार्य दरबार की आज्ञा से होता था परन्तु वास्तव में राज्य के बड़े बड़े कर्मचारी महाराज के कुटुम्ब के लोग और कृपा-भात्र मनचाहा करते रहत थ। घूमखोरी राज्य का मुख्य अंग था। राजा का कोई मिदयान्त नहीं था। उसकी समझ में जो आया चाहे बुरा ही क्यों न हो राज्य का वह नियम हो जाता था। प्रजा की मसाले का ध्यान राजा को न तो कभी था न कभी वह परवाह करता था। राज्य दरबारी होता दख्त ही नहीं बल्कि राज्य-शक्ति का स्वल्प था। शासन पूर्ण क्षिपिल था। अधिकतर राजा बोहरों से ऋण लेकर काम चलात थे क्योंकि परगनों से कमी बचत की रकम नहीं आती थी। कर इकट्ठा अवश्य कर लिया जाता था परन्तु राजकोष में आते आते वह कहीं बीच में ही गायब हो जाता था। न कभी सुनवाई हुई न देखरेख। १८५७ के सैनिक-विद्रोह ने इस शासन प्रणाली की कमजोरिएँ स्पष्ट करदीं। सन् १८६२ में कोटा के तत्कालीन नरेश महाराज रामसिंह ने राज्य-शासन का पुन निर्माण किया।

राज्य को कई जिलों में विभक्त किया गया। प्रत्येक जिले का एक जिला-धीश नियत किया गया। प्रत्येक जिले में से एक खास मासगुबारी का आना भावश्यक माना गया। जिलेदार को ये कार्य सौंपे गए—मासगुबारी बसूम करना जिले की सान्ति बनाए रखना और न्याय करना। वह सी रुपये तक जुर्माना कर सकता था व एक मास की कैद दे सकता था। घूम घूम कर वह प्रति सप्ताह जिले का निरीक्षण करता था। प्रत्येक जिले में एक बानेदार नियत किया गया जो जिलेदार के अधीन कार्य करता था। एक बानेदार के अधीन एक उर्दू सलक एक नामादार और १५ सिपाही रहत थ। जिस में पुलिस चौकियाँ बनाई गईं। अपने क्षेत्र में बोरी डकैती या चुरमे का जिम्मेदार चौकीदार व बानेदार उत्तरदाता था। घावदयकता पढ़ने पर सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी जाती थी। बानेदार की म्यारह रुपये जुर्माना व १५ दिन की कैद देने का अधिकार था। हर मामले की सूची बना कर दरबार के पास भेजी जाती थी।

कोटा शहर के लिए एक कोतवाल की नियुक्ति की गई। इतको बार्डस रुपये जुर्माना और पन्द्रह दिन की कैद का अधिकार दिया गया था। इस से बड़ा मामला होता तो पासकीसाने में शासन किया जाता। मुकदम की मितल

बना कर वह कोतवाली चबूतरे पर रख देना था। कोतवाल के पास एक फारसी जानने वाला अहलकार होता था। शहर में चोरी न हो, अगान्ति न हो, इसलिए चौकीदारों की नियुक्ति हर मौहल्ले में होती थी। शहर का मफाई-कार्य भी कोतवाली के मुपुर्द रहता था। राह में व्यापारियों की सुरक्षा के लिए ठहरने व सुरक्षा-स्थान नियत किए गए। कोटा-भालरापाटन के रास्ते में हणोत्या, उम्मेदपुरा, और मुकुन्दरा के स्थान पर ऐसी सराएँ बनाई गईं। व्यापारियों को अपने पास के नौकरों की सूची राज्य को देनी पड़ती थी।

न्याय विभाग (पालकीखाना) का सगठन किया गया। कोतवाल और जिलेदार जिमका फैसला नहीं कर सकते थे। वे मुकदमें यहाँ निर्णीत होते थे। ५०) जुर्माना और एक महीने की कैद का अधिकार पालकीखाने के अध्यक्ष को दिया जाता था। लिखित शिकायत पेश करनी पड़ती थी। विरोधी पक्ष को परवाने द्वारा बुला कर लिखित रूप से निर्णय किया जाने लगा तथा दरवार की मुहर लगने के बाद निर्णय दिया जाता था। पूरी मिसल पालकीखाने में सुरक्षित रखी जाती थी। दरवार में अपील की जा सकती थी। अन्तिम अपील पोलिटिकल एजेंट के दफ्तर तक हो सकती थी। इस सुधार घोषणा में कानून की व्याख्या नहीं थी। यह कार्य कि कौन-सा कानून है कौन-सा नहीं, यह सब कार्य कोतवाल, जिलाधोश व पालकीदार पर छोड़ दिया गया। घूस लेना व देना, लडकी को मारना या बेचना, सती होना घोर अपराध घोषित कर दिए गए।

दफ्तरों का समय निश्चित किया गया। एक पहर दिन चढ़ने पर गढ में हाजिर होकर तीसरे पहर तक वहाँ काम करना पड़ता था। शुक्रवार, जन्माष्टमी, रामनवमी, एकादशी के अवसरों पर व होली-दिवाली दशहरे पर दफ्तर बन्द करने की आज्ञा भी थी। दफ्तरी अनुशासन कड़ाई के साथ रखने की ताकीद की गई। अफसरों का अपने छोटे कर्मचारियों की मही वात पर ध्यान देने की हिदायत की गई। राज्य-कर्मचारियों की नौकरिएँ लिखित रूप से की जाने लगी। उनके विरुद्ध शिकायत लिखित की गई। इससे नौकरियों में स्थायित्व आ गया। सेना में भरती करना या सैनिक को नौकरी से हटाना केवल महाराव के अधीन रखा गया और दरवार में अर्जी देने का अधिकार एडजुटेन्ड, मेजर, चौधरी और बखसी को दिया गया। सारे देश का खजाना कृष्ण भण्डार में जमा किया जाने लगा। कोष का अध्यक्ष अलग नियत किया जाता था तथा दैनिक हिसाब सायकाल से पहले दरवार के सामने पेश किया जाने लगा।

सन् १८६३ का यह शासन-सुधार ठीक नहीं था। कोई जिले छोटे और कोई जिले बड़े थे। अतः जब नवाब फैजअली दीवान नियुक्त हुआ तो सन् १८७३ में

पुन छासन मुधार किया गया। सम्पूर्ण कोटा को घाठ निजामतों में बिभक्त किया गया। प्रत्येक निजामत दो सहसीसों में बाँट दी गई। प्रत्येक निजामत का प्रधान नाजिम होता था जिसको माल सम्बन्धी शीवानो व फौजदारी अधिकार दिये गए। सहसीस का अध्यक्ष सहसीसदार होता था जो नाजिम के नोबे होता था। प्रत्येक सहसीस में कम से कम एक धानेदार नियुक्त किया जाने लगा। नाजिम के पास कई महकमर हाथ थे जिनको राज्य की ओर से वेतन मिलता था। नाजिमों को बतन ८०) तथा सहसीसदारों को ३०) मासिक दिया जाता था।

राज्य के काय में ससाह व गय के लिए नबाब फौजदारी ने सन् १८७४ में एक कौंसिल का निर्माण किया जिसमें ३ सदस्य थे। इसका कार्य पोलिटिकल एजेन्ट के नेतृत्व में हुआ करता था। यद्यपि वह कौंसिल का प्रधान नहीं होता था। उसका महकमा एजन्टी कहलाता था जो स्वतन्त्र रूप से कार्य करता था और वही १८६३ के बाद कोटा राज्य के छासन का सार्वभौम सत्ताधारी था। एजन्टी के हुकम को कार्य में परिणित करना कौंसिल का कार्य था।

कौंसिल ने कोटा के छासन को अंग्रेजी शासन की तरह साम का प्रवास किया। नबाब फौजदारी के छासन को १८७७ में परिवर्तित किया गया। घाठ निजामतों के स्थान पर १५ निजामतें बनाई गईं। राज्य के महकमे पुबक किए गए। दान सीमे का महकमा पुष्पार्थ के नाम से प्रसंग कर राजा के दान खर्च पर रोक लगाई गई।

भूमि के बन्दोबस्त कराने के लिए एक विभाग खोला गया जिससे २० साल में ३ बार बन्दोबस्त कर राज्य की आय में वृद्धि की गई। न्याय के क्षेत्र में १८७३ के मुबार के अनुसार महकमा अदासत प्रासिया स्थापित किया गया जिसमें स्वयं नबाब फौजदारी का काम करता था। उसकी सहायता के लिए ३ सदस्यों की कौंसिल बनाई गई जो स्थानीय समस्याओं से उसको परिचित कराती थी। इन महकमे के अधीन दिवानी व फौजदारी अदासतें थीं। हाकिमअदासत की नियुक्ति महाराज करते थे। नाजिमों की तरह दिवानी व फौजदारी अधिकार अदासतों के हाकिमों को दिए गए। १८७७ में इन महकमे की सिमस बनाने का कार्य मुख्यवस्थित व नियमित किया गया। मनुष्यता की दृष्टि में दण्ड और बारामार के नियम बनाए गए। स्त्रियों की बोड़े लगाने का दण्ड उठा दिया गया। बँदियों को भोजन राज्य की ओर से मिलने की व्यवस्था की गई।

जमान के महकम में मुबार किए गए। पहल मह महकमा सायरात कहलाता था। सन् १८७२ में इनका नाम बन्दस कर अदासत कर दिया। कौंसिल में इनके

दो केन्द्र—एक कोटा में और दूसरा बागों में कर दिये। कोटा के जकाताध्यक्ष का एक नायव नियुक्त किया गया। कई जगह नई जकाते स्थापित की। आय-व्यय का व्यवस्थित निरीक्षण किया गया। कोटा राज्य के भीतर लिया जाने वाला महसूल बन्द कर दिया गया। जंगल का पृथक विभाग १८८१ ई० में किया गया। परन्तु बाद में १८८६ में माल विभाग के साथ कर दिया गया। माल विभाग १८८३ में सगठित हुआ। इसका एक अध्यक्ष बनाया गया जिसके सहायक दो उपाध्यक्ष होते थे। एक कोटा में रहने लगा व दूसरा चोरगढ में। उपाध्यक्ष के कर्त्तव्य, नाजिमो पर देखरेख व मालगुजारी के नियम बनाए गए।

सेना में भर्ती के नियम बना कर महाराज के अधीन सैनिक विभाग कर दिया गया। सेना का खर्चा ४ लाख तक बढ़ा दिया गया। पुलिस विभाग पूर्वत बना रहा। कोटा में एक नई कोतवाली रामपुर में स्थापित की गई। चोरियो, डकैतियो आदि का नक्शा प्रति मास बनाया जाने लगा। थानेदार के पास से मालगुजारी का अधिकार हटा लिया गया। पुलिस के अध्यक्ष का पद बनाया गया और पुलिस प्रबन्ध के लिए कोटा के तीन भाग किए गए। प्रत्येक भाग में एक उपाध्यक्ष होता था।

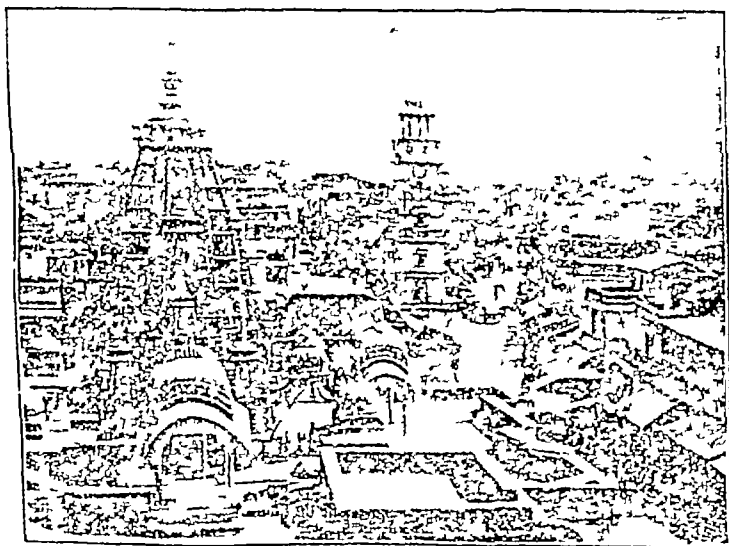
१९४७ में इस राज्य में कुल १६ निजामते थी—लाडपुरा, कन्वास चैचट, वीगोद, बडौद, इटावा, वाराँ, किशनगज, शाहवाद, कुजंड, अन्ता, मांगरील, सांगोद, इक्लेरा, छोपाबडी, मनोहर थाना, वकानी, अस्नावर, और खानपुर।
आय खर्च—

इस राज्य में चार कस्बे और २५२५ गाव थे। न्यूनाधिक आय ५०,४७,३४६ रुपया वार्षिक थी और खर्च ५३,५१,९४२ रुपया वार्षिक था। राज्य की तरफ से अंग्रेज सरकार को २३४,७२० रुपया मालाना खिराज दिया जाता था। इसके अलावा पहले दो लाख रुपया देवली छावनी के रिसाले के खर्च के भी अंग्रेजी सरकार को दिए जाते थे। सन् १९२३ से सेना वहाँ से हटा दी गई। कोटा राज्य को १४७३९॥१=॥॥ ६० (जयपुर भाडशाही सिक्को में) जयपुर राज्य को ८ कोटडियो के खिराज के देने पडते थे।^१ ई० सन् १८२३ में कोटा के

१ ये आठ कोटडियों हाडो की हैं। इनके जागीरदार वन्दी राज्य के अधीन रणथम्बोर के किले की हिफाजत करते थे। यह किला उन दिनों में दिल्ली सल्तनत के किले में था। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में जब मरहठो ने रणथम्बोर को घेर लिया तो वहाँ के मुसलमान किलेदार ने दिल्ली सहायता के लिए लिखा परन्तु वहाँ से कोई मदद नहीं मिली इसलिए किलेदार ने जयपुर के महाराजा माधोसिंह की सहायता प्राप्त करके मरहठो को हराया और किला माधोसिंह को दे दिया। तब से इन कोटडियो पर माधोसिंह का अधिकार हो गया। इनमें खिराज वसूल करने के लिए जयपुरी सेना हाडौती में आया करती थी जिससे कोटा को नुकसान होता था।

शाखा तथा मध्य रेलवे की बीना कोटा शाखा का जङ्कशन है। यह दिल्ली से २६१ मील, बम्बई से ५७० मील तथा जयपुर से १४६ मील रेल द्वारा है। पश्चिम रेलवे का डिबीजनल कार्यालय भी कोटा में ही रक्खा गया है।

कोटा नगर का नाम १४ वीं शताब्दी में कोटिया भील के नाम पर पड़ा। तब यहाँ भीलो का राज्य था। वि० स० १३२१ (१२७४ ई०) में वून्दी के जेनसिंह ने भीलो को हरा कर अपना राज्य स्थापित किया। परन्तु हाडा राजपूतो के स्वतन्त्र राज्य के रूप में वि० स० १६८८ (सन् १६३१) में शाह-जहाँ के काल में राव माधोसिंह ने स्थापित किया था। तब से यह हाडा राज-

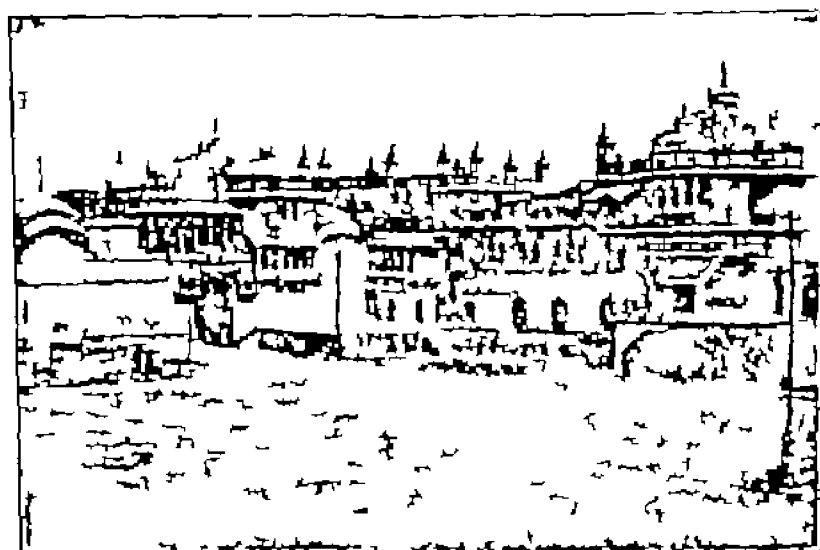


कोटा नगर

पूतो की माधाणी खाप का राजनैतिक केन्द्र १६४८ ई० तक रहा। नगर से दक्षिण की ओर चम्बल नदी के दाहिने तट पर दो दुर्गों के खण्डहर हैं जिनको अकेलगढ कहा जाता है। ऐसा प्रचलन है कि ये भीलो के दुर्ग थे लेकिन बाद में भीलो के सरदार कोटिया ने कोटा बनाया तो इन दुर्गों को छोड़ दिया। ये दुर्ग सुरक्षा के लिए पूर्ण उपयुक्त नहीं थे।

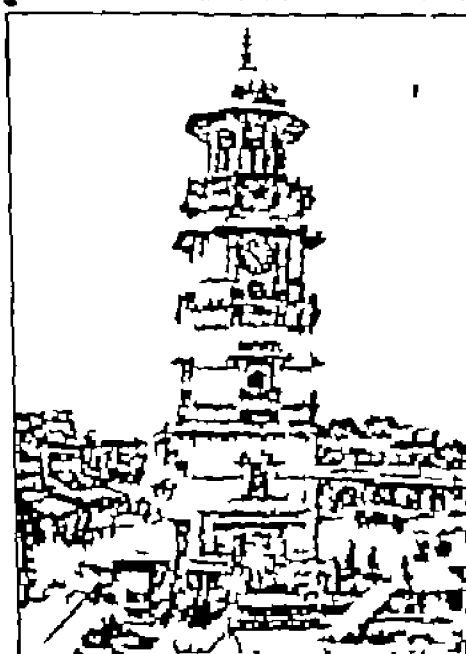
कोटा नगर के तीन ओर ऊँची और पक्की शहर पनाह है जो अब तोड़ी जा रही है। चौथी ओर पश्चिम में चम्बल नदी बहती है जिसका पाट लगभग ४०० गज चौड़ा होगा। शहर के दक्षिणी कोने पर पुराना महल है जो नदी पर से दिखाई देता है। दक्षिण पूर्व की ओर एक सुन्दर लम्बी-चौड़ी भील है जिसमें नावें चलती हैं जिसके चारों ओर सड़क है। इस भील के पास ही कोटा का

बृहत् सार बाग (राजपूताने का समकाल) है जहाँ राज महाराजों तथा उनके कुटुम्बियों को असाया जाता है। उन पर बनी हुई छतरिये देखने योग्य है।



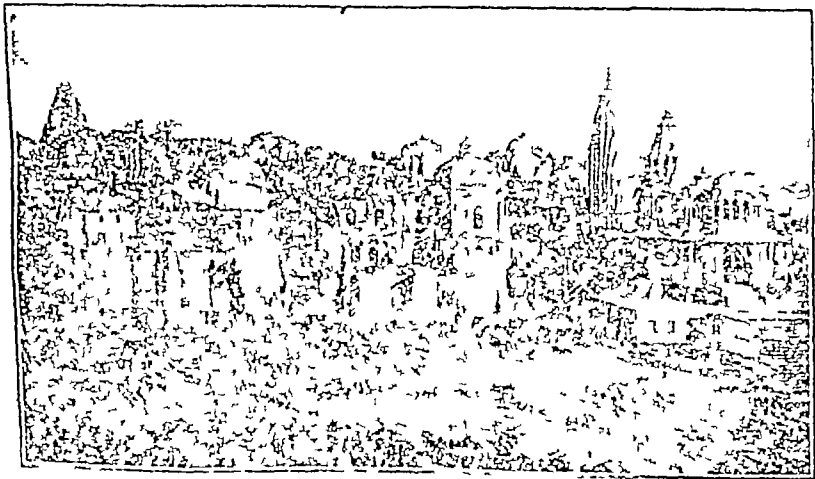
पुराने महल कीटा

कोटा नगर में दो मन्दिर दर्शनीय है। ये मन्दिर मधुराधीश और नीलकण्ठ महादेव के हैं। मधुराधीश बस्त्रम सम्प्रदाय के सात स्वर्णों में सर्व प्रथम माने



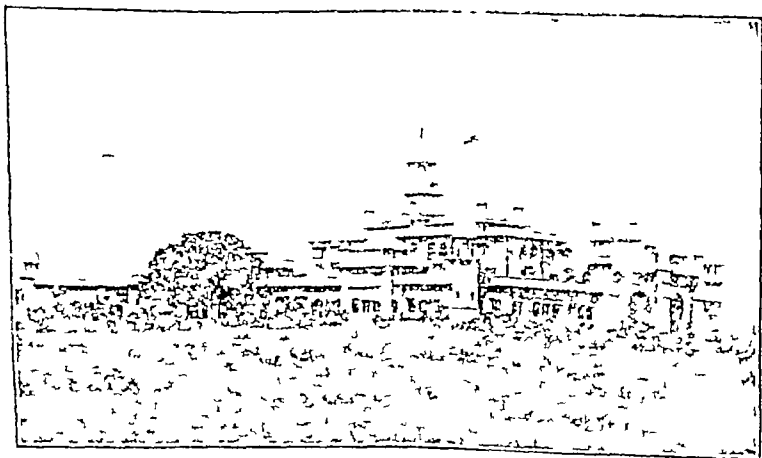
कोटा का पहाधर

जाते हैं। यह मन्दिर पाटनपोल दरवाजे के पास हैं। मथुराधीश की प्रतिमा गोकुल के पास करणावल गाँव से मिली थी। इसको बल्लभाचार्य ने अपने शिष्य पद्मनाभ के पुत्र विट्ठलनाथ को दी। उसने यह प्रतिमा अपने ज्येष्ठ पुत्र गिरधर को दी जो उसकी बराबर पूजा करता रहा। वि० स० १७२६ की आसोज शुक्ला १५ को यह प्रतिमा औरगजेव के अत्याचारो से बचने के लिए बून्दी लाई गई। बाद में वि० स० १८०१ में कोटा नरेश दुर्जनशाल इसे कोटा ले आए। उस समय के दीवान द्वारकादास की हवेली में यह मूर्ति स्थापित की गई। तब से कोटा बल्लभ-मतानुयायी वैष्णवों का तीर्थस्थान बन गया है। नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर किशोरपुरा द्वार के पास भूमि की सतह से नीचा बना हुआ है।



मन्दिर, कोटा नगर

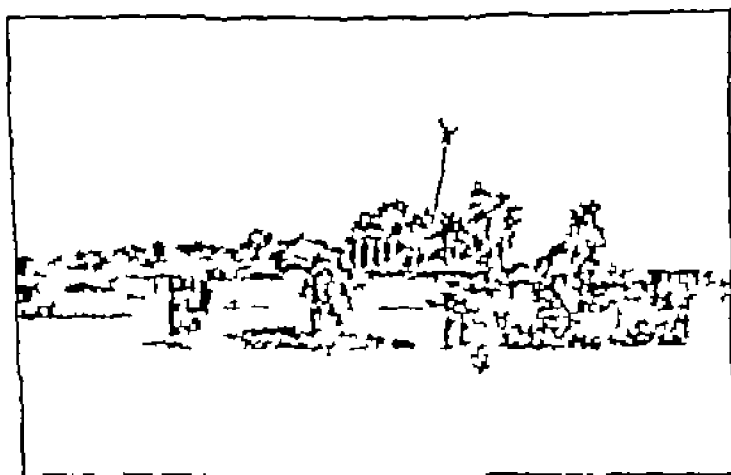
नगर के पास ही लगभग दो मील पर अमरनिवास बाग और महल है।



नया महल, कोटा

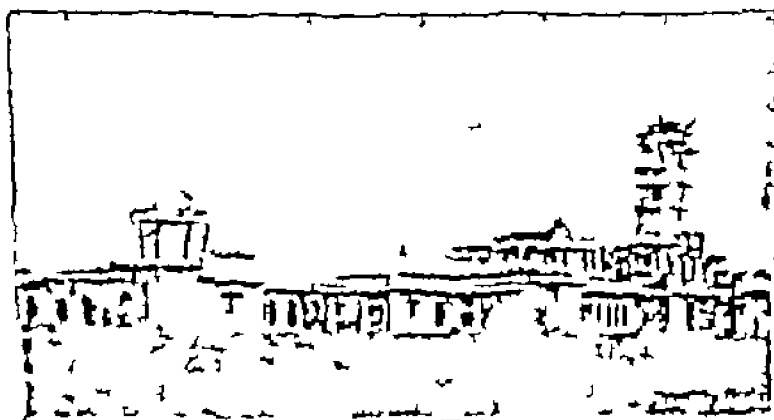
इसके पास ही एक दरगाह है जिसके ऋरोस्ते के ऊपर एक सैकड़ों मन भारी घट्टान बहुत ही साधारण सहारे के लड़ी है। यह अक्षरशिसा कहलाती है। इस ऋरोस्ते से मदी का हृय्य बहुत सुन्दर सगता है।

कोटा से चार मीस पूर्व की ओर कम्सुवा नामक छोट से गाँव में शिव मन्दिर में एक शिलालेख है जो भीर्यवशी राजा शिव गण का क्रि० स०



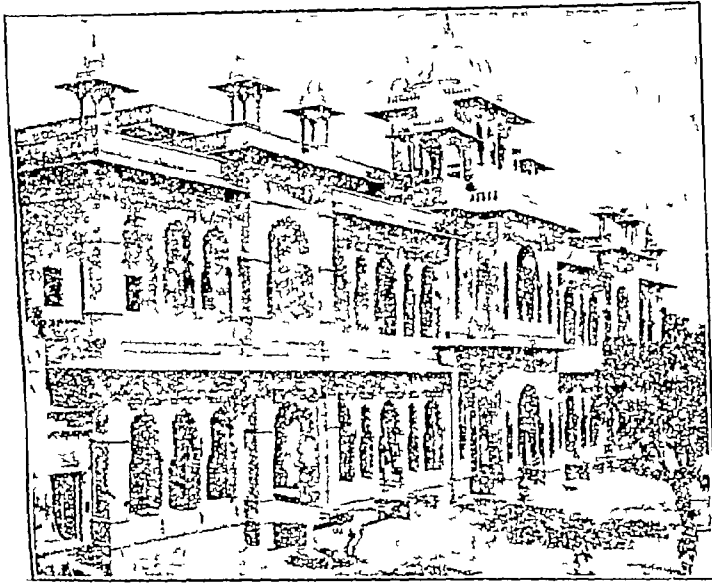
कोटा का तानाब

७६५ का है जिसमें इम मन्दिर का निर्माण का वर्णन किया गया है। क्रि० स० १७५१ की क्रान्तिक सदि १५ मगसवार को इम मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया तथा परकोटा बनाया गया जैसा कि इस मन्दिर के द्वार पर गने शिलालेख में ज्ञात होता है।



परासमी कालिक कोटा

नगर से एक मील की दूरी पर रामचन्द्रपुरा की छावनी है। सन् १८३७ के बाद राज्य की सेना जो 'कोटा कोन्टीनजेंट' के नाम से प्रसिद्ध थी—यहाँ रहती थी। वृजविलास बाग में यहाँ का सग्रहालय तथा पुस्तकालय है। सग्रहालय में लगभग २५० कलापूर्ण प्राचीन मूर्तियाँ, दर्जनो शिलालेख, सिक्के, चित्र, शस्त्र



कर्जन तिली मेमोरियल, कोटा

आदि हैं। पुस्तकालय में लगभग ४००० प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इनमें से ४०० अप्रकाशित हैं। कई हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत सुन्दर लिपि में लिखे गये हैं या चित्रित हैं।

कन्सुआ—कोटा से चार मील पूर्व की ओर कन्सुआ (कणस्वा) का वीरान गाव है। यहाँ आठवीं शताब्दी का महादेव का एक मन्दिर है। इस मन्दिर के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि यह मौर्य शासक शिव गण ने सम्वत् ७६५ (ई० सन् ७३८) में इस मन्दिर का निर्माण किया था। मौर्यों के प्रभाव में राज-पूताना रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० स० १७५१ में कराया गया था।

गैपरनाथ महादेव—कोटा में ६ मील दक्षिण की ओर रतकाकरा गाव के पास गैपरनाथ महादेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ का भरना वारह मास बहता है। मन्दिर की प्रतिष्ठा वि० स० १६३६ में हुई थी जिसका यहाँ एक शिलालेख लगा हुआ है।^१

^१ गैपरनाथ का शिलालेख—सम्वत् १६३६ आदित्यार बाबाजी श्री दामोदरपुरी गैपर यानि धर्मशाना कुदाई अमल कोट महाराज कवर श्री भोजजी कु वधाई।
डा० मयुरालाल शर्मा, परिशिष्ट मर्या ८

चार चौमा—कन्वास सहस्रील की उत्तरी सीमा के पास ४ गाँव चौमा कोट चौमा भीड़ चौमा मासियान व चौमा मुडली है। इसमें चौमा कोट में महादेव का गुप्तकालीन प्राचीन मन्दिर है। यहाँ पर शिवरात्री की बड़ा मेला लगता है। इस मन्दिर का बहुत बड़ा जीर्णोद्धार हुआ था। इसकी प्राचीनता समाप्त हो गई है। मन्दिर के भीतर एक स्तम्भ पर लम्बा द्वार के बाईं ओर की दीवार पर सस्कृत में गुप्तकालीन लिपि में शिलालेख है। मन्दिर के अन्दर गुप्तकालीन एक शिवलिङ्ग है।

भदर—यह भदर सहस्रील का मुख्य स्थान है। कोटा से ४८ मील पूर्व की ओर पार्वती नदी के किनारे बसा हुआ है। इसके बाजार में भैरवाष्टाह नामाया हुआ मन्दिर है। इसकी मूर्ति पर बि. सं० ५०८ की चैत्र सुदि ५ मंगलवार सुवा है। कस्बे के बाहर एक शण्डित मन्दिर है जिसमें केवल ४ स्तम्भ बचे हैं। इसके स्तम्भ पर वि० सं० १६१६ का परमार राजा जयसिंहदेव द्वारा एक कवि चम्पवती पण्डित मोती का भैरवा नामक गाँव के दान का उल्लेख है। यह मन्दिर दसवीं शताब्दी के पासपास का बना हुआ प्रतीत होता है। यहाँ की ज्वालामुखी भ्रम कोटा के संप्रदाय में है। यहाँ दो और भी मन्दिर हैं जो गङ्गा के मन्दिर कहलाते हैं। ये मन्दिर भी १०वीं शताब्दी के हैं। इनको ई. सन् १६८ में औरगजेब ने बहवा दिया।

रामगढ़—यह सहस्रील निजमगढ़ में भांगरोल से ६ मील पूर्व की ओर सड़क के किनारे बसा छोटा सा गाँव है। इस गाँव का पुराना नाम धीनगर कहा जाता है। यहाँ की पहाड़ी पर एक १५वीं शताब्दी का पुराना टूटा-फूटा गुर्ग है। पहाड़ों से घिरे जगल में एक भण्डेद्वारा नामक शैव मन्दिर भी है। यह दसवीं शताब्दी का है तथा इसका जीर्णोद्धार तरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में एक मेव वसीय शक्ति राजा मलय से करवाया था। इस मन्दिर के शिल्प भण्डप तोरण प्रादि प्रीठ हिन्दू कला के सुन्दर उदाहरण हैं। शिल्प का भाषा भाग गिर चुका है। यहाँ पहाड़ी पर बह्या माता का एक धर्म मन्दिर है। इस पर

१-(१) मूल्य 'यदी नवप्रति कृति तिन नवत्यव भुगम्

(२) प्रामाण्य 'सम्प्रदायक चित्त नम्' प्रामाण्य

(३) बने 'गुणगन्धितोच बन्धुधाम्

(४) प्रजापाल सर्वस्महृत् कुरित् नूने समकला

(५) नाम 'स्वाम्य स्त्रीनी मन्त्र त्वे प्राणापिते प्रीती बचीषा

(१) पापेया न

(११) तथा १९—उपर्युक्त परिचित नं १

पहुँचने के लिए ७०० मीटरियाँ चढ़नी पड़ती है। रामगढ़ से प्राप्त अनेक मूर्तियाँ अब कोटा संग्रहालय में रक्खी हुई हैं। रामगढ़ की पहाड़ी तपस्थली मानी जाती है।

कृष्णविलास—किशनगढ़ तहसील में विन्नाग नदी के बाएँ किनारे पर कृष्णविलास नगर के खण्डहर हैं। खण्डहरों में ज्ञान होता है कि ग्यान्हवी शताब्दी के लगभग यह एक बहुत ही वैभवशाली नगर रहा होगा। यहाँ एक प्राचीन दुर्ग है जिसके केवल खण्डहर बच गए हैं। दुर्ग के मध्य कभी वराह मन्दिर रहा होगा जो अब टूट फूट गया है। वराह की मूर्ति विशाल है और गुप्तकाल की प्रतीत होती है। मन्दिर का सिर्फ रत्न-गृह भाग ही शेष रह गया है जिसकी छत एक ही शिलाखण्ड की बनी हुई है और उसके अन्दर के हिस्से में सुन्दर बेलवृटे खुदे हुए हैं। इस स्थान के खण्डहर और नगर में प्राप्त कई अलङ्कारपूर्ण मूर्तियाँ कोटा संग्रहालय में देखी जा सकती हैं।

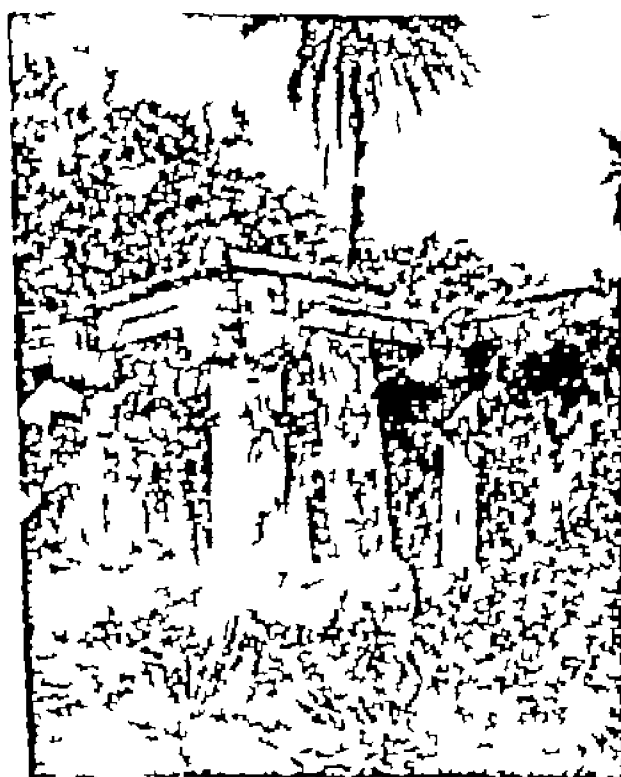
भीमगढ़—तहसील छीपाबडौद में सारथल नामक एक बड़ा गाँव है। इस गाँव से लगभग तीन मील दूर परवण नदी के किनारे पर एक प्राचीन दुर्ग तथा तीन मन्दिरों के खण्डहर पाए गए हैं। ये खण्डहर लगभग एक हजार वर्ष पुराने हैं। ये मन्दिर व दुर्ग आठवीं शताब्दी के पूर्व के प्रतीत होते हैं। दो मन्दिरों के प्रत्येक स्तम्भ पर भीमदेव का नाम अङ्कित है जिसके नाम पर इस नगर का नाम भीमगढ़ पड़ा है। इन मन्दिरों में खुदाई व सुन्दर पच्चीकारी का काम किया हुआ है।

माँगरोल—यह कोटा नगर से ३५ मील उत्तर पूर्व में पार्वती नदी की शाखा वाणगगा के दाहिने किनारे पर बसा हुआ है और निजामत माँगरोल का सदर मुकाम था। व्यापारिक दृष्टि से यह कस्बा घना बसा हुआ था। इसकी आबादी पाँच हजार के लगभग थी। वि० स० १८७८ आसोज सुदि ५ (ई० सन १८२१ की १ अक्टोबर) को महाराज किशोरसिंह और उनके फौजदार भाला जालमसिंह में युद्ध इसी नगर में हुआ था। इस युद्ध में महाराज हार कर नाथद्वारा भाग गए थे। उनके भाई पृथ्वीसिंह व दो अग्रज अफसर लेफ्टीनेन्ट क्लार्क व रीड यहाँ “बापजी राज” के नाम से काम आए। इनकी समाधि गाँव से कुछ दूर पूर्व में नदी के किनारे पर बनी हुई है।

माँगरोल से तीन मील दक्षिण की ओर सडक के किनारे भटवाडा नामक एक गाँव है जहाँ पर कोटा की सेना ने जयपुर महाराज माधोसिंह को ई० सन् १७६१ में बुरी तरह हराया था। इसी युद्ध में भाला जालमसिंह ने जिस वीरता

का परिषय दिया उससे उसकी राजनैतिक उत्पत्ति का युग प्रारम्भ होता है। कोटा बांधी ने जयपुर से पचरगा झण्डा इसी स्थान से प्राप्त किया था।^१

मुकुन्दरा—कोटा शहर के दक्षिण में ३२ मील के फाससे पर दर्रा स्टेशन से लगभग दो मील दूर पहाड़ों के बीच में बसा हुआ यह एक छोटा सा गाँव है। इसका नाम महाराज मुकुन्दसिंह हाबा (वि० स० १७४-१७१५) के पीछे मुकुन्दरा पड़ा। गाँव के पास दो पहाड़ों के बीच में जहाँ दर्रे की चाटी प्रारम्भ होती है मुकुम्बसिंह ने एक बहुत बड़ा फाटक बनवाया और अपनी उप-वस्ति प्रमला मीणी के निण महसू वि स १७०८ में बनवाया।^२ इसी घाटे में से रेस मार्ग ब पक्की सड़क तिकासी गई है। यहाँ कई बार खींचियो और हाड़ों में युद्ध हुआ। मन् १८४ ई में असवस्तराव होल्कर ने कर्मल मामसम की फौज को यहीं वितर-वितर किया था। घाटे के कुछ दूर पर चवरी या मीम की चोरी नाम का मन्दिर है। इस चवरी (चारहदरी) के सभ्रहरोँ को फगु शान साहब ने



मीमचोरी (मुकुम्बरा) कोटा

१—तरवार बाल घाट की मुकुम्बरापर विरय विनीय पृ १८६

२—एकस्थान गजेन्द्र राजाघाट पृ १८६

इसे ई० सन् ४५० से पूर्व का बतलाया है। इस मन्दिर की खुदाई बड़ी वारीकी से की गई है। इसमें फूलों और पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई हैं। मन्दिर के अन्दर का भाग कलामय उत्कीर्ण फूल पत्तों से अलंकृत है। मन्दिर के स्तम्भ पर गुप्तकालीन लिपि में ध्रुवस्वामी^१ का नाम खुदा है। यह मन्दिर गुप्त वास्तु-कला का सुन्दर उदाहरण है।

बारँ—पार्वती नदी की शाखा बाण गंगा के वाएँ तट और कोटा शहर से ४५ मील पूर्व की ओर बसा हुआ है। इसी नाम की निजामत का यह सदर मुकाम रहा है। यह व्यापार की एक बहुत बड़ी मण्डी है। यहाँ रेलवे का स्टेशन भी है। १९५१ की जनगणना के आँकड़ों पर यहाँ की जन-संख्या २०,४१९ थी। ईसा की १४वीं शताब्दी में यह कस्बा सोलंकी राजपूतों के अधिकार में था और उसके अन्तर्गत बारह गाँव होने से यह 'बारँ' कहलाया। अनाज और अलसी का यहाँ मुख्य व्यापार होता है। सन् १९०४ में यहाँ अंग्रेज सरकार का अफीम का गोदाम खोला गया था जहाँ से विभिन्न स्थानों को अफीम भेजी जाती थी। यहाँ कल्याणरायजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इसीसे मिली हुई मसजिद भी है।

गगरोन—यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिण पूर्व में और भालावाड़ नगर से तीन मील उत्तर पूर्व में है। यहाँ का किला कालीसिन्ध और आहू नदियों के सगम पर एक छोटी पहाड़ी पर बसा हुआ है। इसके तीन ओर कालीसिन्ध नदी है। यहाँ पर कालीसिन्ध अधिक गहरी व भयंकर पहाड़ियों में से होकर बहती है। राजस्थान के किलों में इसका स्थान प्रमुख है। भौगोलिक दृष्टि व सामरिक दृष्टि से इस किले का महत्व मध्य काल में इतना बढ़ गया था कि कोटा राज्य की सुरक्षा पक्की का पहला स्तर यही था। किले के पाम ही गाँव बसा हुआ है। इस किले को डोड (डोडिये) वंश के राजपूतों ने बनवाया था जिनके अधिकार में यह १२ वीं शताब्दी तक रहा। यही कारण है कि इसे डोड-गढ़ भी कहा जाता है। खटकड़ के खीची राजा देवसी ने अपनी बहन गगाबाई की शादी यहाँ के शासक बीजल डोडिया से की थी। बहन की सहायता से खीची देवसी ने बीजल को मार कर इम गढ़ पर अधिकार कर लिया था। कहते हैं कि देवसी ने अपनी बहन का नाम चिरस्थायी करने के लिए किले का नाम डोडगढ़ (डोलरगढ़) से बदल कर गगारूण (गगारमण) कर दिया और इसे अपनी राजधानी बनाया। यहाँ के राजा जैतमिह खीची ने वि० स० १३०० में बादशाह अलाउद्दीन के घेरे का सफलतापूर्वक मुकाबला किया परन्तु वि० स० १४८४

१—यह ध्रुवस्वामी बाद के गुप्तों का योद्धा था और हूणों से युद्ध करता हुआ काम आया था। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ २५

(ई० सन् १४२६) में राजा भवसदास खीची के समय मासवा के सुल्तान हुसैन खाह ने यह किला जीत लिया लेकिन सन् १४२८ में भवसदास ने पुनः इस किले पर अधिकार कर लिया और सन् १४४८ तक इसे अपने अधिकार में रखा। ई० १५१६ में यहाँ भीमकर्ण शासक हुआ परन्तु मासवा के शासक महमूद खिसत्री ने इस पर आक्रमण किया। राजा भीम हार गया। वह कैद कर लिया गया और मार डाला गया। कुछ ही काल बाद सम्बत् १५२१ में उदयपुर महाराणा सप्रामसिंह ने महमूद खिसत्री का हरा कर इस किले पर अधिकार कर लिया। सन् १५३२ तक यह किला सिसोदिया राजपूतों के अधिकार में रहा। सन् १५२६ में महाराणा सांगा की मृत्यु हुई। सन् १५३२ में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने खिलजी पर आक्रमण किया। उसी समय गागरोल पर गुजरात के बादशाह का अधिकार हो गया। सन् १५६० में अब मासवा पर भवसो (सम्बर का भाभाई) ने आक्रमण किया तो गागरोल मुगलों के हाथ आ गया। घाटाखुर्ची बदायूनी के प्रारम्भ तक यह किला मुगलों के अधिकार में रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद दिल्ली की राजनीति में उपल-मुपल होते लयी। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद सैय्यद भाईयों का मुगल राजनीति में प्रभाव बढ़ा। उनको सहायता देने के उपसल में सैय्यद भाईयों ने महाराज भीमसिंह (सम्बत् १७६४-१७७७) को गागरोल का किला दे दिया। तब से यह किला हाहा राजपूतों के अधीन रहा। कोटा के प्रधान मन्त्री असा आसमसिंह ने इस किले की मरम्मत कराई तथा अपना आश्रयस्थान तथा रिजर्व सेना का कन्द्र यहाँ रखा। इसी के पास छावनी बसाई जहाँ कोटा की सेना का मुख्य कन्द्र हो गया।

कोटा दरबार की यहाँ पर पहले टकसाल थी जहाँ मुगलाई सिकके बसते थे। यहाँ के तोते अस्पष्ट प्रसिद्ध हैं। इस किले पर अनेक लड़ाइयाँ हुई। किले में भिठा शाह की दरगाह^१ भी है जिसके दरवाजे की बाईं दीवार पर फारसी में एक सिलालेख लगा हुआ है जिससे प्रगट होता है कि मियाँ मुअज्जम और मियाँ बजहीन साँबहलमी ने हि स ७५ के जिस्हीज (हि स १४ ७ फाल्गुण = फरवरी १३३० ई) में यह मुम्बज बनाया था। दूसरा लेख हि स ६८७ जिस्हीज (हि स १६३७ माघ = ई स १५८ अतबरी) का भीकानेर के

१ यहाँ के दरवाजे में अदुलकबर ने गागरोल को मासवा का मुख्य शिमा किला है।

२ यह दरगाह हिन्दू तीर्थों पर बनी है। सम्भव है बनाये जाने के लिये शरीर हिन्दू ही। दरगाह की पत्थीपत्थी शरीरों के की गई है।

राठौड कत्याणमल के पुत्र सुल्तानमिह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था। उस समय उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा द्वारा दरवाजा बनवाए जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख हि स ६६१ मोहर्रम (वि. स. १६४० मार्च १५८३ ई) का यहाँ के हाकिम राठौड सुल्तान के समय का है। इससे पाया जाता है कि छत्री थानेश्वर निवासी उल्वी खाँ के पुत्र मियाँ ईसा ने बनाई थी। किले में अनेको शिलालेख मिले हैं जो इस किले के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। किले में दुर्गा, गरेश, शिव आदि की कई मूर्तियाँ हैं।

मोठपुर—कोटा राजधानी से ५० मील पूर्व और शेरगढ से ७ मील पूर्व की ओर यह एक बड़ा गाँव है। यह अटरू तहसील में है। कुछ समय से यहाँ की राम बावडी का जल कई प्रकार की बीमारियों को दूर करने के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। यहाँ शक्तिमागर नाम का एक तालाव है जिसे धारू खीची ने खुदाना प्रारम्भ किया था और उसके बेटे शक्तु ने पूरा करवाया। इसके पास ही खीचियों का छार बाग है। उसमें एक बावडी के कीर्ति-स्तम्भ पर वि स. १५५७ अगहन वद ५ सोमवार का एक लेख है। उसका भावार्थ यह है कि श्री राज श्री धारूदेव के बेटे शक्तुदेव के भाई कुम्भदेव का बेटा श्री वमदेव की राणी रावतसिंह की पुत्री उमादे ने बावडी बनवाई। एक अन्य शिलालेख है। उसका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है। स १५५० (शाके १४१५) आसाढ सुदि १०, सोमवार (८ जुलाई १४६३ ई) को राजाधिराज श्री धारूदेव खीची जायलवाल के साथ धीरादे (धीरा देवी) बागडनी और सूरतदे कछवाही सती हुई।

स. १५५५ शाके १४२० श्रावण वदि १० शनिवार (ई सन् १४६८ की जुलाई) को मोठपुर का राजा श्री कुम्भदेव धीरादेव खीची जायलवाल का बेटा देवलोक हुआ जिसके साथ राणी कछवाही, राणा छान्रवति और दो सोलकी राणियाँ सती हुईं।

मोठपुर में दस्तकारी की चीजे अच्छी बनती हैं। भादो सुदि ७ को यहाँ तजाजी का मेला लगना है। कहा जाता है कि मारवाड के तेजाजी मालवा जाते समय और लौटते समय यहाँ से गुजरते थे।

मनोहर थाणा—परवन नदी के किनारे यह कस्बा बसा हुआ है। इसी नाम की तहसील का सदर मुकाम है। इसे पहले खाताखेडी कहते थे। मुगल बादशाहों ने नवाब मनोहर खाँ को अन्य गाँवों के साथ यह भी जागीर में दिया था जिसने इस गाँव को अपने नाम पर बसाया। उसके बाद यह भीलो के

६०० भील तथा ३०० हाडा सिपाही मारे गए । कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर बून्दी के हाडो का अधिकार हो गया^१ लेकिन समरसी के बून्दी लौटते ही सम्भवत भीलो ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुन प्रयास किया होगा । क्योंकि सूर्यमल मिश्रण और टॉड दोनो ही इस बात का उल्लेख करते है कि कोटा को पुन प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिंह को जाता है । वशभास्कर में उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जेतसिंह का विवाह कैथुन के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया । जैतसिंह महत्वाकांक्षी राजकुमार था । उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलो पर आक्रमण किया । इस आक्रमण मे उसे अपने श्वसुर और पिता दोनो की सहायता प्राप्त थी । भीलो को नष्ट करने मे जेतसी ने उन्ही उपायो को काम मे लिया जिन्के द्वारा देवसिंह ने मीणो से बून्दी छोनी थी^२ । इस युद्ध मे जैतसिंह के पक्ष मे सैलारखाँ नामक पठान भीलो के विरुद्ध लडता हुआ मारा गया । इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई)^३ मे अकेलगढ के भीलो को मार कर जैतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया^४ ।

जैतसिंह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिंह को दे दिया । तब से कोटा बून्दी के राजकुमार की जागीर मे रहने लगा । कोटा पर हाडा चौहानो का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माधोसिंह ने कोटा को बून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाडो को इस शाखा को माघाणी हाडा कहा जाने लगा । कालान्तर मे हाडाओ की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि मे रख कर प्रभावशाली हो गई ।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बडा लडका^५ नापू बून्दी की गद्दी पर बैठा । जैतसिंह कोटा मे राज्य करता रहा । जैतसिंह ने अपने बडे भ्राता की अधीनता

१ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९ ।

२ मीणो के साथ देवसिंह का विश्वासघात डा मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८ ।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०स० ।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृ १६७९ । ठाकुर लक्ष्मणदाम—कोटा राज्य का इतिहास । डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ ६२ । टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८ । टाड वर्णन करता है कि जैतसिंह तँवरों के यहा से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रो के निवासियो ने अचानक आक्रमण कर दिया । इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जैतसिंह ने भीलो के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैरो के लिए) निर्मित किया । यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार भोपडे मे स्थित है ।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जेतमी ।

हाथ सगा जिन्होंने एक मजबूत गड़ बनवाया जो आज तक विद्यमान है। भीमों से यह महाराज भीमसिंह हाड़ा ने अधिदार में आया। इसका परकोटा फौजदार आसिमसिंह भद्रा ने बनवाया था। बिले के नीचे पर्वत श्रीर काजर मन्थियाँ घामिल होकर एक बहुत बड़ा गुण्ड बनाती है।

रासावेई—असनावर कस्बे में आर मौस उत्तर की घोर पहाड़ों के बीच बहिया चासर नाम का भीमों का एक छोटा सा गाँव है। यहाँ के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रासावेई का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्तदान का वरुण मारण्ड पुराण में है वह यही देवी है परन्तु इस प्रान्त के लोग इसको सीपी राजा अचमदास की बहिन बताते हैं। निज मन्दिर तो अचमा सीपी का बनवाया हुआ था। सामने का मण्डप फौजदार आसिमसिंह भद्रा का तयार कराया हुआ है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किता समय धीनगर नाम का कस्बा था था। कुछ खडहर उसी कस्बे के अवशेष के रूप में अब भी बिले पर है। इन खण्डहरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी म्वाले ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के खण्डहर के सिमासेक से साटा होता है कि यह बेलणव मन्दिर था जिसको दाह दामोदर ने बि १४१६ कार्तिक बदि १ (ई सन् १५३६ तारीख = अक्टूबर मयस पार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा महु के सीपी राजा का मुख्य स्थान था। तालाब के किनारे पर क खूतरी व छत्रियों में से कई पर घिसा लक लगे हुए हैं। एक खूतरे पर चरणपादुका का भिम्ह है और उसके नीचे 'चरणपादुका माष की' लिखा है। परन्तु इस लोग अचमदास सीपी का मृत्यु-स्मारक बताते हैं। अचमदास सीपी का देहान्त सं १४८४ को माष बदि १२, (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार को हुआ। यहाँ सतियों के कई स्मारक बिले पर है। तालाब से दो भीस पश्चिम में उजड़ नदी के दाहिने तट पर सीपी राजाओं के बगवाए महलों और मन्दिरों के मग्नावशेष है। पहाड़ों की टेकरी पर बिले का दरवाजा अकेसा खडा है जिसे हवियापोस कहते हैं।

घोरगड—यह कोटा से ५ भीस दक्षिण में पर्वत नदी के किनारे पहाड़ के निकट बसा है। पहले यह निबामत का मुख्य स्थान था लेकिन अब अटक तहसील में है। यह कस्बा सातवीं सताब्दी से पहले का बना हुआ है। इसको प्रारम्भ में कोपवर्धन कहते थे जैसा कि यहाँ से प्राप्त शिलालेख से सात होता है। यहाँ से प्राप्त वि सं ८७ माष सुदि ६ के सिमासेक से पता लगता है कि यहाँ के नागवशी राजा देवदत्त ने जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था एक बौद्धबिहार

वनवाया था। इस कस्बे में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख में धार के परमार नरेण वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कब लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तियाँ भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वीं शताब्दी में बनवाई थीं। यहाँ पहले नागवशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतों के अधिकार में आया जिनसे खीचियों ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ़ रक्खा। यहाँ का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलों के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाड़्यो का पक्ष लेकर जब महाराज भीमसिंह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट बना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिंह को दे दिया। फौजदार जालिमसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खाँ पिण्डारी को सौंप दिया। जब १८१७ ई० में पिण्डारियों का नाश हो गया तो इस गढ़ में कोटा की एक सैनिक टुकड़ी रहने लगी।

बडवा—यह स्थान अन्ता तहसील में है। बडवा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए हैं जिसमें से दो के अवशेष बचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकौना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए हैं। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि में वि. स. २६५ के लेख खुदे हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी वंश के राजा बल के चारों पुत्रों ने त्रिराज्य यज्ञ करके ये यूप-स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणों को दान दीं। राजा बल मालवा के शक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई.) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योंकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड़) तक फैला हुआ था।

हाथ लगा जिन्होंने एक मजबूत गढ़ बनवाया जो आज तक विद्यमान है। भीमों से यह महाराज भीमसिंह हाड़ा के अधिकार में आया। इसका परकोटा फौजदार जामिनसिंह झासा ने बनवाया था। किले के नीचे पर्वत और काजर नदियाँ जामिनसिंह होकर एक बहुत बड़ा कुण्ड बनाती हैं।

रातावेई—भमनावर कस्बे से चार मील उत्तर की ओर पहाड़ों के बीच बठिया चासर नाम का भीमों का एक छोटा सा गाँव है। यहाँ के मानसरोवर नाम के एक सुन्दर तालाब के पूर्वी किनारे पर रातावेई का प्रसिद्ध मन्दिर है। यहाँ के पुजारी कहते हैं कि जिस देवी का रक्षयान का वर्णन भारकण्ड पुराण में है वह यही देवी है परन्तु इस प्रांत के लोग इसकी स्त्रीची राजा अचलदास की बहिन बताते हैं। निच मन्दिर तो अचला स्त्रीची का बनवाया हुआ था। सामने का मण्डप फौजदार जामिनसिंह झासा का तैयार कराया हुआ है। कहते हैं कि मानसरोवर तालाब के दक्षिणी किनारे पर किसी समय तीनगर नाम का कस्बा आबाद था। कुछ सड़हर उसी कस्बे के अवशेष के रूप में अब भी विद्यमान हैं। इन सड़हरों में तीन मन्दिर हैं। सबसे बड़ा मन्दिर महादेव का है जिसको किसी व्यासे ने बनवाया था। मानसरोवर के दक्षिण तरफ के सड़हर के सिलामेख से ज्ञात होता है कि यह बेष्णव मन्दिर था जिसको साहू रामोदर ने वि १४१६ वार्तिक वि १ (ई सन् १५३२ तारीख ८ अक्टूबर मंगलवार) को बनवाया था। कहते हैं कि यह कस्बा महु के स्त्रीची राजा का मुख्य स्थान था। तालाब के किनारे पर क बबूतरो व छत्रियों में से कई पर सिला लेख मंगे हुए हैं। एक बबूतरे पर चरणपादुका का चिन्ह है और उसके नीचे 'चरणपादुका माध की' लिखा है। परन्तु इस लोग अचलदास स्त्रीची का मुख्य स्मारक बताते हैं। अचलदास स्त्रीची का देहांत स १४८४ को माघ वशि १२ (१३ जनवरी १४२८) मंगलवार को हुआ। यहाँ सतियों के कई स्मारक विद्यमान हैं। तालाब से दो मील पश्चिम में उजड़ नदी के दाहिने तट पर स्त्रीची राजाओं के बनवाए महलों और मन्दिरों के अवशेष हैं। पहाड़ी की टेकरी पर जिस का दरवाजा अकला बड़ा है जिसे हथियापोस कहते हैं।

शेरगढ़—यह कोटा से ५ मील दक्षिण में पर्वत नदी के किनारे पहाड़ के निकट बना है। पहले यह निजामत का मुख्य स्थान था सकिन भय अटल तहसील में है। यह कस्बा सातवीं शताब्दी से पहले का बना हुआ है। इसको प्रारम्भ में औपवर्धन कहते थे जैसा कि यहाँ से प्राप्त सिलामेख से ज्ञात होता है। यहाँ से प्राप्त कि सं ८७० माघ सुदि ६ के सिलामेख से पता लगता है कि यहाँ के नागवपी राजा देवदत्त ने जो स्वयं बौद्धमतानुयायी था एक बौद्धविहार

वनवाया था। इस कस्बे में लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में शिलालेख भी मिला है। एक शिलालेख में धार के परमार नरेश वाक्पतिदेव से उदयादित्य तक की वशावली दी हुई है। इस शिलालेख से प्रतीत होता है कि यह मन्दिर पहले सोमनाथ का था पर कैसे व कब लक्ष्मीनारायण का मन्दिर हो गया यह प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तीन टूटी जैन मूर्तियाँ भी मिली हैं जो एक राजपूत सरदार ने ११ वीं शताब्दी में वनवाई थी। यहाँ पहले नागवशी शासन करते थे। फिर यह डोड राजपूतों के अधिकार में आया जिनसे खीचियों ने छीन लिया। शेरशाह ने इसे जीत कर इसका नाम शेरगढ़ रक्खा। यहाँ का किला परमार काल से चला आ रहा है। कई सौ वर्षों तक यह किला मुगलों के अधीन रहा। परन्तु सैय्यद भाड्यो का पक्ष लेकर जब महाराज भीमसिंह ने फरूखसियार को दिल्ली का सम्राट बना दिया तो फरूखसियार ने इस किले को भीमसिंह को दे दिया। फौजदार जालिमसिंह ने इसका जीर्णोद्धार करा कर अमीर खान पण्डारी को सौंप दिया। जब १८१७ ई० में पण्डारियों का नाश हो गया तो इस गढ़ में फोटा की एक सैनिक टुकड़ी रहने लगी।

बडवा—यह स्थान अन्ता तहसील में है। बडवा गाँव से पूर्व की ओर लगभग आधा मील दूर कामतोरण स्थान पर ४ प्राचीन यूप पाए गए हैं जिसमें से दो के अवशेष बचे हुए हैं। प्रत्येक यूप १६ फीट लम्बा है। नीचे चौकोर ६ फीट तक तथा इसके ऊपर अठकौना है। ऊपर जाकर फिर चौकोर हो गए हैं। इन पर कुशाण-कालीन ब्राह्मीलिपि में वि. स. २६५ के लेख खुदे हैं। इन लेखों से ज्ञात होता है कि मौखरी वंश के राजा बल के चारों पुत्रों ने त्रिराज यज्ञ करके ये यूप-स्थापित किए थे। प्रत्येक ने यज्ञ-समाप्ति पर १००० गायें ब्राह्मणों को दान दीं। राजा बल मालवा के एक क्षत्रिय विजयदामन (२३८-२५० ई.) का सामन्त और माण्डलिक राजा रहा होगा क्योंकि उस समय विजयदामन का राज्य नन्दसा (मेवाड़) तक फैला हुआ था।

कोटा घुन्वी का एक धग

घुन्वी कोटा और झरणावाड़ राज्यों का क्षेत्र जिससे अब कोटा मण्डल (डिविजन) बना है हाइकोली प्रदेश कहलाता है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में मीरों व मोलों का प्रदेश था परंतु धीरे-धीरे इस क्षेत्रों पर मुसलमानों के आक्रमणों के समय राजपूत शासकों ने अधिकार कर लिया। सीमर के चौहानों ने अजमेर पर अधिकार कर पृथ्वीराज तृतीय के काल में अन्तिम बार हिन्दू राज्य स्थापित किया। सीमर से चौहानों की दूसरी शाखा नाडोल (मारवाड़) होती हुई जितौर के पास बम्बावदा में स्थापित हो गई। बम्बावदा के राज देवा ने सम्बत् १३६८ (१३४३ ई.) में मीरों से बन्धु शादी छीन कर घुन्वी नगर की स्थापना की^१। राज देवा के बाद राज समरसी घुन्वी की गद्दी पर बैठा। उसके राजगद्दी पर बैठने के समय (१४ वि सं.) घुन्वी का राज्य सम्वत नदी के बाएँ किनारे तक था। नदी के दाहिने किनारे पर मीरों का राज्य था जिसका नेता कोटया मीर था^२। मीर राज अकेसगढ़ से वसिण पूर्व मुकुन्दरा पर्वत की श्रेणियों के साथ-साथ मनोहरघाणे तक फैला हुआ था। कोटया मीर के नाम से उसकी वासित भूमि कोटा कहलाने लगी।

समरसिंह ने अपने राज्य विस्तार करने हेतु सम्वत के उस पार के मीर नामक कोटया पर हमला किया। अकेसगढ़ के पास भुट्ट हुआ। इस युद्ध में

१ टाड एनाथन एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान जिल्ड ३ पृष्ठ १४६७।

संश्लेषकर डिवीय भाग पृष्ठ १६२५-२७ के अनुसार राज देवा ने माराड कुप्या नवमी सम्बत् १३६८ (ई सं १३४१) को बुरी पर अधिकार किया था (सिरो-जैपूर इन घुन्वी का इतिहास पृष्ठ ४२-४३)

२ संश्लेषकर जिल्ड ३ पृष्ठ १६७८-७९।

टाड राजस्थान जिल्ड ३ पृष्ठ सं १४६९ में उल्लेख है कि कोटया मीर जति का नाम था।

३ कोटा में ३ मीर अजमेर-अजमेर की ओर।

६०० भील तथा ३०० हाडा सिपाही मारे गए। कोट्या युद्ध से भाग गया और भील क्षेत्र पर वून्दी के हाडो का अधिकार हो गया^१ लेकिन समरसी के वून्दी लौटते ही सम्भवत भीलो ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने का पुन प्रयास किया होगा। क्योंकि सूर्यमल मिश्रण और टांड दोनो ही इस बात का उल्लेख करते हैं कि कोटा को पुन प्राप्त करने का श्रेय समरसी के तीसरे पुत्र जैतसिंह को जाता है। वशभास्कर में उल्लेख है कि समरसी ने अपने पुत्र जैतसिंह का विवाह कैथुन के तँवर सरदार की पुत्री से कर दिया। जैतसिंह महत्वाकांक्षी राजकुमार था। उसने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बनाई और अकेलगढ के भीलो पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उसे अपने श्वसुर और पिता दोनो की सहायता प्राप्त थी। भीलो को नष्ट करने में जैतसी ने उन्ही उपायो को काम में लिया जिनके द्वारा देवसिंह ने मीणो से वून्दी छीनी थी^२। इस युद्ध में जैतसिंह के पक्ष में सैलारखाँ नामक पठान भीलो के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार सम्वत् १३२१ (१२७४ ई)^३ में अकेलगढ के भीलो को मार कर जैतसिंह ने कोटा नगर पर अधिकार किया^४।

जैतसिंह के इस पराक्रम से प्रसन्न होकर राव समरसी ने कोटा जैतसिंह को दे दिया। तब से कोटा वून्दी के राजकुमार की जागीर में रहने लगा। कोटा पर हाडा चौहानो का शासन तब ही से चला आ रहा है और जब राव माघोसिंह ने कोटा को वून्दी से स्वतन्त्र करा लिया तो हाडो को इस शाखा को माघाणी हाडा कहा जाने लगा। कालान्तर में हाडाओ की यह शाखा अपने मुख्य शाखा को पृष्ठभूमि में रख कर प्रभावशाली हो गई।

समरसी की मृत्यु के पश्चात् उसका बड़ा लडका^५ नापू वून्दी की गद्दी पर बैठा। जैतसिंह कोटा में राज्य करता रहा। जैतसिंह ने अपने बड़े भ्राता की अधीनता

१ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ १६७८-७९।

२ मीणो के साथ देवसिंह का विस्वासघात डा मथुरालाल कृत कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ५८।

३ टाड के अनुसार १४२३ वि०स०।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृ १६७९। ठाकुर लक्ष्मणदाम—कोटा राज्य का इतिहास। डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ ६२। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृष्ठ १४६८। टाड बर्णन करता है कि जैतसिंह तँवरो के यहाँ से लौट रहा था तब भीलों पर चम्बल घाटी के क्षेत्रों के निवासियों ने अचानक आक्रमण कर दिया। इस घाटी के प्रमुख द्वार पर जैतसिंह ने भीलों के नेता को मार कर वहाँ पर एक हाथी (कालभैरों के लिए) निर्मित किया। यह कोटा गढ के मुख्य द्वार के पास चार भोपडे में स्थित है।

५ समरसी के ३ पुत्र थे—१ नेपुजी, २ हरपाळ, ३ जैतसी।

वास्तव में १५६० ई० के आस-पास कोटा में मुसलमानों की शक्ति कमजोर होने लगी। मालवा के सुल्तान बाजबहादुर को अकबर के सेनापति अघमखाँ ने हरा मालवा मुगल साम्राज्य में मिला लिया था। कोटा के मुसलमानी शासकों को जो सहायता मालवे से प्राप्त होती थी वह न होने लगी। इसी समय बून्दी के सिंहासन पर राव सुर्जन बैठा। उसने मुसलमानों से कोटा पुनः प्राप्त करने के लिए एक बड़ी सेना तैयार की। इस सेना में उसके लगभग २० जागीरदार भाई और कितने ही अन्य राजपूत सरदार शामिल थे^१। भदाना से दो मील दूर दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई^२। केसरखाँ व डोकरखाँ युद्ध-क्षेत्र से भाग कर कोटा नगर में जा घुसे पर हाडा राजपूत कीर्तिसिंह ने उनका पीछा किया। केसरखाँ और डोकरखाँ कोटा में युद्ध करते हुए मारे गए। कोटा पर राव सुर्जन का अधिकार हो गया। २६ वर्ष तक मुसलमानों अधिकार में रह कर कोटा पुनः हाडाओं का कीर्तिकेन्द्र बना^३। इस विजय का परिणाम यह हुआ कि राव सुर्जन की बढ़ती हुई शक्ति व भय से मऊ के खीचो रायमल ने सीसवळी, बडोद आदि क्षेत्र सुपुर्द कर दिये। परन्तु खीचियों के इस यत्न में कीर्तिसिंह मारा गया। कोटा का राज्य सुर्जन ने अपने पुत्र भोज को दे दिया जो एक स्वतन्त्र शासक की तरह राज्य करने लगा।

राव सुर्जन की मृत्यु के बाद भोज बून्दी का शासक बना। भोज के तीन पुत्र थे। रतन, हृदयनारायण व केशोदास। राव भोज ने कोटा के शासक का भार अपने द्वितीय पुत्र हृदयनारायण को सौंपा और इम सम्बन्ध में अकबर बादशाह से स्वीकृति का फरमान भी प्राप्त किया^४। हृदयनारायण ने लगभग १५ वर्ष तक कोटा पर राज्य किया। वह एक स्वतन्त्र शासक था, फिर भी प्रारम्भ में अपने पिता और उसके बाद में अपने भाई राव रतन की आज्ञा का पालन करता रहा।

भोज की मृत्यु के बाद राव रतन बून्दी की गद्दी पर बैठा। यह अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। उस समय मुगल बादशाह जहाँगीर दिल्ली पर राज्य करता था। जहाँगीर के विरुद्ध उसके लडके खुर्रम ने विद्रोह कर दिया। राव रतन ने जहाँगीर को सहायता देकर खुर्रम के विद्रोह को दबाया और जहाँगीर

१ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २२३६।

२ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २२३७।

३ गैपरनाथ का शिलालेख, वि० म० १६३६।

४ टाड राजस्थान (ए० ए०) जिल्द ३, पृष्ठ १४६६ फुटनोट।

के तख्त की रक्षा की'। सुर्रम के विद्रोह को दबाने के लिए राव रतन के साथ उसका भाई कोटा का शासक हृदयनारायण भी था। दोनों भाई शाहजादा परबेब के साथ सुर्रम को दबाने के लिए इलाहाबाद की ओर चले। भूसी के स्वाम पर सम्बत् १६८० में भयकर युद्ध हुआ। सुर्रम तो जाम बचा कर दक्षिण की ओर भागा^१। हृदयनारायण ने इस युद्ध में अस्यन्त कायरता का परिचय दिया। वह भी रण-क्षेत्र से भाग सका हुआ। जहाँगीर हृदयनारायण पर बहुत क्रोधित हुआ और उसको कोटा गद्दी से उतार दिया। प्रस्थापी रूप से राव रतन ने कोटा राज्य का शासन अपने अधिकार में ले लिया।

शाहजादा सुर्रम भूसी में हार कर उड़ीसा तसंगाना और गोलकुण्डा की ओर चला हुआ पुनः दक्षिण में पहुँचा। उसने मुगल साम्राज्य के विरुद्ध अहमद नगर के प्रधान मंत्री मलिक अम्बर से मित्रता करली। उस समय मुगल सेना बुरहानपुर में पड़ी हुई थी जिसका नेतृत्व राव रतन कर रहा था। सुर्रम ने मलिक अम्बर की सहायता से बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। राव रतन के दो पुत्र माधोसिंह और हरिसिंह इस युद्ध में उसके साथ थे। इस युद्ध में विजय राव रतन की हुई और सुर्रम भाग निकसा। उसके ३०० सिपाही राव रतन से कैद कर लिए और बहुत सा सामान लूट लिया^२। माधोसिंह ने इस युद्ध में अपनी वीरता का पूर्ण प्रदर्शन किया। जहाँगीर इस जीजवान राजपूत राजकुमार पर अस्यन्त प्रसन्न हुआ। बादशाह का इस देस कर सम्बत् १६८१ के बाद राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा का राजा बना दिया तथा इस कोशिश में रहा कि जहाँगीर उसकी स्वीकृति का फरमान दे दें।

जब सुर्रम ने अपना अपराध स्वीकार कर अपने पिता से क्षमा मांग ली तब सुर्रम का भय जहाँगीर को न रहा। सुर्रम के विद्रोह दबाने का धर्म महाबतली और राव रतन को गया। राव रतन को बुरहानपुर का सूबेदार नियुक्त किया गया। सुर्रम को बेसरेस रक्तने का भार पहले तो राव रतन के छोटे बेटे हरिसिंह को दिया गया परन्तु वह बहुत अल्पव्ययिक था। शाहजादे को उसका बहुत लज किया। इस पर राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को सुर्रम की

- १ गावर पूर्या अल्ल बहूपी अलकी रने अतम।
जाना नर बहाँगीर को राजको राव रतम॥
- टाड अतमन एड एन्टीग्रीटीज प्राफ राजस्थान जिल्ह ३ पृष्ठ १४७६।
- २ लखी ना जिल्ह १ पृष्ठ ३४६ ३४६।
- ३ असासकण तृतीय भाग पृष्ठ २४६६।
- ४ दक्कन एड डाउमन जिल्ह ६ पृष्ठ ३६३ तथा ४६८।
- गन्धीना जिल्ह १ पृष्ठ ३४६ ३।
- बंगालापर तृतीय भाग पृष्ठ २४८० २४ ६४।

निगरानी के लिए रक्खा। माधोसिंह ने खुर्रम की अत्यन्त सेवा की। खुर्रम को आदर-भाव से रक्खा। दिल्ली की राजनैतिक स्थिति का अध्ययन करके राव रतन ने भी अपनी राजनैतिक विचारधारा व दृष्टिकोण बदलना शुरू किया। जहाँगीर के अन्तिम दिनों में १६२२ ई से उसकी मृत्यु तक राजनैतिक सकट-काल का युग रहा। पहले कन्धार इरानियों के हाथ में चला गया। फिर खुर्रम ने विद्रोह किया। यह शान्त हुआ तो महावतखाँ ने विद्रोह कर दिया। नूरजहाँ बेगम अपने जामाता शहरयार को बादशाह बनाना चाहती थी जो अत्यन्त अयोग्य था। साम्राज्य का शक्तिशाली सामन्त आसफखाँ खुर्रम को दिल्ली तख्त पर बैठाने की योजना में तल्लीन था। आसफखाँ की पुत्री मुमताजमहल की शादी खुर्रम से हो चुकी थी। राजनैतिक बहाव खुर्रम की ओर अधिक था। नूरजहाँ के शासन से सभी सामन्त तग आ चुके थे। उससे लोहा लेने वाला खुर्रम ही था। अतः राव रतन का झुकाव खुर्रम की ओर होने लगा और उसने माधोसिंह को खुर्रम की ओर सद्ब्यवहार बरतने की अपनी इच्छा प्रकट की।

बुरहानपुर के युद्ध-क्षेत्र में खुर्रम कैद कर लिया गया था जिसकी निगरानी के लिए राव रतन ने माधोसिंह को रक्खा था। जहाँगीर ने खुर्रम को दिल्ली बुला भेजा परन्तु राव रतन ने यह कह कर टाल दिया कि शाहजादा खुर्रम विमार है। पर जब बार-बार शाही पैगाम इस सम्बन्ध के आने लगे तो उसने व माधोसिंह ने मिल कर खुर्रम को कैदखाने से भगा दिया। इस कार्य में बुरहानपुर के किलेदार द्वारकादास का भी हाथ था। काश्मीर से लौटते समय

१ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २५२३-२६।

यह घटना केवल सूर्यमल मिश्रण द्वारा ही स्पष्ट की गई है। फारसी तवारिखों में इसका उल्लेख नहीं है। सम्भवतः राजपूतों की वीरता का प्रदर्शन करने तथा खुर्रम पर राव रतन के ऐहसानों का मुसलमानी लेखकों ने वर्णन करने का जान बूझ कर प्रयास नहीं किया हो। डाक्टर बेनीप्रसाद ने "हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर" (पृष्ठ ३६३-६५) में इस घटना का यों उल्लेख किया है कि बुरहानपुर में हार जाने के बाद खुर्रम ने जहाँगीर से क्षमा-याचना की। उस समय महावत खाँ का प्रभाव बढ़ रहा था। नूरजहाँ उसकी बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए खुर्रम (जो कि अब शक्तिहीन हो चुका था) से शान्ति करने के पक्ष में थी। खुर्रम को सद्ब्यवहार रखने के लिए अपने दो पुत्र दारा व औरंगजेब को बादशाह के सुपुर्द करना पड़ा तथा रोहतास व असीरगढ भी बादशाह को दिये गए। जहाँगीर ने उसे बालघाट का सूबेदार बना दिया।

वशभास्कर की घटना के उल्लेख की सत्यता पर डा० मधुरलाल शर्मा ने 'कोटा राज्य का इतिहास' (भाग १, पृ० १०३ फुटनोट) में यह लिखा है कि 'राव रतन के जीवन-चरित्र में बुरहानपुर की रक्षा और माधोसिंह को स्वतन्त्र राजा बनाना तो फारसी तवारिखों और

जहाँगीर बीमार पड़ा और लाहौर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली एक्सुर घासफासी ने खुर्रम को बावशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के मिहान पर बैठा। शाहजहाँ ने माघोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया^१। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बुन्दी के घाठ परगने जो उसने जय किये थे माघोसिंह को दिए^२। अब माघोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राज रतन बुरहानपुर में बासनाट की रक्षा करते हुए सम्बत् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माघोसिंह भी था। माघोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना भजी। शाहजहाँ ने राज रतन के पाटवी पौत्र शम्भु शास (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बुन्दी का न माघोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सम्बत् १६८८ में माघोसिंह ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे जिस भत्त भजी तथा उसे २५०० जात व १५०० सवार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि. स. १६८८ की पोष बदि ३ को कोटा राज्य प्रसंग स्थापित हो गया।

राज माघोसिंह (वि० स० १६८८-१७०४)

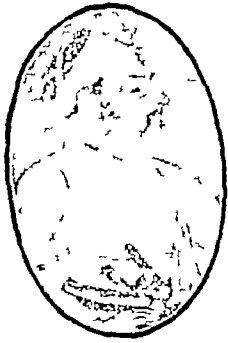
बुन्दी के शासक राज रतन के तीस पुत्र थे गोपीनाथ माघोसिंह व हरिसिंह।

प्रत्यक्ष बटमारों से सिद्ध है ही। जिहादात्मक हो सकता है केवल खुर्रम का राज रतन के संरक्षण में कीर्तन लाहौर हरिसिंह व माघोसिंह के व्यवहार का दास। सम्भव है माघोसिंह को प्रथम विस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने जब यही पर बैठे ही राज रतन को धारण किया कि हरिसिंह को बरवार में हाथिरे किया जाने और राज रतन ने इस संभव से उसको नहीं भेजा कि बुन्दीवहार का स्वरण करके ही सम्राट उसको मरवा न जाने तो सम्राट ने बुन्दी के न परगने जय कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट प्रत्यक्ष भयसक्त था और माघोसिंह से प्रत्यक्ष प्रसन्न।

१ बंलभास्कर तृतीय मान पृष्ठ २५ २ इलियट व डाउसन जिल्द ९ पृष्ठ ४१८। टाड लिखता है कि यह फरमान जहाँगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहाँगीर कोटा को बुन्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे मय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्ति शाली शक्ति कभी साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विश्वास था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर घासानी से साधन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाड राजस्थान (कक सम्पादित) जिल्द १ पृष्ठ १४७७।

२ घे घाठ परगने लिख्य लिखित थे—जयरी परगणेशेड़ा ईश्वर घांवा कनवास मधुरावद बीगोद व शूल।

बंलभास्कर तृतीय मान पृष्ठ २५४३।



माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्बत् १६५६ को बून्दी नगर में हुआ था^१। प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था। युद्ध-विद्या, घुड़सवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई। विद्याभ्यास के लिए इसे संस्कृत का ज्ञान कराया गया। १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी में ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला^२। परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखों से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्बत्) वर्ष की थी। टॉड के कथन में इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र में माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध में गया होगा और वही अपनी वीरता का परिचय दिया होगा। यह युद्ध जहाँगीर के काल में सम्बत् १६७१ (१६१४ ई०) में हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया^३।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था। अतः जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध में गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रखा। राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ था। खर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध में बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाडो की हुई^४। भूसी के युद्ध में राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था। अतः बादशाह जहाँगीर उससे अत्यंत क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया। अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ। राव रतन ने कोटा अपने

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई, टॉड के अनुसार इसका जन्म सम्बत् १६२१ (सन् १५६५) में हुआ। टॉड राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१। मुशी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्बत् १६५७ में लिखा है। बरूशी खान से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है।

२ टॉड राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग, पृष्ठ ९२।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०४, खफी खा जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।

जहाँगीर बीमार पड़ा और भाहोर के पास सन् १६२७ में उसकी मृत्यु हो गई। उस समय खुर्रम दक्षिण में था। परन्तु उसके शक्तिशाली दबसुर भासफराने खुर्रम को बाहशाह घोषित करवा दिया। खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली के मिहसुन पर बैठा। शाहजहाँ ने माघोसिंह को कोटा का स्वतन्त्र शासक होने का फरमान दे दिया। उसके साथ ही शाहजहाँ ने बून्दी के घाठ परगने जो उसने अक्षकिय के माघोसिंह को दिए। अब माघोसिंह का मुगल सम्राट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो गया।

राज रतन बुरहानपुर में बासघाट की रक्षा करते हुए सन् १६८८ (सन् १६३१) में मारा गया। उस समय उनके साथ माघोसिंह भी था। माघोसिंह ने शाहजहाँ को इसकी सूचना मजी। शाहजहाँ ने राज रतन के पादवी पौत्र शत्रुघ्न (राजकुमार गोपीनाथ का पुत्र) को बून्दी का व माघोसिंह को कोटा का राजा पृथक पृथक रूप से स्वीकार किया। पिता की मृत्यु के बाद सन् १६८८ में माघोसिंह ने महाराष्ट्राधिराज की पदवी धारण की। शाहजहाँ ने उसे सिख भय मजी तथा उसे २५ ० आस व १५ ० समार का मनसबदार बना दिया। इस प्रकार वि० स० १६८८ की पीय वदि ३ को कोटा राज्य अलग स्थापित हो गया।

राज माघोसिंह (वि० स १६८८-१७०४)

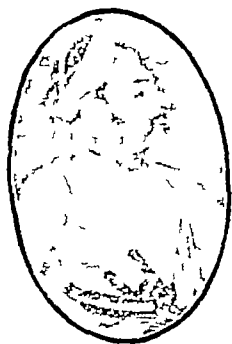
बून्दी के शासक राज रतन के तीस पुत्र के गोपीनाथ माघोसिंह व हरिसिंह।

प्रथम बटनार्थ से सिद्ध है ही। बिबाहास्य हो सचता है केवल खुर्रम का राज रतन के संरक्षण में बंध रहना और हरिसिंह व माघोसिंह के व्यवहार का हाल। सम्भव है माघोसिंह को अलग निस्तृत राज्य पुरस्कार के समय ही प्राप्त हुआ हो परन्तु शाहजहाँ ने जब यही पर बैठे ही राज रतन को धाँधे दिया कि हरिसिंह को बरबार में हाथिर किया जाने और राज रतन ने इस सबब से उसको नहीं भेजा कि बुर्जबहार का स्मरण करके ही सम्राट उसको परवा न जाने ही सम्राट ने बून्दी के ८ परगने अक्ष कर लिए। यह बात सिद्ध करती है कि हरिसिंह से सम्राट प्रथम व माघोसिंह से अक्ष प्रथम।

१ बंधनार्थक तृतीय भाग पृष्ठ २५ ६ इतिवत् व राजरतन विस्व ६ पृष्ठ ४१३। टाट लिखता है कि यह वर्तमान जहाँगीर के समय ही प्राप्त हो गया था। जहाँगीर कोटा को बून्दी से पृथक राज्य बनाना चाहता था। उसे भय था कि दोनों के मिलने पर यह शक्तिशाली शक्ति नहीं साम्राज्य के लिए खतरा न हो जाए। उसे विचार था कि पृथक रहने पर वह दोनों पर शासनी से शासन कर सकेगा। शाहजहाँ ने उस फरमान की पुनरावृत्ति की। टाट राजरतन (कक सम्पादित) विस्व ६ पृष्ठ १४८७।

२ से घाठ परगने निम्न लिखित थे—बजूरी परगणदेड़ा बँबल घाँवा अम्बास बजुरागड बीमोव व इडल।

बंधनार्थक तृतीय भाग पृष्ठ २५४१।



माधोसिंह का जन्म ज्येष्ठ सुदि ३ सम्बत् १६५६ को बून्दी नगर में हुआ था^१। प्रारम्भ से ही इसकी शिक्षा का सुप्रबन्ध किया गया था। युद्ध-विद्या, घुड़सवारी तथा शिकार के लिए यथोचित शिक्षा दी गई। विद्याभ्यास के लिए इसे सस्कृत का ज्ञान कराया गया। १४ वर्ष की अवस्था तक इसने बून्दी में ही रह कर ज्ञान प्राप्त किया था। टॉड लिखता है कि जब वह १४ वर्ष का ही था तब

उसने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे उसे राजा का खिताब प्राप्त हुआ और कोटा का राज्य मिला^२। परन्तु तत्कालीन फारसी तवारिखों से यह पाया जाता है कि माधोसिंह को कोटा व पलायता के परगने जिस समय मिले उस समय उसकी अवस्था ३२ (१६८८ सम्बत्) वर्ष की थी। टॉड के कथन में इतनी सत्यता प्रतीत हो सकती है कि १४ वर्ष की उम्र में माधोसिंह अपने पिता के साथ पहली बार युद्ध में गया होगा और वही अपनी वीरता का परिचय दिया होगा। यह युद्ध जहाँगीर के काल में सम्बत् १६७१ (१६१४ ई०) में हुआ जब कि शाहजादा खुर्रम ने अहमदनगर पर आक्रमण किया और वहाँ के प्रधान मन्त्री मलिक अम्बर को हराया^३।

प्रारम्भ से ही राव रतन माधोसिंह की योग्यता को जान चुका था। अतः जब कभी वह शाही सेना का पक्ष लेकर युद्ध में गया, उसने माधोसिंह को साथ ही रक्खा। राव रतन जब बुरहानपुर का हाकिम हुआ तब माधोसिंह उसके साथ था। खर्रम के बुरहानपुर घेरे के समय माधोसिंह और उसका छोटा भ्राता हरिसिंह उस युद्ध में बुरी तरह घायल हुए परन्तु विजय हाडों की हुई^४। भूसी के युद्ध में राव रतन का भाई हृदयनारायण भाग गया था। अतः बादशाह जहाँगीर उससे अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कोटा का राज्य उससे छीन लिया। अस्थायी रूप से राव रतन को कोटा प्राप्त हुआ। राव रतन ने कोटा अपने

१ ई० स० १५९९ ता० १८ मई, टॉड के अनुसार इसका जन्म सम्बत् १६२१ (सन् १५६५) में हुआ। टॉड राजस्थान, तृतीय भाग, पृष्ठ १५२१। मुन्शी मूलचन्द ने "चरित्र रत्नावली" के आधार पर इसका जन्म सम्बत् १६५७ में लिखा है। वक्शी खान से प्राप्त जन्मकुण्डली प्राप्त हुई उसके अनुसार उपरोक्त तिथि प्राप्त होती है।

२ टॉड राजस्थान भाग ३, पृष्ठ १५२१।

३ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास प्रथम भाग, पृष्ठ ६२।

४ वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २४८७ व २५००-०८, खफी खा जिल्द १, पृष्ठ ३४९-५०।

से इसकी नही बनती थी फिर भी जब शाहजहाँ ने शासक होते ही इसे अपना मुख्य दरबारी नियुक्त किया। परन्तु शीघ्र ही वह शाहजहाँ के विरुद्ध हो गया और विद्रोह कर बैठ। इस विद्रोह को दबाने में माधोसिंह हाडा का प्रमुख हाथ था। खाँजहाँ प्रारम्भ में धोलपुर के पास परास्त हुआ। फिर उज्जैन के पास उसने लूट मचाई, और फिर बुन्देलखण्ड में उत्पात करने लगा। कालिन्जर के युद्ध में खाँजहाँ लोदी को बुरी तरह हराया। खाँजहाँ लोदी सम्बत् १६८७ माघ सुदि २ (सन् १६३१ की २४ जनवरी) को अपने दो पुत्रों सहित इस युद्ध में काम आया^१।

शाहजहाँ ने माधोसिंह को इन सेवाओं का उपयुक्त पुरस्कार दिया। चैत्र कृष्णा ४, स १६८८ (११ मार्च १६३१) को नौरोज के उत्सव पर इसका मनसब बढ़ा कर दो हजारी जात और एक हजार सवार कर दिया और एक हजार निशान भण्डा भी दिया^२। वशभास्कर में सूर्यमल मिश्रण उल्लेख करता है कि बादशाह ने माधोसिंह को जीरापुर, खैरावाद, चैचट और खिलचीपुर के चार परगने दिए पर ठाकुर लक्ष्मणदान ने लिखा है कि इस वीरता के उपलक्ष्य में माधोसिंह को १७ परगने और मिले थे^३। माधोसिंह की मृत्यु के समय ये सब परगने कोटा के अधीन थे। इसी वर्ष की पोष वदि ३ (३० नवम्बर १६३१) को इसके पिता का देहात हो गया। दक्षिण की सूबेदारों जब खानदुर्शन को प्राप्त हुई तो उसे दौलताबाद के पास शाहजी भौसला से युद्ध करना पड़ा। माधोसिंह हाडा खानदुर्शन की सेवा में उपस्थित था। उसे बुरहानपुर की रक्षा का भार सौंपा गया जिसमें उसे सफलता प्राप्त हुई^४।

सम्बत् १६९२ (सन् १६३५) में वीरसिंह बुन्देले के पुत्र जूभारसिंह ने शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का कारण यह कहा जाता है कि जूभारसिंह ने गोडो के शासक प्रेमनारायण को मार कर उसके दुर्ग चौरगढ पर

१ बादशाहनामा भाग २, पृष्ठ ३४८-५०।

इलियट व डाउसन भाग ७, पृष्ठ २०-२२।

वशभास्कर तृतीय भाग, पृष्ठ २५९५।

शाहजहाँनामा भाग १, पृष्ठ २७।

२ शाहजहाँनामा भाग २, पृष्ठ २८, डा० शर्मा का कथन है कि वह तीन हजारी मनसबदार बना दिया गया। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृष्ठ ११२।

३ रामगढ, रहलावण, कोटडा सुल्तानपुर, बडवा, मागरोल, रानपुर, आटोण, खैरावाद, सुकेत, चैचट, मण्डाना, नीनोदा, सोरसन, पलायथा, कोयला, सोरखण्ड।

४ महासिखल्लमरा, पृष्ठ २८६।

ने इसे बुरहानपुर तथा बगधार जैसे महत्वपूर्ण दुर्गों के घरे के युद्ध में उत्तर दायित्वपूर्ण भार सौंपा। वह सदा हरावल का अधिकारी रहा और युद्ध में प्रथम पक्ष में रह कर युद्ध-कोशम प्रवर्धित करता था। माधोसिंह प्राजाकायि पुत्र, नीतिनिपुण राजा सख्ताम-वत्सल पिता तथा कल भ्यपरायण स्वामीमत्त था। मुगल शासन के प्रति इसकी मर्त्ति इसमी उष्ण थी कि वह इस दारे में बरा भी संशेष नहीं करता था कि उसके कारण राजपूताने के अन्य राजपूत शासकों को भी युद्ध करना पड़ता है। औरगजद के वह विद्यासप्रिय व्यक्तियों में से था।

इसके नेतृत्व में कोटा राजपूताने का एक छोटे राज्य से परिमित होकर एक प्रभावशाली राजपूत राज्य बन गया। इसके राज्य में कुल मिला कर ४३ परगने थे। इनमें से कुछ परगने सूवा प्रजमेर की रणयम्भोर सरकार के नीचे तथा कुछ सूवा उम्बैन की गणरीण सरकार के अन्तर्गत थे। प्रत्येक परगने के लिए बादशाह का मामलात देते थे जो प्रजमेर तथा उम्बैन के सजाने में जमा होती थी। प्रत्येक परगने में चौधरी कानूनगो और एक ठाकुर य तीन कर्मचारी होते थे। चौधरी व कानूनगो बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाते थे। इनका पद पैसुक था तथा सगान-बसूसी का कार्य करते थे तथा राजा के उस सज के समाहकार होते थे। इनको सगान (राजस्व) बसूसी करने में वेतन के साथ कमीशन भी दिया जाता था। ठाकुर राजा के अधीनस्थ होता था और सारि रक्षा के लिए जिम्मेदार होता था। इनके नीचे पटेल रियाया काक्षकार होते थे। राज्य का अधिकारा हिस्सा छोटी-छोटी जागीरों में बँटा होता था। आगोरदार राजा के साथ सजाइयों में जाते थे तथा राज्य की रक्षा करते थे।

राज्य की रक्षा के लिए एक सेना होती थी। माधोसिंह पंचहजारी मनसबदार था। प्रत वह ५० जात व २५ सवार रख सकता था। इसके अतिरिक्त जागीरदारों के पास स्वयं की एक सेना रहती थी। युद्ध-काल में सेना एकत्रित कर राजा की सहायता देने का भार जागीरदारों पर था। इसके अलावा राज्य की सेना के कई और भग थे—मेदस पीलवाना शूरवाना घावि जिनका पृथक अग्र्यक्ष होता था परन्तु यह पद सामन्तों को ही दिया जाता था।

माधोसिंह द्वारा निर्मित कोटा में कई इमारतें अब भी सुरक्षित बड़ी हैं तथा पाटनपोस शहरपनाह केसुनीपोस किला किशोरपुरा का दरवाजा धारि।

माधोसिंह के पाँच पुत्र थे—मुकम्बसिंह, मोहनसिंह, जूम्भारसिंह, कम्हीराम व किशोरसिंह। मुकम्बसिंह सबसे बड़ा पुत्र होने से माधोसिंह द्वारा उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया था। माधोसिंह के युद्ध में मग रहने के कारण वह ही राज्य

कार्य सम्हालता था। अपने पिता की अनुमति से इसने महाराजाधिराज की पदवी भी धारण करली थी। अपने पिता के स्वर्गवास के बाद यह ही गद्दी पर बैठा। मोहनसिंह व किशोरसिंह अपने पिता के साथ बराबर युद्धों में रहते थे। माघोसिंह इन पर बहुत प्रसन्न थे। अतः मोहनसिंह को ८४ गावों सहित पलायथा की जागीर, किशोरसिंह को २४ गावों सहित सागोद की जागीर, जुभारसिंह को २१ गावों सहित कोटडा की जागीर तथा कन्हीराम को २७ गाँवों सहित कोयला की जागीर दी गई थी^१।

राव मुकुन्दसिंह हाडा (वि० स० १७०७ से १७१५)



यह राव माघोसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था और सम्वत् १७०७ में अपने पिता की मृत्यु पर कोटा राज्य का स्वामी हुआ। बादशाह शाहजहाँ ने इसे कोटा का राजा स्वीकार किया और ३००० जात व २००० सवार का मनसब दिया^२। इसने अपना जीवन बादशाह शाहजहाँ की सेना में रह कर ही बिताया। जब यह राजकुमार ही था तब ही कन्धार की लड़ाइयों में इसका सहयोग शाहजहाँ पाता रहा। राव मुकुन्द कन्धार के घेरो में बड़ी वीरतापूर्वक लड़ा^३। इसने मालवा तथा दक्षिण की लड़ाइयों में भी भाग लिया। स. १७११ में यह सादुल्लाखाँ के साथ चित्तौड़गढ़ के घेरे पर नियुक्त किया गया। इसके शासनकाल में मुगल शासन का प्रसिद्ध गृह-युद्ध (उत्तराधिकार का युद्ध) हुआ। वि० स० १७१४ भाद्रपद सुदि ६ को बादशाह शाहजहाँ बीमार हो गया। उसके चार पुत्रों में (दारा, शुजा, औरंगजेब व मुराद) राजसिंहासन के लिए युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में राजपूताने के शासकों ने बादशाह शाहजहाँ का पक्ष लिया जोकि अपनी मृत्यु के बाद दाराशिकोह को गद्दी देना चाहता था। इन नरेशों में मुख्य जोधपुर के राठौड़ शासक जसवन्तसिंह और कोटा के शासक मुकुन्दसिंह हाडा थे। दक्षिण का सूबेदार औरंगजेब अपने भाई मुराद (जो कि

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२२।

२ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १४०-१४१।

३ उपरोक्त, पृ० १४१-१४२, राव मुकुन्दसिंह का कन्धार के घेरे में शाहजहाँ की सेवा में रत रहने का उल्लेख किसी भी साधनों द्वारा ज्ञात नहीं होता है। अन्वुलहमीद लाहोरी ने 'बादशाहनामा' में जहाँ और राजपूत शासकों का उल्लेख किया है, वहाँ मुकुन्दसिंह हाडा का कहीं जिक्र नहीं किया है। अतः डा० शर्मा ने यह उल्लेख किया है कि मुकुन्दसिंह ३००० मनसबदार होने के कारण अवश्य युद्ध में गया होगा।

गुजरात का सूवेदार था) से सन्धि कर उत्तर की ओर इस उद्देश्य से यहाँ कि दारा को शक्तिहीन किया जाय। धीरगजद की शक्ति को मार्ग में ही रोकने के लिए शाहजहाँ ने असबन्तसिंह राठीरु के नेतृत्व में एक सशक्त सेना भरी जिसमें मुकुन्दसिंह हाडा व इसके प्रथम चार भाई भी थे। उज्जैन के पास सिप्रा नदी के तट पर घमस के मैदान में धीरगजेब का छाही सेना के साथ युद्ध हुआ। यद्यपि राजपूत नरेश वीरतापूर्वक लड़ परन्तु छाही सेना कि विजय नहीं हो सकी। राव मुकुन्दसिंह युद्ध में मारा गया तथा उसके प्रथम तीन भाइयों को भी इसी प्रकार वीरगति प्राप्त हुई। सब से छोटा भाई किशोरसिंह युद्ध में घायम अवस्था में पाया गया जिसके भी ४ भाय लगे थे। किशोरसिंह को इसके साथी राजपूत रणक्षेत्र से उठा लाये जो राह में बड़ उपचार से चम्का हो गया। मुकुन्दसिंह ने अपने राज्य को दक्षिणी सीमा के पहाड़ यानी हाड़ीतो धीर भासवा की सरहद के बीच के घाट पर एक किला तथा अपनी उपपत्नी (सवाम) प्रबला मीसी के लिए महल बनवाया धीर जहाँ घाटा धुरु होता है वही वि० सं० १७०८ में एक बहुत बड़ा दरवाजा बनवाया। यह किला व घाटा सैनिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था क्योंकि यह हाड़ीती व भासवा की सीमा का केन्द्र था। मार्शाबन्दी के लिए यह एक अच्छी जगह थी। यह घाटा मुकुन्दसिंह के नाम पर मुकुन्दड़ा कहलाता है। इसने धीर भी कई मजबूत भवन निर्मित किए। अन्ता का महल धीर कोटा व किसे की दोबारें इसकी ही बनवाई हुई हैं।

१ विजय के बाद धीरगजेब ने इसका नाम बदल कर फतेहाबाद रक्खा। यह उज्जैन से १४ मील दक्षिण पश्चिम में है।

२ डॉ० धरमदास विस्व ३ पृष्ठ १३२२-२३।

मरकार धीरगजेब का इतिहास विस्व २ पृष्ठ १३-१७।

भालमवीरनामा पृष्ठ १७-७।

बघामास्कर पृथीय भाग पृष्ठ २६६७।

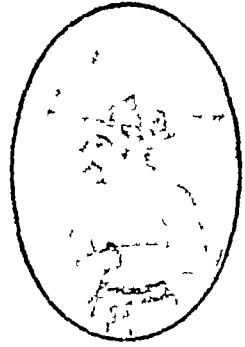
३ जनरल सर कनिंघम ने लिखा है कि 'प्रबला मीसी ने मुकुन्दसिंह के पास रहना स्वीकार करते हुए यह शर्त की थी कि बर्रे के पहाड़ पर उसके लिए महल बनवाया जाये धीर उस पर प्रति रात्रि ऐसा चिराग जलाया जाये जो प्रबला के बीच चारों को दिखाई दे सके। अब से अब तक यह बीजक जलाया जाता है। रिपोर्टें प्रांति इण्डियन आर्मीलोकीकल सर्वे विस्व २२ पृष्ठ १३३।

४ मुकुन्दरा की प्रसिद्धि का एक कारण यह भी बताया जाता है कि होल्कर ने १८४६ में त्रिपेठियार गानधन की भरोसी सेना को इसी स्थान पर हराया था।

डॉ० धरमदास विस्व ३ पृष्ठ १४७०।

राव जगतसिंह (विक्रम सम्वत् १७१५ से १७४०)

यह राव मुकुन्दसिंह हाडा का इकलीता पुत्र था। इसका जन्म वि० स० १७०१ (सन् १६४४ ई०) में हुआ। जब धर्मत के युद्ध में राव मुकुन्दसिंह रणखेत रहा तब उसकी मृत्यु के बाद वि० स० १७१४ (सन् १६५८ ई०) में कोटा की राजगद्दी पर आसीन हुआ। औरगजेव जब सामूगढ के युद्ध में विजयी होकर आगरा में अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया।



उसने राव जगतसिंह को शाही दरवार में उपस्थित होने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचने पर राव जगतसिंह को २००० का मनमव तथा खिलअत प्राप्त हुई। बादशाह का सम्मानित करने का मुख्य तात्पर्य उमको अपने पक्ष में करना था क्योंकि वह जानता था कि बिना राजपूतो की महायता के वह अपनी प्रारम्भिक कठिनाइयो का सामना नहीं कर सकेगा और राज्य का सही ढंग में प्रबन्ध नहीं कर सकेगा। तब से जगतसिंह औरगजेव की सेना में बना रहा। जनवरी १६५६ ई० में औरगजेव को शाहजादा शुजा का सामना करना पडा तब राव जगतसिंह उसका मामना करने को भेजा गया^२। खजूह के मैदान में शुजा से सामना हुआ जिसमें विजय शाही सेना की हुई। इस प्रकार राव जगतसिंह के सहयोग का लाभ औरगजेव को शीघ्र ही प्राप्त हो गया^३। औरगजेव ने शिवाजी के विरुद्ध जब कडी कार्यवाही प्रारंभ की तब मरहठो के विरुद्ध राव जगतसिंह को ही भेजा^४। दक्षिण में ही इसकी मृत्यु स० १७४० की कार्तिक शुक्ला पचमी को हुई। इसके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए इसके बाद राव माधोसिंह के चौथे पुत्र कन्होराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोटा के सामन्तो ने शासन का भार सौंप दिया।

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५२३, वशभास्कर, तृतीय भाग, पृष्ठ २७३८, आलमगीरनामा पृ० १६३-६४।

२ आलमगीरनामा, पृ० २४५-५०।

३ वशभास्कर, तृतीय भाग, पृ० २७७०।

४ सम्वत् १७३७ और १७४० (ई० सन् १६८० और १६८३ के बीच) जगतसिंह प्रायः दक्षिण में रहा, कभी औरगवाब, कभी बुरहानपुर में और कभी जहानाबाद में। दक्षिण में इसने कई ब्राह्मणों को दान-दक्षिणाएँ दीं। विशेष कर गजगणेश हाथी दान दिया गया। जगतसिंह औरगवाब और बुरहानपुर के आसपास किसी लड़ाई में सम्भव है कि हैदराबाद के युद्ध में शेख मिन्हाज से लड़ते हुए मारा गया।

डा० म ला शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १८६।

राव प्रेमसिंह (वि स १७४० से १७४१)

राव माधोसिंह के पाँच पुत्र थे। चौथे पुत्र कन्होराम को कोयला की ज़मीन प्राप्त हुई थी। बगलसिंह की मृत्यु के बाद उसके कोई पुत्र न होने के कारण कोटा के सरदारों ने वि स १७४ (ई सन् १६८३) में कन्होराम के पुत्र प्रेमसिंह को कोयला से भुला कर कोटा का शासक नियुक्त किया। परन्तु यह महा मूर्ख और अयोग्य सिद्ध हुआ। इसकी कुछ सरदारों की कूटचाल से राज्य मिठा या जिनका उद्देश्य एक कमजोर शासक को अव्यक्त मान कर अपनी शक्ति को सुरक्षित करना था। वास्तविक उत्तराधिकारी पत्तायथा वाले थे। प्रेमसिंह को इस प्रकार राजगद्दा मिलने के कारण उन सरदारों के बहूमे में रहना पड़ता था। इससे राज्य-शासन में गड़बड़ी होने लगी। परगनों में सूटमार होने लगी। खजाना खाली होने लगा क्योंकि लोगों ने मालगुजारी भावि बना बन्द कर दिया और परगन पर लोगों ने अधिकार कर लिया। अतः इसके विरुद्ध जन विरोधी भ्रान्दीजन उठा और विरोधी सरदारों ने उसे गद्दा से उतार कर इसे कोयला वापस भज दिया। और उसके स्थान पर राव माधोसिंह के सबसे छोटे पुत्र किशोरसिंह को ठिकाना साँगोद से भुला कर कोटा की राजगद्दी पर काविक शुक्ला द्वितीया वि स १७४१ को बैठाया।

राव किशोरसिंह (वि स १७४१-१७५२)

प्रेमसिंह को गद्दी से हटा कर जब सामन्तों ने किशोरसिंह को कोटा राज्य छोड़ा उस समय यह शासन करने के लिए काफी बूढ़ था परन्तु कोटा की विविध राजनीतिक व्यवस्था को सही नेतृत्व इसी के द्वारा प्राप्त हो सकता था। परन्तु इसने वि स १७४१ में कोटा का शासक होना स्वीकार किया। औरंगजेब ने इसे ३०० की मनसब और सिसभत देकर इसे कोटा का राजा स्वीकार कर लिया। इसकी बहादुरी व पराक्रम तथा योग्यता से वह अत्यंत प्रभावित था। ग्राह जहाँ के काल में जब शास्त्र और बहकशा विजय के लिए औरंगजेब को भेजा उस समय औरंगजेब ने माधोसिंह हाबा तथा उसके पुत्रों का यत्न करके देखा था। धर्म के स्थान पर औरंगजेब के विरोधी राजपूतों में हाहालों ने जिस विरोध

१ टाड राजस्थान विश्व ३ पृ ३ १५२। छद्मर नरनरननन : दाही सनन प्रेमसिंह को प्राप्त नहीं हुई थी इसलिए जमराओं ने प्रेमसिंह को नहीं से उतार दिया।

बहमास्कर : तृतीय भाग पृ ३ २५५ ।

२ बगलसिंह की मृत्यु के समय किशोरसिंह बीजापुर की मज़ाहमों में ब्यस्त था। उस समय उन १ का मनननन मिल चुका था। कोटा राज्य का इतिहास भाग १

का प्रदर्शन करते हुए वीरगति को प्राप्त किया। उससे औरगजेव पर अधिक प्रभाव पडा। धर्मत के युद्ध मे १५ अप्रैल १६५८ ई. को किशोरसिंह के ४० घाव लगे थे। उमको भली प्रकार सेवा की गई। अत वह बच गया। अभी उसके घाव भरने भी न पाए थे कि औरगजेव ने गुजा के विरुद्ध राव जगतसिंह और किशोरसिंह को भेजा। खजुहा के युद्ध मे ३ जनवरी १६५६ को उसे शानदार सफलता प्राप्त हुई। औरगजेव हाडा राजपूतो की शक्ति को पहचानता था। इसलिए वह उमे अपनी ओर ही रखने की नीति अपनाता रहा। वह जोधपुर नरेश जमवन्तसिंह से शक्ति रहता था। अत कही राजपूत वर्ग उसके विरुद्ध एक न हो जाय, इसलिए इम दृष्टि को सामने रखते हुए कि फूट डाल कर ही (भेद नीति) शासन किया जाता है, उसने हाडा शासको को अपनी ओर मिलाए रक्खा।

राजगद्दी पर बैठने के कुछ ही समय बाद औरगजेव के आदेशानुसार उसे दक्षिण में जाना पडा। अपने चारो पुत्र—विशानसिंह, रामसिंह, अर्जुनसिंह और हरनाथसिंह सहित वह दक्षिण की ओर जाना चाहता था। परन्तु उसके बडे लडके विशानसिंह ने दक्षिण मे मुगलो के नीचे युद्ध करने मे अपना अपमान समझा। उसने मना कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राजगद्दी के अधिकार से वंचित कर दिया और अन्ता की जागीर दी^१। रामसिंह, जो दक्षिण मे उसके साथ लडाई मे गया था, उसको उत्तराधिकारी बनाया। युद्ध मे वीरता प्रदर्शित करने पर रामसिंह को १००० का मनसब भी मिला था। किशोरसिंह १६८५ ई० मे बीजापुर विजय करने के लिए औरगजेव के साथ गया। औरगजेव ने जब बीजापुर पर अधिकार कर लिया तब उसने किशोरसिंह को खिलअत, हाथी, घोडे, और जवाहरात पुरस्कार स्वरूप दिए तथा कुलाई का परगना भी उसको दिया गया।

औरगजेव के साथ दक्षिण मे यह अपने अन्तिम समय तक रहा। गोलकुण्डा-विजय के समय (ई सन् १६८४-८५), हैदराबाद का घेरा (ई सन् १६८६) उसके बाद मरहूठा राजा शभाजी व राजाराम के विरुद्ध शाही युद्ध मे (१६८८ १६९५ ई) वरावर औरगजेव का साथ देता रहा^२। औरगजेव की क्षीण शक्ति को

१ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० स० १५२३।

२ किशोरसिंह ने १२ वर्ष तक राज्य किया। वह केवल दो चार बार कुछ महिनों के लिए कोटा आया। शेष समय दक्षिण में ही बीता। मेवाड के राणा और शाहजादा आजम के बीच सुलह कराने मे किशोरसिंह का मुख्य हाथ था। यह सुलह की बातचीत सम्बत् १७३७ के चैत्र मास मे प्रारम्भ हुई। आजम से मिलने श्रावण कृष्णा ३ सम्बत् १७३७ को राणा जगतसिंह आया। किशोरसिंह हाडा वहाँ उसके स्वागत के लिए उपस्थित था।

ओका राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ८६७।

राव रामसिंह (वि स १७५२-१७६४)



किशोरसिंह अधिकतर युद्ध क्षेत्र में रहता था। अतः कोटा के शासन की देखरेख का पूर्ण भार अपने पुत्र रामसिंह को सौंप कर जाया करता था परन्तु किशोरसिंह की अंतिम दक्षिण यात्रा के समय रामसिंह अपने पिता के साथ था। अर्काट के युद्ध में राव किशोरसिंह की सम्बत् १७५२ (अप्रैल सन् १६९६) में मृत्यु हो गई^१। अतः जब यह सूचना कोटा पहुँची तो रामसिंह की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर उसके बड़े भाई विष्णुसिंह ने कोटा पर अधिकार कर लिया व स्वयं शासक बन बैठा। औरंगजेब ने उसको मान्यता नहीं दी, बल्कि रामसिंह को तीन हजार मनसब तथा तीन हजारी सवारों का अधिकारी बना कर शाही सेना के साथ कोटा पर अधिकार करने भेजा^२। विष्णुसिंह और रामसिंह दोनों भाइयों में आँवा गाँव में युद्ध हुआ। इस लड़ाई में इसके एक भाई हरनाथसिंह की मृत्यु हो गई और विष्णुसिंह घायल होकर अपनी ससुराल मेंवाड राज्य के पाँडेरे स्थान में चला गया जहाँ वह तीन वर्ष के बाद मर गया। इस प्रकार रामसिंह कोटा राज्य का स्वामी हुआ। कोटा राज्य पर सुरक्षित आमीन होने के बाद यह दक्षिण में शाही सेना में जा उपस्थित हुआ। दक्षिण कर्नाटक तथा मरहठों से जिज्जी प्राप्त करने का भार जुलफिकारखाँ को दिया गया था। राव रामसिंह जुलफिकारखाँ के नेतृत्व में मरहठों के सरदार सन्ताजी घोरपडे के पुत्र राणु से जा भिडे। विजय इसकी रही जिसके सम्मान में सम्बत् १७५७ (ई० सन् १७००) में बादशाह से इसे नक्कारा प्राप्त हुआ^३। दक्षिणियों से दूसरा

१ डा० मथुरालाल शर्मा का ऐसा मत है कि जुलफिकारखाँ ने अरनी का किला विजय कर रामसिंह के संपुर्ण कर दिया था। वहीं पर लडते हुए किशोरसिंह का देहान्त हुआ था। दक्षिण के युद्धों में रामसिंह ने आदोमी विजय (१६८७), पन्हाला विजय (१६८९) में भाग लिया। रामसिंह उस समय युवराज पद पर था। अतः कोटा नरेश की हैसियत से वहाँ पर उसने कई पट्टे परवाने और ताम्रपात्र जागी किए थे। बीजापुर विजय के बाद रामसिंह को १००० की मनसब प्राप्त हुई। कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २२१-२२२।

२ उपरोक्त, पृ० २२३।

३ महामिर्लजमरा, पृ० ३४९। जुलफिकारखाँ के नेतृत्व में जिज्जी के प्रमिद्ध घेरे में (१६९७) रामसिंह को 'शैतानदरी' हरावल पर भेजा गया। विजय रामसिंह की रही। राजाराम (शिवाजी का दूसरा पुत्र) जिज्जी से भागने के समय अपना परिवार जिज्जी में ही छोड़ गया। रामसिंह ने राजाराम के बुट्टुम्ब की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया और पानकियों में उन्हें बिठा कर जिज्जी से ग्वाना किया।

युद्ध धरनखेड़े के पास सम १७ ४ में हुआ जहाँ हाड़ा रामपूतों के भाग दक्षिणी टिक न सके। शाहजादा आजम अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपने पिता से सिफारिश की कि इसका मनसब बड़ा दिया जाय। इसके मनसब में वृद्धि की गई और बुन्दी के मऊ मैदान का परगना सरवल छीपावढोद व रतनपुर जागीर रूप में इनाम्यत हुए^१।

औरंगजेब की मृत्यु ३ मार्च १७०७ में अहमदनगर में होती थी उसके पुत्रों में दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने व लिए युद्ध हुआ। रामसिंह ने उस समय शाहजादा आजम का पक्ष लिया। आजम ने इसका मनसब चार हजारों का कर दिया। शाहजादा मुमज्जम जो कि औरंगजेब की मृत्यु के समय उत्तर पश्चिम सूबे में या दिल्ली प्राप्त करने के लिए लड़कर सहित चला। दानों भाइयों के बीच धौलपुर व भागरा के बीच आजम के स्वाम पर १८ जून १७ ७ को युद्ध हुआ। इस युद्ध में बुन्दी के हाड़ा शाहजादा मुमज्जम के पक्ष में लड़े और कोटा वाले शाहजादा आजम की ओर से लड़े^२। प्रथम बार हाड़ों की दोनों शाखाओं में विरोधी बलों में सम्मिश्रित होकर आपस में युद्ध हुआ। इस युद्ध में शाहजादा मुमज्जम मारा गया। आजम बिजयी होकर दिल्ली के सिंहासन पर महानुर शाह के नाम से बैठा। राम रामसिंह आजम के इस युद्ध में सम १७ ७ की २ जून (भासाठ वदि ४ अम्बत् १७६४) को मारा गया^३।

इसी समय से बुन्दी व कोटा के बीच युद्धों का श्रोगणोद्य हुआ। इसका शासन शांतिकाल के लिए प्रसिद्ध है। केवल एक बार मऊ में उपद्रव हुआ वह भी दबा दिया गया। मवाड़ के राणा व आमेर के राजा इसका सम्मान करते व।

१ महासिक्खतमरा पृ १४६।

२ शाहजादा आजम १४ मार्च १७ ७ को जहाँ लफ्त पर अहमदनगर में बैठा और शाहजादा मुमज्जम ने १२ जून १७ ७ को भागरा पहुँच कर जहाँ कोप पर अधिकार कर लिया। रामसिंह आजम से २ अप्रैल १७ ७ को औरंगजाद से मिला और आजम का साथ देने का निश्चय किया।

३ बंदासकर, चतुर्थ भाग पृ २६६७।

हरमिन जेटर मुफ्तस बिल्व १ पृ २४११।

हाड राजस्वान जिल्व ३ प १३२४।

महाराव भीमसिंह (वि० स० १७६४ से १७७७)



राव रामसिंह के जाजव के रणक्षेत्र में वि० स० १७६४ (ई० मन् १७०७) को वीरगति प्राप्त होने पर उसका पुत्र भीमसिंह कोटा की राजगद्दी पर बैठा। इमने भील और खीची राजपूतों के बहुत से इलाकों को दबा कर अपना राज्य बढ़ाया। खीचियों से गागरोन का किला लिया। वाराँ, माँगरोल, मनोहरथाना, और शेरगढ के परगनों पर भी अधिकार जमाया। भीलों के राजा चन्द्रसेन को, जिसके पास ५०० घुडमवार और ८०० तीरन्दाज रहते थे, निर्दयता से मार करके उसका राज्य इसने कोटा राज्य में मिलाया। इसके सिवाय श्रीनारसी, पीडावा, डीग और चन्द्रावलो की भूमि पर भी इसने अधिकार किया^१। परन्तु इमकी मृत्यु के बाद ही यह प्रदेश फिर से निकल गए।

जाजव की लड़ाई से कोटा व वून्दी में पारस्परिक शत्रुता हो गई। जाजव के युद्ध में शाहजादा मुअज्जम (वहादुरशाह) का विरोध रामसिंह ने किया और वून्दी के बुद्धसिंह ने पक्ष लिया। वहादुरशाह कोटा के हाडाओ को गका की दृष्टि से देखने लगा। वून्दी नरेश ने इस नई राजनैतिक व्यवस्था का पूरा लाभ उठाया। वहादुरशाह ने बुद्धसिंह को कोटा वून्दी में मिलाने की आज्ञा देदी^२। बुद्धसिंह ने अनुमति पाकर अपने मंत्रियों को कोटा राज्य पर अधिकार करने के लिए लिख दिया और स्वयं ने आमेर (जयपुर) जाकर वहा जयसिंह महाराज की वहिन से विवाह कर लिया। इसके बाद वह वेगू (मेवाड) की ओर होता हुआ वहादुरशाह के साथ दक्षिण की ओर चला गया^३। इधर वून्दी के मंत्रियों ने कोटा पर आक्रमण कर दिया^४। इस सेना को भीमसिंह ने बुरी तरह से हराया। वून्दी की सेना भाग खड़ी हुई^५। एक वार भीमसिंह ने बड़ी चतुराई

१ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५२४-१५२५।

२ वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २६६८-६६ वहादुरशाह को महाराजा राव की पदवी दी तथा कोटा के ५४ परगने मिलाने का फरमान दिया था।

३ उपरोक्त, पृ० ३०००-१० वेंगू के राव की लडकी से भी बुद्धसिंह ने विवाह किया और कहाँ से अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि कोटा पर आक्रमण किया जाय।

४ यह कार्य जोधराज वैश्य, गगाराम का भाई और कनकसिंह के पुत्र जोगीराम के नेतृत्व में हुआ था। वशभास्कर पृ० ३००८।

५ डा० शर्मा का मत है कि युद्ध के पहले भीमसिंह ने बालकृष्ण व्यास और फतेहचन्द कायस्थ को भेज कर शान्ति रखने का प्रयास किया था पर असफल रहा। कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० २५६।

(१७१६ ई०) में वाराँ और मउ के परगने भी बादशाह के आदेश से बुद्धसिंह को लौटा दिये गये^१ । इस पर भीमसिंह व फरखसियार का विरोध हो गया ।

फरखसियार की सैयद बन्धुओं से नहीं बनी । अतः २८ फरवरी सन् १७१६ में सैयदों ने फरखसियार को कैद कर मार डाला । बादशाह को कैद करने के समय सैयद भाइयों को डर था कि बुद्धसिंह और जयसिंह बादशाह के मित्र होने के नाते उसे पुनः तख्त पर बैठाने का प्रयत्न न करें । अतः उन्होंने बुद्धसिंह को, जो उस समय दिल्ली ही था, मार डालने की योजना बनाई । सैयद हुसेनअली के साथ जोधपुर के अजीतसिंह, किशनगढ़ के राजसिंह तथा कोटा के भीमसिंह ने बुद्धसिंह के डेरे पर हमला किया । बुद्धसिंह के कई वीर मारे गए । बुद्धसिंह लाहौरी दरवाजे होता हुआ भाग निकला^२ । इसके बाद फरखसियार को मार डाला गया । वेदारखस के पुत्र वेदारदिल को रफीउद्दरजात के नाम से राजगढ़ी पर बैठाया गया । रफीउद्दरजात ने भी ४ जून सन् १७१८ को राजगढ़ी छोड़ दी और उसके बाद वहादुरशाह का पोता रफीउद्दोला गढ़ी पर बैठाया गया । वह १८ सितम्बर १७१६ में मर गया । इसके बाद उसका भाई मुहम्मदशाह तख्त पर बैठाया गया । इस प्रकार सैयद बन्धु दिल्ली की राजनीति के सर्वोत्कर्ष थे । राजनैतिक उथल-पुथल से शासन में ढिलाई आने लगी । शाही फरमानों की अवहेलना की जाने लगी^३ । ऐसे समय में साम्राज्य में विद्रोह होने लगा । बादशाह के आदेशों की कोई परवाह नहीं की जाने लगी । इलाहवाद के सूबेदार छवेलाराम ने सैयदों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । बून्दी का बुद्धसिंह हाडा उमसे जा मिला^४ । इस पर सैयदों ने १७ नवम्बर १७१६ को दिलावरखाँ के

१ फरखसियार के काल में राजधानी में ३ दल थे—मुगल, तुरानी व इरानी । फरखसियार सैयद भाइयों से मुक्त होना चाहता था । उसने दक्षिण के सूबेदार निजाममुल्क से सौँठ-गाँठ की । सैयद भाइयों में बड़ा भाई अन्दुला खाँ वजीर था और छोटा भाई हुसेनअली सेनापति । हुसेन अधिक चालाक था । जयसिंह व बुद्धसिंह उसके विरोधी थे । अतः फरखसियार ने हुसेनअली को दक्षिण का सूबेदार बना कर मराठों के विरुद्ध भेज दिया । इसी प्रकार लाभ उठा कर जयसिंह ने बुद्धसिंह की फरखसियार से पुनः बून्दी दिला दी ।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२५ ।

वशभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०६५-६७ ।

३ इरविन लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ८८६ ।

४ इरविन लेटर मुगल्स, ।

नरवरी भी इस समय काम आया। दिलावरखा भी एक गोले की चोट से मारा गया। शाही सेना तितर-वितर हो गई। विजयनिजाम की रही।

भीमसिंह बड़ा वीर और धैर्यवान् नरेश था। इसके शरीर पर कई युद्धों में भाग लेने के कारण, कई घाव थे। अन्तिम समय में कुरवाई के रण-क्षेत्र में इन घावों को देख कर लोगो ने आश्चर्य किया। परन्तु मरते समय भी भीमसिंह ने यही कहा कि हाडा के राज्य व देश की रक्षा करने वालों के ऐसे निशान मिलते ही हैं तथा राजपूत सन्तान का धर्म है कि वह युद्ध में सदा आगे रहे। कोटा के नरेशों में भीमसिंह ही पहला नरेश था जिसने महाराज की पदवी धारण की। इसके पहले ये 'राज' कहलाते थे। इसका अधिकांश समय युद्धों में ही बीता। अतः अपने राज्य का आन्तरिक प्रबन्ध ठोक नहीं कर सका। ज्यादातर राज्य जागीरदारों में बाँटा था। अतः कोटा का शासक एक प्रकार से जागीरदारों के ही हाथ में था। जो अत्याचारी जागीरदारों की जागीरें जप्त कर ली जाती थी। इसने साँवलजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था। यह बल्लभ सम्प्रदायवादी था^१। भीमसिंह ने जजिया कर भी माफ करवाया था।

महाराज भीमसिंह के समय हलवर (घागघडा राज्य) का भाला भार्गसिंह अपने पुत्र माधोसिंह सहित दिल्ली जाता हुआ कोटा आया। वह अपने पुत्र माधोसिंह को कोटा नरेश की सेवा में छोड़ कर आप आगे दिल्ली चला गया। उसके साथ २५ घुड़मवार भी थे। यह माधोसिंह भाला अपने ननिहाल ठिकाना सावर (अजमेर) में ही छोटे से बड़ा हुआ था। माधोसिंह बहुत ही साहसी, पराक्रमी और चतुर था। भीमसिंह इस समय गोगय राजपूतों को इकट्ठा कर रहा था क्योंकि उसे सैय्यद-बन्धुओं की सहायता में निजामुल्मुल्क पर चढ़ाई करनी थी। माधोसिंह भाला को अपनी सेना में नौकर रख लिया। थोड़े ही समय में अपनी चतुराई व वीरता से महाराज को प्रसन्न कर लिया। अतः उसकी बहिन का विवाह महाराज ने अपने युवराज अर्जुन से करा दिया^२। इससे

१ वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३०७८-७९।

इरविन लेंटर मुगल्स, जिल्द २, पृ० २८-३१।

टाड राजस्थान, तृतीय भाग, १५२६।

२ डा० मथुरालाल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३०८। वीर विनोद भाग ३, पृ० १४७२।

३ वीरविनोद में यह उल्लेख है कि महाराज अर्जुनसिंह की शादी माधोसिंह भाला की बेटी से हुई थी।

टाड के कथनानुसार बहन लिखा है। टाड जिल्द २, पृ० ५६५-६६।

भालावाड गजेटीयर, पृ० १६१ के अनुसार 'भाला माधोसिंह की बहन युवराज अर्जुनसिंह की धात्री' लिखा मिलता है।

सं १७८५ (ई०स० १७२८) में युद्ध हुआ जिसमें श्यामसिंह मारा गया^१। श्यामसिंह की मृत्यु पर महाराव दुर्जनसाल को बहुत दुःख हुआ और कहा कि यदि मुझे ऐसा मालूम होता तो मैं अपना राज्य छोड़ देता। बाद में इमने वि० सं १७९७ में श्यामसिंह की मृत्यु के स्थान पर एक छत्री भी बनवाई^२। इस गृह-कलह का एक स्वाभाविक परिणाम यह हुआ था कि कोटा राज्य की शक्ति कमजोर हो गई। इस विजय के पहले ही मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने हाथी, खिलअत और मसनदन शीनी भेज कर राव दुर्जनसाल को कोटा का शासक स्वीकार कर लिया था^३।

महाराव दुर्जनसाल का मुगल दरवार में काफी प्रभाव था। शाह मुहम्मद शाह में वह व्यक्तित्व व शक्ति नहीं थी जिससे मुगलों की परम्परा की शक्ति निभा सके^४। दरवार में उसको कोई परवाह नहीं करता था। गद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद जब दुर्जनसाल से मिलने के लिये दिल्ली गया^५ तब गायो की रक्षा के हेतु वहाँ के कुछ कसाइयों और नगर कोतवाल को मार डाला था। ये गायें शाही रसोईघर के लिये कटने वाली थीं। लेकिन इमने बादशाह की कोई परवाह न कर गायो को कोटा भेज दिया। इसके अलावा गायो का जो कमाई-खाना यमुना नदी के किनारे था उसे वहाँ से हटवा दिया क्योंकि यमुना नदी के किनारे होने से गायो का रक्त यमुना में जा मिला था^६।

मराठों के पेशवा बाजीराव प्रथम की प्रधानता में मराठों ने पहले-पहल कोटा पर, वि० सं १७९५ में, धावा किया। उस समय दुर्जनसाल ने मराठों को

१ वशाभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ३०९४।

दयामर दुर्जनसालके, भी भूहित घमसान।

अग्रज श्यामसिंह मारिके, भी नृप दुर्जनसाल ॥

२ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ३३६।

३ टाड राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२६।

४ खफीखाँ मुहम्मद शाह की पतित स्थिति का वर्णन करते लिखता है कि वह (बादशाह) नपुसकी की सगति में अधिक रहता था, और उन्हीं लोगों को राज्य के ऊँचे पद दिये जाते थे। (पृ० ६४०)

५ मुहम्मदशाह के विरोधियों में मारवाड़ के शासक अजीतसिंह व मेवाड़ के महाराजा थे। जयसिंह, जयपुर नरेश ने प्रत्यक्ष रूप में बादशाह का विरोध नहीं किया था परन्तु धीरे-२ वह अपनी स्वतंत्र नीति अपनाते लगा, मराठों से मित्रता करली और हिन्दूपद बादशाही का स्वप्न देखने लगा। सिर्फ कोटा का शासक दुर्जनसाल ही उसका मित्र रह गया था।

६ टाड राजस्थान, तृतीय जिल्द, पृ० १५२६।

माधोसिंह की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। कुछ दिनों महाराज ने उसे फौजदार क पद पर नियुक्त किया और उसकी कोटा के पास नामता की जागीर देदी। इस जागीर की आय १२०) रु. थी। आय खस कर माधोसिंह अपना क परिवार ने कोटा की राजसीति में प्रमुख भाग लिया और भ्राजावाड़ की रियासत खसग से स्थापित की।

महाराज भीमसिंह के भ्राजु नसिंह श्यामसिंह और दुर्जन शास नामक तीन पुत्र थे। भीमसिंह की मृत्यु के बाद भ्राजु नसिंह वि० स १७७७ में गद्दी पर बठा। यह केवल ३ वर्ष तक ही राज्य कर सम्वत् १७८ (सन् १७२३ ई० में स्वग सिधारा। इसके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण इसने अपने छोटे भाई दुर्जनशास को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा राज्य के प्रमुख सरदारों के समक्ष प्रकट की। इसमें समय बून्दी राज्य पुन बुद्धिसिंह की प्राप्त हो गया तथा बून्दी के सब परगनों से कोटा के पाने उठवा दिय गय।



महाराज दुर्जनशास (वि स १७८०-१८१३)



भ्राजु नसिंह की अन्तिम इच्छानुसार राज दुर्जनशास कोटा की राजगद्दी पर बठा। उसका राज्याभिषेक वि स १७८० (ई स १७२३) माघशुक्ल वदि ५ में हुआ। गद्दी पर बैठते ही इस एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। महाराज दुर्जनशास का बड़ा भाई श्यामसिंह इस समय यह बिचार कर रखा था कि भ्राजु नसिंह क बाद कोटा की राजगद्दी पर उसका अधिकार है अर्थात् अपने भाई दुर्जनशास क विरुद्ध विद्रोह कर बैठा। राजगद्दी के लिये इस युद्ध को प्रोत्साहन देस का कार्य अजपुर के शासक सवाई अयसिंह ने किया था। अर्से क यह इस ताक में था कि बून्दी क कोटा के राज्य उसके प्रभाव में रहें। अतः उसकी राजनैतिक सफलता इस बात में थी कि कोटे का राजा ऐसा व्यक्ति बने जो उसके इशारों पर अज्ञता रहे। गृह-युद्ध के इस अवसर पर सवाई अयसिंह ने श्यामसिंह का साथ दिया। अजपुर की सेना की सहायता पाकर श्यामसिंह ने कोटा पर आक्रमण कर दिया। दोनों भाइयों ने 'अभक्तिया' गाँव के पास

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड़ गया। अन्त में किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाडो की वीरता से आपस में सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहठो से पीछा छुड़वाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहात पर कोटा से अलग हो गया अतः स० १८१० (ई० स० १७५३) में महाराव ने गढ़ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमें सफल नहीं हुआ। खीचियों के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारों ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियों के हाथ में जाने से बच गया^१।

स० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होंने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह स० १७९१ आषाढ कृष्णा ९ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुँवरबाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर बाई तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशों की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा^२।

इसके कोई पुत्र नहीं था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागोरदार अजीतसिंह गोद आकर राजगद्दी पर बैठे^३। दुर्जनसाल बड़ा ईश्वर-भक्त था। वि० स १७९८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे में एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपों—विट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मयूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैसरोड के

१ टॉड राजस्थान, पृ० १५३०।

२ श्रीमता राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ९३३। यह रानी महाराणा सग्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। सग्रामसिंह का देहान्त माघ सम्बत १७९० में ही हो चुका था, अतः ब्रजकुँवरबाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह भाला (जो कि उस समय सेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होते हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अतः अजीतसिंह वृद्धावस्था में गोद आया।

का एक हाथ तोप के गोले से पोष शुक्ला १५ को उड़ गया। अन्त में किलेदार हिम्मतसिंह की चतुराई और हाडों की वीरता से आपस में सुलह हो गई। महाराव ने बून्दी के पाटया और काचरण परगने तथा ४ लाख रुपये फोज-खर्च देकर मरहटो से पीछा छुड़वाया।

गुगोर का ठाकुर भीमसिंह के देहात पर कोटा से अलग हो गया अतः स० १८१० (ई० स० १७५३) में महाराव ने गढ़ गुगोर को वापस लेना चाहा पर इसमें सफल नहीं हुआ। खीचियों के राजा बलभद्र ने सामना किया। यहाँ तक कि रामपुरा, शिवपुर व बून्दी के सरदारों ने दुर्जनसाल का सामना करना चाहा परन्तु इसी समय बून्दी के रावराजा उम्मेदसिंह ने कोटा की सहायता की, जिससे कोटा राज्य खीचियों के हाथ में जाने से बच गया^१।

स० १८१३ के श्रावण शुक्ला ५ (ई० स० १७५६) को महाराजा दुर्जनसाल का स्वर्गवास हुआ। इन्होंने ३२ वर्ष तक राज्य किया। इनका विवाह स० १७६१ आषाढ कृष्ण ६ (सन् १७३४ जून) को उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दूसरे की बहिन राजकुमारी ब्रजकुंवरवाई के साथ हुआ था इसलिये महाराणा ने गद्दी पर वहाँ तरफ बैठने की इज्जत महाराव को दी और दूसरे नरेशों की भाँति उदयपुर से महाराव के नाम पर भी लिखा जाने लगा^२।

इसके कोई पुत्र नहीं था। इससे निराश होकर ये कभी-कभी कह बैठते थे कि दूसरे का हक छीनने वाले के उत्तराधिकारी कहाँ से आवें? इसलिये महाराव के पीछे अन्ता ठिकाने का जागोरदार अजीतसिंह गोद आकर राजगद्दी पर बैठा^३। दुर्जनसाल बड़ा ईश्वर-भक्त था। वि० स १७६८ की कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को उसने नाथद्वारे में एक धार्मिक उत्सव का आयोजन किया तथा वहाँ शुद्धद्वैत सम्प्रदाय के ७ स्वरूपों—बिट्ठलनाथजी, नवनीतप्रियाजी, द्वारिकारूपजी, गोकुलचन्दजी, मयूरनाथजी, गोकुलनाथ, मदनमोहनजी, को एकत्र करवाया। इस अवसर पर जयपुर के सवाई जयसिंह, करोली के राजा गोपालसिंह, उदयपुर के महाराणा जगतसिंह, द्वितीय, भरतपुर के जाट जवाहरमल, भैरसोड के

१ टॉड राजस्थान, पृ० १५३०।

२ श्रीमान् राजपूताने का इतिहास, तृतीय भाग, पृ० ६३३। यह रानी महाराणा मप्रामसिंह द्वितीय की पुत्री थी। सप्रामसिंह का देहान्त माघ सम्वत् १७६० में ही हो चुका था, अतः ब्रजकुंवरवाई का कन्यादान उनके भाई महाराणा जगतसिंह ने किया।

३ गोद तो अजीतसिंह के पुत्र शत्रुशाल को लेना चाहता था परन्तु हिम्मतसिंह भाला (जो कि उस समय मेनापति था) ने जोर दिया कि पिता होने हुए पुत्र को किस प्रकार गद्दी दी जा सकती है। अतः अजीतसिंह वृद्धावस्था में गोद आया।

सूरतसिंह जुड़ावत बगू के देवसिंह, घादि को सपरिवार भ्रामन्वित किया गया। इस उत्सव पर दुर्जनशास ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये^१।

उसने प्रसकूट आदि बस्त्रभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे। उसके समय विक्रम सं १८०१ में मथुरानाथजी बूंदी से कोटा धार्ये थे। मथुरानाथजी ने किये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हृषी अर्पण की गई जिसमें प्रथम तक मथुरानाथजी प्रतिष्ठित हैं। इस मन्थिर के सच के लिये १२ रु की आगीर के गाँव प्रदान किये। वि स १८१२ में महाराज दुर्जनशास द्वारिका की यात्रा करने भी गया था।

महाराज दुर्जनशास एक बहादुर नरेश था। उसके अंदर राजपूतों के गुण विद्यमान थे। मिलमसारी दयालुता और वीरता के लिये यह प्रसिद्ध था। उस सूबर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था^२।

महाराज अजीतसिंह (वि स १८१३-१८१५)

दुर्जनशास के कोई पुत्र नहीं था। अतः उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विशनसिंह का ज्येष्ठ पौत्र और भस्ते का आगेरनार अजीतसिंह राजगढ़ी पर बैठे। यों तो दुर्जनशास ने अजीतसिंह के पुत्र धनुशास को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनशास की महाराजो से भी आश्रय में बड़ा था। अकिम हिम्मतसिंह भामा ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते धनुशास गढ़ी पर बैठे। अतः उसने यही निश्चय कराया कि पहले अजीतसिंह राजगढ़ी पर बैठे और फिर उसका सड़का राज शास।



अतः दुर्जनशास की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८१३ की फरवरी में अजीतसिंह कोटा की गढ़ी पर बैठे। इस घाट मास के समय राजमाठा ने शासन का संभालन किया।

अजीतसिंह के राजगढ़ी पर बैठने के बाद ही राजपूतों की सिधिया जो इस समय मरहटों में सबसे अधिक शक्तिशाली था ने कोटा पर आक्रमण कर दिया^३। मरहट्टे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति किये कोई राजगढ़ी पर

१ बंदासकर अनुर्ध भाग पृ ३३२२।

२ टार राजस्थान विस्व ३ पृ १५३ ३१।

३ डा अर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ १४।

वैठे। इस समय तक मुगलो का स्थान मरहठो ने ले लिया था। अतः मरहठो की सेनाका सामना करना कोटा के लिये एक बड़ी विपन्न समस्या बन गई। राजमाता ने इस समय बड़ी चालाकी में काम लिया। उसने राणाजी सिंधिया को राखी भेज कर अपना धर्मभाई बनाया^१। सिंधिया ने राज हड़पने का विचार त्याग दिया लेकिन धन का लोभ नहीं छोड़ा अतः यह निश्चय किया गया कि अजीतसिंह ४० लाख रु नजराने के देगा। इस नजराने की ४ किश्तें की गईं। इन किश्तों में से अन्तिम किश्त में २ लाख रुपये छूट के दिये गये। वाद में अजीतसिंह ने मरहठो को जयपुर लूटने के समय घोड़ों को नाले आदि भेज कर सहायता दी^२।

अजीतसिंह ने लगभग डेढ़ वर्ष राज्य किया। १६५० की अमावस्या को हुआ। इनके साथ इनकी रानी सती हुई। इनके तीन पुत्र— शत्रुशाल, गुमानसिंह व राजसिंह थे।

महाराव शत्रुशाल (वि० स० १८१५-१८२१)

शत्रुशाल को दुर्जनशाल ने गोद लिया था और उसकी मृत्यु के बाद यही राजगद्दी पर बैठने वाला था लेकिन हिम्मतसिंह भाला की चाल के कारण यह राजगद्दी पर बैठ न सका अतः अपने पिता अजीतसिंह की मृत्यु के बाद, बड़ा लडका होने के कारण वि० स० १८१५ में गद्दी पर बैठा।



इस समय मरहठो का राजपूताने पर बोलवाला था। मुगलो की अब कोई पूछ, नहीं थी। शत्रुशाल के गद्दी पर बैठते ही जवरोजी सिंधिया और मल्हारराव होल्कर कोटा आ धमके और नजराना मागने लगे। दोनों ने मिल कर शत्रुशाल से २ लाख रु० नजराने के ले लिये^३।

इसके राज्यकाल में सबसे विकट युद्ध मरवाड़े का हुआ। यह युद्ध इसके और जयपुर नरेश माधोसिंह के बीच हुआ। इस युद्ध का मुख्य कारण रणथम्बोर का किला था। वि० स० १८ में जब रणथम्बोर के किले पर माधोसिंह का

१ उपरोक्त, फाल्के जिल्द प्रथम, टिप्पणी १६४।

२ यह आक्रमण स० १८१३ में हुआ। इसमें लगभग ७००० रु खर्च हुए। राजकीय कोष की हालत ठीक न होते हुए भी यह सहायता दी गई थी।

३ सरकार फाल ऑफ दी प्रिन्स, मायर, पृ० १६४-६५।

सूरतसिंह बुढावन बेगू के सेवसिंह प्रादि को सपरिवार धामप्रित किया गया । इस उत्सव पर दुर्जनशास ने लगभग १ लाख रुपये खर्च किये ।

उसने प्रभकूट प्रादि बस्मभ सम्प्रदाय के कई उत्सव भी जारी किये थे । उसके समय विक्रम स १८१ में मयूरानाथजी भूरी से कोटा प्राये व । मयूरानाथजी के लिये राज्य मंत्री द्वारिकादास की हवसो अर्पण की गई जिसमें प्रभ तक मयूरानाथजी प्रतिष्ठित थे । इस मन्त्रि के खर्च क लिये १२ रु की जागीर क गौव प्रधान किय । वि स १८१२ में महाराज दुर्जनशास द्वारिका की यात्रा करने भी गया था ।

महाराज दुर्जनशास एक बहादुर नरेश था । उसके अंदर राजपूतों क गुण विद्यमान थे । मिलनधारी वयामुता और बीरता के लिये यह प्रसिद्ध था । उस सुअर के शिकार का बड़ा शौक था और शिकार के समय अक्सर रानियों को अपने साथ रखता था ।

महाराज अजीतसिंह (वि स १८१३-१८१५)

दुर्जनशास के कोई पुत्र नहीं था । अतः उसके बाद उसका निकटतम संबंधी विश्वसिंह का भेष्ट पौत्र और प्रभे का जागीरदार अजीतसिंह राजगढ़ी पर बैठा । यों तो दुर्जनशास ने अजीतसिंह क पुत्र अनुशास को गोद लिया था क्योंकि उस समय अजीतसिंह दुर्जनशास की महाराणी से भी व्यापु से बड़ा था । लेकिन हिम्मसिंह भासा ने यह नहीं चाहा कि अजीतसिंह के जीवित रहते शत्रुशास गद्दी पर बैठे । अतः उसने यही निश्चय करायो कि पहले अजीतसिंह राजगढ़ी पर बैठे और फिर उसका लड़का अनुशास ।



अतः दुर्जनशास की मृत्यु के ८ मास बाद यह निश्चय हुआ और इसके फलस्वरूप १८१३ की फरवृन में अजीतसिंह कोटा की गद्दी पर बैठा । इस घाट मास के समय राजमाता ने शासन का संभालन किया ।

अजीतसिंह के राजगढ़ी पर बैठने के बाद ही राजाजी सिधिया जो इस समय मरहटों से सबसे अधिक शक्तिशाली था से कोटा पर आक्रमण कर दिया । मरहट्टे यह नहीं चाहते थे कि बिना उनकी अनुमति लिये कोई राजगढ़ी पर

१ बख्तमास्कर अनुर्ष भाग पृ ३३१२ ।

२ टाड राजस्थान सिन्ध ३ पृ १३३ ३१ ।

३ वा सर्वा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय भाग पृ १४ ।

के सगम स्थान पालीघाट^१ होती हुई कोटा राज्य की सीमा में घुस गई। इस पर कोटा की सेना की भालमसिंह तथा राय अहतमराय की अध्यक्षता में इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मागलोर तहसील के भटवाड़े नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना में १५००० सवार तथा जयपुर की सेना में ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पाम ही अपनी सेना का पडाव डाले पड़े थे^२। भालमसिंह भाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पडी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूंगा। इससे कोटा की सेना को बडी सहायता मिली। इससे जयपुर वालो का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभी होल्कर उन पर टूट न पड़े। यह लडाई वि० स० १८१८ की आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमें बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लडी नहीं।

भटवाड़े^३ के युद्ध में जयपुर की सेना को हार कर भागना पडा व उसे काफी हानि उठानी पडी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालो के १७ हाथी, १८०० घोडे, ७३ तोपे तथा एक पचरगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध में कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे^४। इस युद्ध के विषय में कहा जाता है कि—

जग भटवाडा जीत, तारा जालिम भाला।

रिंग एक रगजीत, चढियो रग पचरग के^५ ॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अंतिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

दने के लिये लिखा था, परन्तु मरहठो से वार २ शोपित होने के कारण राजपूत शासको ने मरहठों की कोई सहायता नहीं की। पानीपत के युद्ध के बाद मरहठो ने जो राजस्थान को रोद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नहीं चाहती थी।

३ भटवाड़े का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध में ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है मरवाडा के युद्ध में जालिमसिंह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र में एक रग रहा। पचरग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिंह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत धीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

प्रधिकार हो गया^१। तब उसने चाहा कि कोटा और भुन्दी वाले उसकी प्रधीनता स्वीकार करलें। जैसे कि वे पहले मुगलों के समय में रणबन्धोर की प्रधीनता में रहते थे। वास्तव में कोटा और भुन्दी वाले मुगल सम्राट की प्रधीनता में रहते थे न कि रणबन्धोर के अंत इसकी परवाह नहीं की। कोटा और जयपुर में पहले से ही क्षत्रुता थी भ्रत अब फिर बढ़ने लगी^२। इसके प्रसावा रणबन्धोर के पासपास के इन्द्रगढ सातौली गता बसबन घाटि के हाड़ा जागीरदारों ने भी अब जयपुर वालों को कर देना बंद कर दिया क्योंकि वे भी तब मुगलों को ही कर देते थे। इन हाड़ा सरदारों पर ब्यादा सस्ती की आने लगी। तब वे कोटा नरेश के पास सहायता के लिये गये^३। राजुशाम ने इनको इस धर्ते पर सहायता देना स्वीकार किया कि वे कोटा को नामू भुन्दी देंगे। इससे जयपुर और कोटा के बीच युद्ध होना अनिवार्य हो गया। जयपुर के महाराजा माधोसिंह ने एक बड़ी सेना कोटा के बिरुद्ध जि. स. १८१७ में खाना की। रास्ते में इस सेना ने उणियारा पर कब्जा कर वहीं के ठाकुर से अपनी प्रधीनता स्वीकार कराई। वहाँ से यह सेना सारबेरो पहुँची। वहाँ से भी मरहटों का कब्जा हटा कर अपना प्राधिपत्य स्थापित किया^४। यह सेना आगे बढ़ कर बन्धस और पार्वती नदी

१ उपरोक्त विषय १ पृ. १४। इस किले पर पञ्चर के काम से मुगलों का अधिकार बना सा रहा था। पञ्चर के सुबेदार के प्रधीन वहाँ का शासन होता था। बर्धसिंह, प्रामेर-सासक इसे हस्तगत करना चाहता था पर वह असफल रहा। मारिरसाह के प्राक्रमण के बाद (१७११) बुजब बकिश का प्रभान सर्वथा के लिये समाप्त हो गया। १७४१ में मुगल बादशाह मोहम्मदशाह मर गया। महमदशाह नहीं पर बैठा। उसके समय में (१७३१-३२) उसके और उसके बहीर सफ्दरखान के बीच युद्ध हो गया। जयपुर नरेश माधोसिंह ने प्रयत्न कर बादशाह और बहीर के बीच सुलह करायी। इस सेना के उपरान्त में रणबन्धोर का किला माधोसिंह को दे दिया परन्तु रणबन्धोर के फ़ौजदार ने युद्ध के बाद यह किला माधोसिंह को सौंपा।

२ जयपुर-कोटा क्षत्रुता भुन्दी के युद्ध (हुडासिंह व बर्धसिंह के बीच में) के समय हो गई थी। अब कि राज बुजबनशाम ने हुडासिंह की सहायता कर उसे भुन्दी का राज्य बिलाने का प्रयत्न किया और हुडासिंह के बाद फ़ौजदारों को भुन्दी नरेश कोटा के फ़ौजदारी की सहायता से ही हुआ था।

३ डा. मजुराशाम धर्मा इत कोटा राज्य का इतिहास पृ. ४४१।

४ माधोसिंह ने यह हमला सन् १७११ में किया था जब कि मरहटे पञ्चरसाह प्रजातीय से पानीपत के मैदान में संलग्न थे। मरहटों को इस प्रकार व्यस्त रोक कर जयपुर कोटा संघर्ष युग प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार राजपूत सासक प्रयत्नस क्य में महमदशाह प्रजातीय की विजय के कारण बन गये। देखा जाये माधोसिंह को पानीपत के युद्ध में सहायता

के सगम स्थान पालीघाट^१ होती हुई कोटा राज्य की सीमा में घुस गई। इस पर कोटा की सेना की भालमसिंह तथा राय अहत्तराय की अध्यक्षता में इस सेना से टक्कर हुई। इस सेना का मागलोर तहसील के भटवाड़े नामक स्थान पर सामना हुआ। कोटा की सेना में १५००० सवार तथा जयपुर की सेना में ६० हजार सवार थे। उस समय मल्हारराव होल्कर कोटा राज्य के पास ही अपनी सेना का पडाव डाले पड़े थे^२। भालमसिंह भाला ने उससे सहायता चाही लेकिन उसने प्रत्यक्ष सहायता देने से इन्कार कर दिया। उसने यही स्वीकार किया कि उसकी सेना रणभूमि के पास पड़ी रहेगी और यदि जयपुर की सेना हारने लगी तो उनको लूट लूंगा। इससे कोटा की सेना को बड़ी सहायता मिली। इससे जयपुर वालों का साहस कम हो गया। उनको यह बराबर डर लगा रहा कि कभो होल्कर उन पर टूट न पड़े। यह लड़ाई वि० स० १८१८ की आश्विन शुक्ला ४ (ई०स० १७६१) को हुई। उसमें बून्दी की सेना भी आई थी लेकिन वह किसी ओर से लड़ी नहीं।

भटवाड़े^३ के युद्ध में जयपुर की सेना को हार कर भागना पड़ा व उसे काफी हानि उठानी पड़ी। मल्हारराव होल्कर की सेना ने भी जयपुर के डेरे बहुत लूटे। कोटा वाले जयपुर वालों के १७ हाथी, १८०० घोड़े, ७३ तोपें तथा एक पचरगा लूट कर कोटा ले आये। इस युद्ध में कोटा के ३५,५,००० खर्च हुए थे^४। इस युद्ध के विषय में कहा जाता है कि—

जग भटवाड़ा जीत, तारा जालिम भाला ।

रिंग एक रगजीत, चढियो रग पचरग के^५ ॥

यह युद्ध जयपुर व कोटा के बीच का अन्तिम युद्ध था। महाराव शत्रुशाल ने

दने के लिये लिखा था, परन्तु मरहटों से बार २ शोषित होने के कारण राजपूत शासकों ने मरहटों की कोई सहायता नहीं की। पानीपत के युद्ध के बाद मरहटों ने जो राजस्थान को रौंद डाला, इस नीति का परिणाम ही था।

१ इन्द्रगढ़ से लगभग ६ मील उत्तर की ओर।

२ मल्हारराव होल्कर पानीपत के मैदान से ७ जनवरी १७६१ को भाग कर राजस्थान की ओर आ चुका था। इसकी हारी हुई सेना किसी का पक्ष लेना नहीं चाहती थी।

३ भटवाड़े का युद्ध जनवरी १७६१ को हुआ था। विजय की यह लूट इसी युद्ध में ही प्राप्त हुई थी (उपरोक्त पृ० १५३४)।

४ डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४४७।

५ इसका अर्थ है मरवाड़ा के युद्ध में जालिमसिंह का सौभाग्य रूपी सितारा उदय हुआ। उस रण-क्षेत्र में एक रग रहा। पचरग पताका को डाल दिया। इस युद्ध के समय जालिमसिंह २१ वर्ष का युवक था। व्यक्तिगत वीरता के कारण ही उसे सफलता प्राप्त हुई।

इस युद्ध में विजयी होने के कारण वीर जातिमसिंह म्हासा के सम्मान में वृद्धि की और उसे कोटा राज्य का मुसाहिव (प्रधान मन्त्री) बनाया। इस युद्ध के पश्चात् शत्रुशासन ने माधवराव सिधिया तथा केदारजी सिधिया को बून्दी पर चढ़ाई करने में वि. स. १८१६ में सहायता दी। बून्दी का घेरा ब्राना गया। लेकिन उसे जीत नहीं सके। अन्त में संधि हो गई। माधवराव सिधिया ने शत्रु शासन को सेना खर्च के १७१२० रु. दिये^१।

कोटा राज्य होल्कर व सिधिया के राज्यों से मिला हुआ था। इसके असावा मासवा से दिल्ली के बीच में कोटा पड़ता था। इस कारण मरहटों को कोटा बराबर आना-जाना पड़ता था। मरहटों अपनी सेना का सर्वा मूटमार से ही चलाते थे, अतः कोटा पर मरहटों की बराबर आँख सगी रहती थी। कोटा वाले भी सामवाय की नीति से काम चलाते थे। शत्रुशासन के राज्यकास में स. १८१३ में मल्हारराव की सेना द्वारा मुकैत को घेरने पर कोटा ने ८० रु. खर्च किया^२। इसके बाद मल्हारराव होल्कर दिल्ली आते हुए कोटा में होकर निकला तब शत्रुशासन ने अपने प्रधान को भेज कर होल्कर की सेना की बड़ी खातिरदारी की तथा नजर भेंट की। जब वह आधाठ मास में वापस सौटा तब फिर ३१ हजार रु. होल्कर को दिये। इस बार वह फिर उज्जैन की ओर से आया तब १४ रु. भेंट किये। वि. स. १८१६ में होल्कर को १५२००० नजराने दिये गये। इसके असावा बून्दी के मोर्चे के समय कोटा से १८० किये गये। यह रकम दुर्जनशासन ने जब उम्मदसिंह को गद्दी पर बैठाया तब से वाकी घसी आ रही थी। इस प्रकार शत्रुशासन ने मरहटों को काफी धन देकर राज्य की शांति खरीदी^३। इस धन की पूर्ति के लिये कोटा में कई नये कर लगाये गये। करों को सस्ती से बसूल किया गया^४। शत्रुशासन केवल ६ साल तक राज्य कर वि. स. १८२१ की पीप कृष्णा ६ (१७६४ ई.) को स्वर्ग सिधारा। इसके कोई पुत्र न होने के कारण इसके छोटे भाई गुमानसिंह को राजगद्दी प्राप्त हुई।

१ बंगलादेश के अतुर्ब नाम पृ. ३७१ या मधुरानाथ वर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २, पृ. ४३१।

२ उपरोक्त, पृ. संख्या ४४८।

३ उपरोक्त पृ. संख्या ४३१-३२।

४ जो नय कर लगाये गये उनमें मुख्य में व. बीजान (जागीरदारों से लिया जाता था) पेशकमी कोटा नगर पर मरहटों से कर लयाया (इसको रकम ४०० थी) नगर में जाति बंधायतों पर कर बीमेड़ी वीर बाबुदारी कओरता से बसूल किये गये। बीचंडी प्रति बीबा ४ घाना व पामदारी प्रति कुटुम्ब १ घाना।

गुमानसिंह (वि० स० १८२१-१८२७ई० स० १७६४-१७७०)

महाराव शत्रुनाल की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई गुमानसिंह पोष शुक्ला ६, वि० स० १८२१ (ई० स० १७६४) को गद्दी पर बैठा। यह नौजवान, उत्साही और बुद्धिमान व्यक्ति था। उस समय फौजदार जालिमसिंह भाला की शक्ति बढ रही थी। जालिमसिंह की बहिन की शादी गुमानसिंह से हो जाने के कारण वह राज्य का सर्वेसर्वा हो गया^१। परन्तु महाराव और जालिमसिंह मे



अधिक समय तक नहीं पटी। इसका कारण यह था कि महाराव का प्रेम एक सुन्दरदासी (दरोगण) से था और वही युवनी जालिमसिंह की नजरों मे भी चढ गई थी। इससे माले बहनोई मे मनमुटाव हो गया^२। मौका पाकर भाला के द्वेषी हाडा सरदारों ने महाराव को उसके विरुद्ध बहका कर उनके कामों मे हस्तक्षेप करना शुरू किया। भाला ने इस पर विरोध प्रकट करना शुरू किया तब महाराव ने उसकी मुसाहिबी और नानते की जागीर छीन ली^३।

निराश होकर जालिमसिंह कोटा से चल दिया। जयपुर का दरवाजा तो उसके लिये पहले से ही बन्द था। मारवाड मे उसकी तदवीरे नहीं चली। मेवाड मे उस समय मरहठों ने लूट मचा रखी थी। वहाँ उस जैसे कूनीतिज्ञ को आवश्यकता थी अतः वह मेवाड चला गया^४।

मेवाड मे वह देलवाडा पहुँचा जहाँ के भाला मरदार राधादेव के द्वारा महाराणा अरिसिंह से परिचय प्राप्त किया। वहाँ पर भी अपना राजनीति को वह भूल न सका। अपने शुभचिन्तक राघवदेव भाला के साथ विश्वासघात करके उसे मरवा डाला। इस पर महाराणा बडे प्रसन्न हुए क्योंकि अरिसिंह राघवदेव के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। महाराणा ने जालिमसिंह को 'राजराणा' की पदवी दी और चीतखेडा की जागीर भो^५। मेवाड मे जब माधवराव

१ ठाकुर लक्ष्मणदान द्वारा उल्लेख है कि जालिमसिंह की बहिन का विवाह गुमानसिंह के साथ हुआ था।

२ टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५३७।

३ उपरोक्त जालिमसिंह के स्थान पर ठाकुर भोपतसिंह भकरोत को फौजदार नियुक्त किया। यह गुमानसिंह का मामा था। बाद मे यह पद काका स्वरूपसिंह को दिया गया। वह भी मरहठों को रोकने मे असफल रहा, अतः जालिमसिंह पुनः उस पद पर लाया गया।

४ उपरोक्त।

५ उपरोक्त, पृ० १५३८।

सिंधिया' का हमला हुआ तब वह मड़ने-सड़ने घायल होकर कैद हो गया। बाद में एक मरहूठा सरदार भम्बाजी इगलेने ने ६ रु देकर इसे कैद से छुड़वाया। कैद से छूट जाने पर मवाठमें अपना प्रभाव सुप्त होते देख कर वह मरहूठे बरसान् के साथ वापस कोटा प्रा गया^१।

उस समय तक मरहूठे कोट की दक्षिणी सीमा तक पहुँच गये थे। महाराराव होकर ने बकानी क किन्न को ओ कोटा से दक्षिण में ६ मील पर या पर लिया। वहीं हाइको घोर मरहूठों में घमसान मुठ हुआ। इस मुठ में सेनापति मामासिंह सावंतसिंह बड़ी धोरता से मय अपने चारसी हाइको के साथ काम प्राय। होकर विजयी होकर कोटा की घोर घागे बहा^२ तब महाराव गुमानसिंह ने अपने मामा दासीहेड़ा के भोपसिंह कीबन्गर को सिंधि के सिधे मेवा परन्तु वह सफल नहीं हुआ। इसलिये साधार हीकर महाराव ने जानिसिंह से स्थिति समझाने को कहा। जानिसिंह इस अवसर की प्रतीक्षा में था हा। उसने हान्तर के साथ सिंधि की मार्त प्रारम्भ की। ६ लाख रु उसे देकर दावि मरीयो गई। इसलिय महाराव ने प्रसन्न होकर जानिसिंह म्भसा का पुत्र मुसाहिब का पद घोर नामता की जागीर देदी^३। इसके बाद जानिसिंह का भोमवामा निर्नोदिन बढ़ता ही गया। यही तक कि कोटा की चार पीढी तक जानिसिंह ही राज्य का वर्तपती मुसाहिब रहा^४। जब महाराव मुमानसिंह समयग ७ बय राज्य करक मन्त्र निमार हुआ ता इसने अपने मातरु पुत्र

१ महाराणा जसिंह के विरुद्ध राजा रत्नसिंह ने विद्रोह कर गम्बर घालेराव बहमीर व नानोद के जागीरदारों की सहायता से बुम्भनपद में घाने को महाराणा घोषित कर दिया। घोर महारानी सिंधिया की सहायता न बचाव पर घाक्रमण कर दिया।

२ संतमानकर बतुर्बे भाग १ पृ १७१८ १९।

दीरविनोद भाग २ पृ १३३६ ३८।

दाह राजमान तृतीय भाग १ पृ १३३८।

उम्भन के नाम बहादुर की हार के राजा की स्थिति कमजोर हो गई। जानिसिंह ने ऐसी स्थिति में बड़ी चतना उचिन नही लवमा।

३ दाह राजमान भाग ३ पृ १२३९।

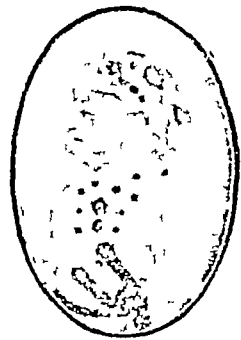
४ जगोराव पृ १२४। वा जगो का मत है कि जमाना जानिसिंह को पुत्र कीमतार बना कर भी बहा। आ बन्धनसिंह को घाने कर ले नही टटावा। बहा भी जानिसिंह के मातर राज्य उचव बनाता रहा।

५ १७६६ ई में महाराव गमानसिंह ने मन्धारा की बाया की की। बही महाराणा जसिंह २ व घोषण। भोव व राजा विरवसिंह ने सिधे। मन्धारे में तीनों मरने के बाद ही के विरव के बराबरी विवाह कर बना निर्नोद हुआ बहा जगो नही है।

उम्मेदसिंह को जालिम भाला की गोदी में बिठा कर कहा कि यह तुम्हारे भरोसे है और जालिमसिंह को राज्य का सर्वाधिकारी सरक्षक बनाया। गुमानसिंह की मृत्यु माघ शुक्ला १ सम्बत १८२७ को हुई।

महाराव उम्मेदसिंह (वि स १८२७-१८७६)

वि स १८२७ में राजसिंहासन पर बैठने के समय इसकी आयु १० साल की थी। महाराव गुमानसिंह ने इस के मामा जालिमसिंह को राज्य तथा इसका सरक्षक बनाया था^१। जालिमसिंह इस कारण कोटा का सर्वेसर्वा बन गया। उसने ५० वर्ष तक महाराव को एक कठपुतली की तरह रख कर बड़ी कुशलता से राज-कार्य चलाया। महाराव ने अपना अधिकांश समय ईश्वर-भक्ति में ही बिताया^२।



जालिमसिंह बड़ा ही महत्वाकांक्षी था। अतः शासन-सूत्र सभालते ही वह राज्य की सम्पूर्ण शक्ति अपने हाथ में करने का प्रयत्न करने लगा। उस समय मालगुजारी, खजाना और जकात जैसे महत्वपूर्ण विभाग महाराव के निकट के भाई महाराजा स्वरूपसिंह के अधीन थे। जालिमसिंह ने उसको उसके पद से हटाना चाहा। उसने राजमाता को बहका कर उसकी सहमति लेकर वि०स० १८१६ की फाल्गुन शुक्ला^३ को धाभाई जसकरण द्वारा मरवा डाला^४। जसकरण को भी बाद में राजद्रोही करार करके उसे राज्य-निकाला दे दिया^५।

१ महाराव गुमानसिंह ने उम्मेदसिंह को जालिमसिंह की गोद में बिठा कर कहा कि तुम्ही इसके सरक्षक हो।

२ जालिमसिंह का जन्म सन् १७३६ में हुआ था, जब कि नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। और मुगल सल्तनत के अवशेषों को चूर कर दिया। उसका राजनैतिक जीवन सन् १७६१ में भरवाड़े के युद्ध से प्रारम्भ होता है जब कि पानीपत के मैदान में मरहट्टे हार चुके थे। आरम्भिक जीवन देखो यही पुस्तक, पृ० स०..।

३ टाड : राजस्थान, भाग ३, पृ० सख्या १५४१, वह फौजदार था परन्तु साथ ही दीवान के अधिकार प्राप्त कर सर्वेसर्वा बनना चाहता था। वह अपने विरोधियों को जिनमें स्वरूपसिंह व जसकरण धाभाई थे, दर करना चाहता था।

४ जालिमसिंह ने राजमाता से कहा कि स्वरूपसिंह ने गुमानसिंह की हत्या करवाई। क्योंकि जब महाराव विमार पड़े तो स्वरूपसिंह ने उन्हें जहर देकर मार डाला। परन्तु वश-भास्कर में इसका दोष जालिमसिंह के प्रति लिखा गया है। वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० सख्या १५४१।

टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० सख्या १५४२।

५ उपरोक्त धाभाई जसकरण पर राजद्रोह का आरोप लगा कर हमेशा के लिये देश से निर्वासित कर दिया। धाभाई दरिद्र अवस्था में जयपुर में मरा।



स्वरूपसिंह के मारे जाने के बाद आलिसिंह कोटा का सर्वोच्च बन गया। महाराज ठो नेवस नाम का राजा था यहाँ तक आलिसिंह स्वयं गढ़ के घम्वर हबसी बना कर ही रहने लगा^१। यहाँ रहने का धर्मिप्राय महाराज के राठ दिन सपक में रहना था ताकि वह उनके पास जाने-जाने वालों पर भी कड़ी निगाह रख सके।

आलिसिंह ने हाड़ा सरदारों को बराबर कुचमने का प्रयत्न किया। उसके समय में कई हाड़ा सरदार कोटा छोड़ कर अन्य राज्यों—बून्दी, जयपुर, जोधपुर आदि में चले गये। लेकिन उनको यहाँ भी सुख से नहीं रहने दिया। इसने अन्य राजाओं को भी सूचित किया कि ये सब सरदार राज्य-प्रोही हैं। तथा विश्वासपासी हैं। राजा लोग यह सूचना पाकर तथा इसके प्रभाव आलिसिंह के प्रभाव के कारण इनको धातय देने का साहस न कर सके। साधारण होकर वे वापस कोटा छोट आये। आलिसिंह ने उनको कोटा में रहने की अनुमति देदी लेकिन उनको बागीरों वापस नहीं दी। यदि दी भी तो बहुत छोटी बागीरों दी^२। सरदारों में से महाराजा स्वरूपसिंह के मजदूकी माई आटोण के बागीरदार देवीसिंह ने आलिसिंह के बिच्छे कार्यवाही करने का विचार किया लेकिन इसके तैयारी करने से पहले ही आलिसिंह ने उसके बिच्छे सेना मजदूकी। महाराज सेना मजदूके बिच्छे से और एक बार सेना की बढ़ाई करने से पूर्व रोक भी दिया था लेकिन महाराज ज्यादा समय तक विरोध नहीं कर सके। आलिसिंह ने मरहठा के एक भयंकर फौजी भ्रफसर मूवाकल्पी के द्वारा भारोण पर बढ़ाई करादी तथा फिर कोटा से भी सेना भेजदी। देवीसिंह को हार मामनी पड़ी और सिंधिया की सरण लनी पड़ी। बाद में सिंधिया के कहने पर देवीसिंह को एक छोटीसी बागीर कोटा में देदी गई^३। इसी प्रकार स्वरूपसिंह के पुत्रों को भी बहुत ही छोटी बागीरों दी गई।

बि स १८३६ में भारत की प्राचीन दिग्विजय प्रथा के अनुसार आलिसिंह ने महाराज द्वारा टीका वीर करामा^४। इसके द्वारा वह कोटा राज्य के

१ उपरोक्त पृ सं १५४४।

२ टाड राजस्थान तृतीय भाग पृ सं १५४३।

३ प्रान्ता की बागीर ६ हजार व भाग की थी। मजदूकी से असुख्य हाड़ाओं के एकत्र हो बिच्छे कर दिया। बिच्छे तथा दिया गया। देवीसिंह भाग गया और परदेस में ही उसकी मृत्यु हुई। उसके पुत्र ने अपना मांग ली और उसे बागोसिया की रियासत मिनी को कि १२ की भाग लनी थी। टाड राजस्थान तृतीय भाग पृ १५४४।

४ टीका वीर राज्याधिकार के बाद दिग्विजय के सिद्धे प्रमाण करने व चक्रवर्ती शासन बनने की प्रथा को कहते हैं।

आसपास के छोटे-छोटे राज्यों व विकानो को हस्तगत करना चाहता था तथा राज्य का विस्तार करना चाहता था। इसी टीका दौर में सर्वप्रथम शाहवादा पर आक्रमण कर हस्तगत किया तथा वहाँ कोटा का जमादार अनवरखॉ निगरानी के लिये नियुक्त किया गया। इसके बाद वि० स० १८३० में शोपुरवडीदे पर चढाई की गई।

इस समय जयपुर का महाराजा प्रतापसिंह कोटा रियासत पर अधिकार जमाने का बार-बार प्रयत्न कर रहा था। उसको रोकने के लिये कोटा से वि०स० १८३७ में सेना भेजी गई। इस सेना ने उस समय जयपुर की सेना को रोक दिया लेकिन जयपुर वाले फिर भी दवे नही। अतः वि० स० १८३९ में एक बडी सेना भेजी गई। इस सेना ने जयपुर की सेना पर पूर्ण विजय प्राप्त की^२।

विदेशी नीति^३—मरहठो के प्रति नीति—पेशवा ने कोटा राज्य सिधिया, होल्कर और दोनो पँवारो को जागीर में दिया था। अतः इन चारो सरदारो की मातहत में कोटा रहा^४। वि० स० १७९४ (ई० स० १७३७) से मरहठो का वकील कोटा में रहने लगा था। वह अंग्रेजी काल के रेजीडेन्ट की भाँति था। वह कोटा राज्य के विभिन्न परगनो से मामलात (राजस्व) एकत्र किया करता था तथा निश्चित अनुपात में चारो मरहठे सरदारो को भेज देता था। राज्य की छोटी-बडी घटनाश्री का कोटा भी वह मरहठो के पास भेजता रहता था। इसको ३८,००० रु० वार्षिक वेतन मिलता था। इन्द्रगढ, पीपल्दा आदि कोटरियो की मामलात इसी वकील के द्वारा वसूल होती थी। कोटरियात के सरदारो व मरहठों के बीच काफी झगडे होते रहते थे। ऐसे समय में मरहठे कोटा से सहायता माँगा करते थे। कोटा नरेश की इच्छा न होते हुए भी सहायता देनी पडती थी।

वकील के नीचे दीवान रहता था जिसका मुख्य काम राजस्व की वसूली करना था। नरहरे सरदारो ने वकील की मातहत अपने कमविस्दार नियत कर

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ४७९। यह विजय सम्बत १८३६ चैत्र सुदि ९ को हुई थी।

२ उपरोक्त पृ० ४८०। पिढारियो के नेता करीमखा व मीरखा से सन्धि भी की गई।

उपरोक्त पृ० ४८२, टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५७४।

३ जालिमसिंह की विदेश नीति का उद्देश्य शक्ति-सन्तुलन का वातावरण तैयार करना था। प्रत्येक विदेशी शक्ति के साथ अच्छे संबंध बनाये रखना तथा कोटा का प्रभुत्व स्थापित करना था जिससे काटा जिस शक्ति को सहयोग दे उसकी ताकत बढ जाये।

४ सिधिया को पचमहल और होल्कर को डीग, पीडावा आदि के परगने पेशवा के प्रभाव में थे जो बाद में अंग्रेजी विजय के उपरान्त कोटा को दिये गये थे।

रखत थे। प्रत्येक परगने पर एक कमबिसदार नियत था। ये वर्तमान तहसीलदार को भाँति थे। मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी। शासन सभासत की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था। यह सब कुछ होत हुए भी मरहूठ सरदार जब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थे। वे ज्पायातर वसूली के लिये ही इधर आते थे। इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था। आसिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना फतई हितकर नहीं है। अतः वि० स १८३४ में ज्पायात्री प्रथा को स० १८४१ में मरहुराव को स १८४२ में साडेराव को नकदी देकर कोटा को मरहूठों के आक्रमण से बचाया गया। आसिमसिंह तुकोजी होल्कर को भी बड़ी खुशामद करता था। वि० स १८३६ में उसका पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७० न्योते के मजबूत गये। कोटा राज्य यों प्रति वर्ष कई लाख रु का कर मरहूठों को देता था। यह कर सिधिया का वकील वसूल कर के भेजता था। यह कर भापसी करार से मरहूठे परस्पर बाँट लते थे।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढ़ने का विचार कर रहे थे। अब तक राजस्थान व पञ्जाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थे। वि० स १८३१ को अंग्रेजी सेना ने प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया। यह सेना कर्नल मानसन की प्रधीमता में होल्कर के विरुद्ध रुड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली। आसिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये राज्य की सेना भी पलायन के आपा अमरसिंह के नेतृत्व में भजी।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया। होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

१ वा. तर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग २ पृ. ४८३ से ४८५।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ पेंडार, वेरवा व रामचन्द्र पंडित में बाँटा जाता था।

३ १८३६ ई. तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था। १८३६ में सिधिया हार गया। १८३४ में होल्कर-अंग्रेज युद्ध चल रहा था। सिधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से महाबवा की माया अंग्रेजों ने की थी अतः इसी दृष्टिकोण से अंग्रेजों ने राजपूताने की ओर कब्रम बढ़ाया पर वास्तव में उनका साम्राज्यकारी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है। कोटा होल्कर के राज्य के नाम से अतः होल्कर से युद्धकाल में पहले बार राजपूत शासकों से मुनाकाठ की।

४ वा. तर्मा : कोटा राज्य का इतिहास पृ. ४८६ व ४९।

था। जब मानसन को यह ज्ञात हुआ तो वह कोटा राज्य की सीमा में वापस चला आया। और मुकुन्दरा की नाल में शरण ली। यो मानसन अपनी कुछ सेना तथा कोटा की सेना को होल्कर को रोकने के लिये पीछे छोड़ आया था। इस सेना ने पीपल्या नामक स्थान पर होल्कर की सेना का मुकाबला किया। इस लड़ाई में कोटा की काफी बड़ी सेना मारी गई। आपा अमरसिंह भी मारा गया। लेकिन इससे सेना बच गई। अंग्रेज सेना का कप्तान लुकन भी मारा गया^१। इधर मानसन मुकुन्दरा की घाटी होता हुआ कोटा नगर पहुँचा। उसने कोटा में शरण लेने का विचार किया लेकिन जालिमसिंह ने उसे घुसने नहीं दिया। उसने उसे सैनिक सहायता देने का अवश्य आश्वासन दिया था^२। मानसन घबराया हुआ था। अतः उसने होल्कर का सामना न कर दिल्ली को ओर भागना ही उचित समझा। रास्ते में उसके कई सैनिक मर गये। कई छोड़ कर चले गये। अन्त में दिल्ली पहुँच कर उसने अपनी हार का मुख्य कारण जालिमसिंह द्वारा सहायता न देना बताया जो पूर्णतया असत्य था। सत्य यह था कि कोटा की सेना के कारण ही वह बच पाया था।

होल्कर कोटा राज्य द्वारा अंग्रेजों की सहायता करना सहन नहीं कर सका। अतः उसने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जालिमसिंह ने सेना का सामना करना उचित नहीं समझा, अतः सधि की बातचीत आरम्भ की। दोनों सरदारों ने आपस में मिल कर समझौता करने के लिये चम्बल नदी के बीच में मिलना तय किया। कोटा के गढ़ के नीचे चम्बल में दोनों सरदार मिले। होल्कर ने पीपल्या युद्ध की शर्तों के १० लाख रु० माँगे। परन्तु अतः जालिमसिंह ने होल्कर को ३ लाख रु० देकर ही विदा किया^३। वास्तविकता यह थी कि होल्कर जालिमसिंह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। वह उसकी मित्रता में ही अपना हित समझता था। होल्कर को यह आशा थी कि वह उसकी थोड़ी बहुत मदद करता ही रहेगा। इसके कुछ समय बाद ही वि० स० १८७४ (ई०स० १८१७) में होल्कर डींग की लड़ाई में बुरी तरह परास्त हुआ। होल्कर की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। तब से राजपूताने में होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। यहाँ तक कि जयपुर व जोधपुर वाले तो उससे लड़ने तक को तैयार हो गये। लेकिन जालिमसिंह ने फिर भी होल्कर से अच्छा व्यवहार किया।

१ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३। होल्कर को सिर्फ ३ लाख रु प्राप्त हुए। ७ लाख के लिये वह जालिमसिंह को याद दिलाता रहता था पर उसे प्राप्त नहीं हुए।

२ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५७१।

३ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३।

रसत थे। प्रत्येक परगने पर एक कमविसदार नियत था। ये वर्तमान छहसीस दार की सीमा थे। मराठों की नीति खूब मामलात वसूल करने की थी, घासम संचालन की ओर कम ही ध्यान दिया जाता था। यह सब कुछ होते हुए भी मरहठ सरदार अब तक कोटा पर आक्रमण कर देते थे। वे व्यापार वसूली के लिये ही इधर आते थे। इनको साम और दाम द्वारा वापस किया जाता था। आसिमसिंह जानता था कि इनका सामना करना कष्टी हितकर नहीं है। अतः वि. स. १८३४ में बीजाबी अफ्फा को सं० १८४१ में मरहठराव को, स. १८४२ में साडेराव को नकदी देकर कोटा को मरहठों के आक्रमण से बचाया गया^१। आसिमसिंह तुकोशी होल्कर की भी बड़ी सहायता करता था। वि० स. १८३६ में उसके पुत्र के विवाह पर कोटा की ओर से ७० लक्षों के भ्रज गये। कोटा राज्य में प्रतिवर्ष कई लाख रु का कर मरहठों को देता था। यह कर सिधिया का वकील वसूल कर के भेजता था। यह कर आपसी करार से मरहठ परस्पर बाँट लेते थे^२।

इस समय अंग्रेज राजस्थान की ओर बढ़ने का विचार कर रहे थे^३। अब तक राजस्थान व पंजाब ही अंग्रेजों के अधिकार से बचे हुए थे। वि. सं. १८३१ की अंग्रेजी सेना में प्रथम बार कोटा में प्रवेश किया^४। यह सेना कर्नल मानसम की अधीनता में होल्कर के विरुद्ध लड़ने के लिये कोटा राज्य में से होकर निकली। आसिमसिंह ने इस सेना की सहायता के लिये राज्य की सेना भी पलायन के आगे अमरसिंह के नेतृत्व में भेजी।

यह सेना पहले होल्कर के राज्य में घुस गई। होल्कर ने कहीं सामना नहीं किया। होल्कर अपनी बड़ी सेना की सहायता से अंग्रेज सेना को घेरना चाहता

१ डा. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास भाग २ पृ. ४८३ से ४८६।

२ यह विभाजन इस प्रकार होता था—सिधिया व होल्कर का हिस्सा बराबर रहता था तथा बचा हुआ परिवार वेसवा व रामचन्द्र पंडित में बाँटा जाता था।

३ १८३१ ई. तक अंग्रेजों ने दक्षिणी भारत तथा पूर्वी भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया था। १८३३ में सिधिया हार गया। १८३४ में होल्कर-अंग्रेज युद्ध कम चला था। सिधिया व होल्कर से पीड़ित राजपूतों के राज्यों से सहायता की माँगा अंग्रेजों ने की थी परन्तु इसी दृष्टिकोण से अन्तर्गत राजपूताने की ओर कम बढ़ावा पर वास्तव में उनका साम्राज्यवादी दृष्टिकोण इससे प्रकट होता है। कोटा होल्कर के राज्य के पास था अतः होल्कर से युद्धरत में पहली बार राजपूत घातकों से मुनाफावत की।

४ डा. शर्मा : कोटा राज्य का इतिहास पृ. ४८६ व ४९१।

था। जब मानसन को यह ज्ञात हुआ तो वह कोटा राज्य की सीमा में वापस चला आया। और मुकुन्दरा की नाल में शरण ली। यो मानसन अपनी कुछ सेना तथा कोटा की सेना को होल्कर को रोकने के लिये पीछे छोड़ आया था। इस सेना ने पीपल्या नामक स्थान पर होल्कर की सेना का मुकाबला किया। इस लड़ाई में कोटा की काफी बड़ी सेना मारी गई। आपा अमरसिंह भी मारा गया। लेकिन इससे सेना बच गई। अंग्रेज सेना का कप्तान लुकन भी मारा गया^१। इधर मानसन मुकुन्दरा की घाटी होता हुआ कोटा नगर पहुँचा। उमने कोटा में शरण लेने का विचार किया लेकिन जालिमसिंह ने उसे घुसने नहीं दिया। उमने उसे सैनिक सहायता देने का अवश्य आश्वासन दिया था^२। मानसन घबराया हुआ था। अतः उसने होल्कर का सामना न कर दिल्ली को और भागना ही उचित समझा। रास्ते में उसके कई सैनिक मर गये। कई छोड़ कर चले गये। अन्त में दिल्ली पहुँच कर उसने अपनी हार का मुख्य कारण जालिमसिंह द्वारा सहायता न देना बताया जो पूर्णतया असत्य था। सत्य यह था कि कोटा की सेना के कारण ही वह बच पाया था।

होल्कर कोटा राज्य द्वारा अंग्रेजों की सहायता करना सहन नहीं कर सका। अतः उसने कोटा पर आक्रमण कर दिया। जालिमसिंह ने सेना का सामना करना उचित नहीं समझा, अतः सधि की बातचीत आरम्भ की। दोनों सरदारों ने आपस में मिल कर समझौता करने के लिये चम्बल नदी के बीच में मिलना तय किया। कोटा के गढ़ के नीचे चम्बल में दोनों सरदार मिले। होल्कर ने पीपल्या युद्ध की शर्त के १० लाख रु० माँगे। परन्तु अतः में जालिमसिंह ने होल्कर को ३ लाख रु० देकर ही विदा किया^३। वास्तविकता यह थी कि होल्कर जालिमसिंह से मित्रता बनाये रखना चाहता था। वह उसकी मित्रता में ही अपना हित समझता था। होल्कर को यह आशा थी कि वह उसकी थोड़ी बहुत मदद करता ही रहेगा। इसके कुछ समय बाद ही वि० स० १८७४ (ई०स० १८१७) में होल्कर डींग की लड़ाई में बुरी तरह परास्त हुआ। होल्कर की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई। तब से राजपूताने में होल्कर का प्रभाव कम होने लगा। यहाँ तक कि जयपुर व जोधपुर वाले तो उससे लड़ने तक को तैयार हो गये। लेकिन जालिमसिंह ने फिर भी होल्कर से अच्छा व्यवहार किया।

१ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५७३। होल्कर को सिर्फ ३ लाख रु० प्राप्त हुए। ७ लाख के लिये वह जालिमसिंह को याद दिलाता रहता था पर उसे प्राप्त नहीं हुए।

२ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५७१।

३ टाड राजस्थ

उदयपुर के प्रति नीति—आसिमसिंह ने सिंधिया के विरुद्ध मेवाड़ को सहायता दी थी। कोटा व मेवाड़ की संयुक्त सेना ने मरहटों को मेवाड़ से बाहर निकाल दिया। मरहटों के जाने के बाद ही मेवाड़ को शक्तिशाली पक्षों चूड़ावर्तों व शक्कावर्तों के बीच मनमुटाव हो गया था। महाराणा चूड़ावर्तों से परेशान था अतः उसने आसिमसिंह से सहायता मांगी। आसिमसिंह ने वापस सिंधिया से मित्रता कर चूड़ावर्तों को हराया। बाद में महाराणा तथा महादानी सिंधिया आपस में मिले। महाराणा महादानी सिंधिया तथा आसिमसिंह के प्रयत्न से चूड़ावर्तों को धारमसमपण करना पड़ा। आसिमसिंह इसके बाद कोटा वापस चला आया। आसिमसिंह के मेवाड़ आने का मुख्य ध्येय मेवाड़ में अपनी धार बनाना था लेकिन उसमें उसे पूर्ण सफलता नहीं मिली।

आसिमसिंह के मेवाड़ से लौटते ही महाराज सिंधिया ने प्रतिनिधि प्रणामी इच्छिया को आसिमसिंह का घनिष्ठ मित्र बनाने के महाराणा विरुद्ध हो गये। महाराणा ने चूड़ावर्तों से मेल कर लिया। इस पर आसिमसिंह स्वयं सेना लेकर उदयपुर गया। तेजा घाटी के पास महाराणा व आसिमसिंह के बीच युद्ध हुआ। महाराणा ने संधि कर ली। महाराणा ने फौज-सब में आसिमसिंह को बहादुर का किता और परगना दिया।

१ वेदो यही पुस्तक ५ महाराज युमासिंह के काल में आसिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहाँ उसे महाराणा की पत्नी प्राप्त हुई। आसिमसिंह महाराणा परिसिंह के विरुद्ध राजा परिसिंह ने सिंधिया की सहायता लेकर उदयपुर पर धारमसमपण किया तो आसिमसिंह ने परिसिंह का साथ दिया था। युद्ध में आसिमसिंह बड़े गौरवपूर्वक हो चुका था। धर्मदासने द्वारा वह लड़ाया गया। वह पुनः कोटा लौट आया और इच्छिया के विरुद्ध महाराज युमासिंह से सहायता लेकर पुनः शक्तिशाली हो गया।

२ बीरबंसिंह चूड़ावर्त से हमीरगढ़ लेकर आसिमसिंह और प्रणामी इच्छिया बिलोड़ का बेरा डामने प्राये बड़ा। बिलोड़ के पास सिंधिया स्वयं आकर इससे मिल गया। आसिमसिंह के प्रयत्नों ने सिंधिया-महाराणा युद्धकात् (उदयपुर से १२ मील दूर) पर हुई बीर चूड़ावर्तों को बिलोड़ से बाहर निष्कलने का समझौता हो गया। घोसरा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. २२, २१।

३ प्रणामी इच्छिया सिंधिया की ओर से राजपूताने में मरहटों का प्रतिनिधि था। चूड़ावर्तों की अति समाप्त हो जाने पर प्रणामी ने बीरसिंह चूड़ावर्त से मित्रता करनी को न समझी को व न आसिमसिंह को पसंद थी। महाराजा ने लक्ष्मी देवी को प्रणामी के स्नान पर निवृत्त किया पर प्रणामी का प्रतिनिधि पण्डित पस्त यह पर छोड़ने के लिये तैयार न था। लक्ष्मी देवी व पण्डित पस्त लड़ पड़े। महाराणा ने भी प्रणामी का साथ छोड़ दिया।

४ बीरबंसिंह भाग २ प्रकरण २३ घोसरा राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. १, ३ बंसिमास्कर चतुर्थ भाग पृ. ३६१२ आसिमसिंह के कब्रदानुसार महाराणा ने

जालिमसिंह ने महाराणा को व्यक्तिगत खर्च तथा मरहठो को खण्डणी आदि देने के लिये लगभग ७१ लाख उधार दिये थे। इस कर्ज के बदले मे मेवाड के कई परगने कोटा राज्य मे मिला लिये गये। इन परगनो की आमदनी कोटा राज्य मे जमा होती थी, ये परगने वि० स० १८७१ तक कोटा के अधीन रहे। बाद मे कर्नेल टाड के प्रयत्नो से ये परगने वापस मेवाड राज्य को दे दिये गये।

बून्दी के प्रति नीति—जालिमसिंह सब नरेशो के साथ मैत्री रखना चाहता था। बून्दी और कोटा के बीच काफी समय से वैमनस्य चला आ रहा था। जालिमसिंह ने बून्दी से मेल करना चाहा। इस कारण सबसे पहले उसने अपनी पुत्री का विवाह बून्दी नरेश के साथ कर दिया। बून्दी राज्य के प्रधान मंत्री धाभाई मुखराम से जब वह पाटण दर्शनार्थ गया तब बड़े प्रेम से मिला व शानदार आचरण की। बाद मे अगहन कृष्णा द्वितीया वि० स० १८३१ के दिन दोनो ने श्री केशवरामजी की साक्षी करके परस्पर मित्रता की शपथ ली। बाद में उसे अपने साथ कोटा लाया जहाँ उसका बडा आदर-सत्कार किया गया। स्वयं महाराव ने उसे सरपेंच, सिरोपाव, तथा घोडा भेंट किया। मुखराम जब वापस बूदी लौटा तब उसके साथ गैता के महाराजा नाथसिंह और बालाजी यशवन्त गये। और वहाँ दो घोडे, दो सिरोपाव, एक हाथी और एक बहुमूल्य आभूषण बूदी नरेश को भेंट किये। बूदी नरेश ने भी दोनो सरदारो को एक एक सिरोपाव और घोडा देकर खाना किया। इस प्रकार जालिमसिंह की चतुराई से दोनो नरेशो का पारस्परिक द्वेष समाप्त हो गया।

अग्नेजो के प्रति नीति—जालिमसिंह अग्नेजो की उत्तरोत्तर वृद्धि को बडे ध्यान से देख रहा था। वह समझ गया था कि शीघ्र ही मरहठो का राज्य समाप्त हो जायेगा तथा उनका स्थान अग्नेज लेलेगे। यो भी अब तक राजपूताना व पजाब ही उनके अधिकारो से बचे हुए थे। अत वह अब अग्नेजो को विशेष रूप से सहायता देने लगा। वि० स० १८६१ (ई० स० १८०४) मे अग्नेजो सेना ने कोटा राज्य में प्रथम बार प्रवेश किया। जालिमसिंह ने इस सेना को सहायता के लिये अपनी सेना भी दी। इसका वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं। अग्नेज इस समय मरहठो की शक्ति समाप्त करने मे लगे हुए थे। ऐसे वक्त मे अग्नेजो को जालिमसिंह के सहयोग तथा सहायता की बडी आवश्यकता थी।

इगले के भाई मालराव को कंद से मुक्त कर दिया और जहाजपुर का हाकिम जालिमसिंह ने विष्णुसिंह शक्तावत को बनाया।

१ बक्ष भास्कर चतुर्थ भाग प० ३८२४।

२ यही पुस्तक फुटनोट

आसिमसिंह ने भी सहायता मांगे जाने पर देने का वायदा किया। कम्पनी की धीरे से वायदा किया गया कि सोमहसा के परगने जो कि फिलहाल कम्पनी की धीरे से उसे इजारे पर दिए हुए थे। उनको उसे आगौर में दे दिया जायेगा। बाद में जब आसिमसिंह को ये चारों परगने दिए जाने लगे तो उसने अपनी स्वामीभक्ति का परिचय देते हुए कहा कि ये परगने कोटा राज्य में मिलाये जाने चाहिये क्योंकि सहायता कोटा मरेक्ष ने दी है तथा उसने तो केवल कम्पनी की सेवा की है। कम्पनी ने उस पर चारों परगने कोटा राज्य में मिला दिये।

कर्नल टाड ने जब आसिमसिंह से कम्पनी की पिण्डारियों को दमन करने की योजना बताई तथा सहायता मांगी तबभी उसने सहायता देना स्वीकार किया था आसिमसिंह ने ही पिण्डारियों को अपने राज्य में धरण दे रखी थी। लेकिन वह अब क्या करता? कर्नल टाड ने भी उसे स्पष्ट रूप से कह दिया कि कम्पनी पिण्डारियों का दमन देश में स्थिति स्थापित करने के लिये कर रही है। राज्य विस्तार के लिये नहीं कर रही है। तब आसिमसिंह ने वापस उत्तर दिया—“मैं जानता हूँ कि १ वर्ष बाद सम्पूर्ण भारत में कम्पनी का ही राज्य हो जाना है।” पिण्डारियों के दमन के लिये आसिमसिंह ने अंग्रेजों को १५ पैदल तथा सगर और चार तोपें कम्पनी का सुपुर्द की। १८१७ ई. में पिण्डारी समाप्त कर दिये गये। पिण्डारियों को कुचमने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने मरहठों की शक्ति को समाप्त कर दिया। आसिमसिंह ने कोटा और अंग्रेजों के बीच में २६ दिसम्बर सन् १८१७ को संधि कराई थी। इसकी निम्नलिखित धर्तें थीं।

(१) अंग्रेजी सरकार और महाराज उम्मेदसिंह तथा उसके उत्तराधिकारियों के बीच में मित्रता के संबंध और हितसमता रहेगी।

(२) दोनों पक्षों में से एक पक्ष के राज और मित्र दूसरे पक्ष के राज और मित्र माने जायेंगे।

(३) अंग्रेजी सरकार कोटा राज्य को अपने संरक्षण में लमा करवुल करती है।

(४) महाराज और उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजी सरकार के साथ सादर रहते हुए सदा सहयोग करेंगे। तथा उसके प्राधिपत्य को मांगेंगे और मन्विष्य में

१ टाड राजस्थान तीसरी जिल्द पृ. १२५१ के चार परगने जब आसिमसिंह के बंधजों को नया राज्य देना गया तो वे परगने अन्नासाहू राज्य में मिला दिये गये।

उन राजाओं और रियासतों से कोई सबंध नहीं रखेंगे जिनके साथ अब तक कोटा राज्य का सबंध रहा है ।

(५) अंग्रेज सरकार की अनुमति के बिना महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राणा या रियासत के साथ किसी प्रकार की शर्तों, तय नहीं करेंगे ।

(६) महाराव और उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे । यदि महाराव को युद्ध की स्थिति में प्रवेश करना पड़ेगा तो अंग्रेज सरकार के परामर्श से ही ऐसा हो सकता है ।

(७) कोटा राज्य जो क़र अब तक मरहटों को देता था वह अंग्रेज सरकार को देगा ।

(८) कोटा राज्य अन्य किसी राज्य को कर नहीं देगा । यदि कोई ऐसा अधिकार प्रस्तुत करेगा तो अंग्रेज सरकार उमका उत्तर देगी ।

(९) आवश्यकता पड़ने पर कोटा राज्य अंग्रेजी सरकार को सैनिक सहायता देगा ।

(१०) महाराव और उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के शासक रहेंगे । उसके राज्य में अंग्रेज सरकार का दीवानी या फौजदारी अमल जारी नहीं किया जायेगा ।

इस संधि के तीन माह बाद मार्च १८१८ में उपरोक्त संधि में २ शर्तें और बढ़ा दी गईं ।

(१) महाराव उम्मेदसिंह और उसके उत्तराधिकारी कोटा के राजा माने गये ।

(२) जालिमसिंह और उसके वंशज सम्पूर्ण अधिकार-सम्पन्न राज्य मंत्री बने रहेंगे^२ ।

जालिमसिंह के सुधार—जालिमसिंह ने कोटा राज्य का प्रसार किया । उदयपुर से कई परगने प्राप्त किये । इन्द्रगढ, खातोली, करवाड, गैता आदि

१ टाड राजस्थान भाग ३, पृ० १८३३, परिशिष्ट ६ ।

एचिशन ट्रिटीज सनद एण्ड एनगेजमेंट भाग ३, पृ० ३५७ ।

२ जालिमसिंह के साथ यह अलग सन्धि हुई । उपरोक्त पृ० ३६१ । कोटा के महागज ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ सन्धि कर राजपूताने को अंग्रेजी प्रदेश में सहूलियत स्थापित कर दी । बाद में धीरे-धीरे राजपूताने के सब शासकों ने मरहटों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये ठीक इसी प्रकार की संधियाँ की । अंग्रेजी सार्वभौमिकता ने धीरे-धीरे इन शासकों को नपुंसक बना दिया । जालिमसिंह का यह कार्य कोटा के लिये कितना लाभप्रद हो सकेगा इसका प्रमाण तो उम्मेदसिंह की मृत्यु के बाद राज्य-चक्रांतर का युद्ध है ।

उसके अधीन रहे। पाटली खिलजीपुर मरहठों को म लने दिया। इसना बड़ा राज्य का संगठन उनकी सैनिक व्यवस्था पर आधारित था।

सैनिक व्यवस्था—वह हाड़ा जागीरदारों को और यथासंभव किसी भी राजपूत सरदार को सेनापति नहीं बनाता था। सना का सबासन या प्रबन्ध मुसलमान या कायस्थों का ही था जाता था। प्रधान सेनानायक दसलखा पठान था। मुख्यपद भी पठानों को सौंपे गये। उसकी सेना में २ सैनिक थे व १ से अधिक तोपें थीं जो आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भजी जा सकती थीं धुड़सवार व पदस उसकी सेना के मुख्य घन थे। उसकी सेना के प्रसावा रथ क्षत्रों में जागीरदारों की सेना का भी प्रयोग किया जाता था। भय जोसे मित्रता होने पर अपने यहाँ २ घन व सैनिक भफतर रक्ते तथा पश्चिमी उंग से सैनिक कबायद तथा सिला देनी शुरू की। राज्य में नये किल बनवाये गये। पुराने किलों की मरम्मत की गई। कोटा नगर का शहर पताह स १८३६ में सुरक्षा के लिये बनवाया गया। मुख्य किलों को—जागीरोण नाहरगढ़ केन बाड़ा साहाबाद प्रावि सैनिक दृष्टि से सुरक्षित किया गया। प्रत्येक किले में मदी तोपें व बास्केट खासा तथा सुरक्षित (Reserve) सेना रखी गई। सं १८५६ (१८० ई) के बाद उनकी सौज का मुख्य केन्द्र छावनी था जो गगरी व किले के पास थी भूमि कर प्रबंध सुधार^१। सगातार युद्धों के कारण तथा सैनिक नबसगठन से कोटा राज्य का कोप खासी होने लगा। राज्य की प्राय मरहठों की मामलात के रूप में वेनी पड़ती थी तब ही राज्य में शांति रह सकती थी। अतः प्राय कृषि व लिये आसिमसिंह ने भूमि कर सुधार किये। सर्व प्रथम आसिमसिंह ने पटेस-व्यवस्था मे सुधार किये। पटेस, राज्य व जनता के बीचमें संस्था के रूप में कार्य करते थे। प्रजा से अधिक कर वसूल किया जाता था। प्रत्याचार और अनाचार के व प्रतीक थे। राज्य की आय को वे कम बतसाते थे। बाकी धन वे स्वयं हड़प जाते थे। प्रति तीसरे वर्ष एक कर पटेसों से लिया जाता था जिसे बराड़ कहा जाता था। पटेस यह कर भी जनता से वसूल करते थे। आसिमसिंह ने पहली घोषणा तो यह की कि जो पटल राज्य को बराबर उसका हिस्सा होंगे उनस बराड़ नहीं लिया जायेगा। पटेसों की रसूम नियत करवी। राज्य के सब पटेसों को एकत्र किया गया और उन्हें पटली के पट्टे दिये गये। यह पटली को एक संस्था बन गई। सब पटली में से ४ सबसे योग्य

१ टाड राजस्थान जिल्ह तीन पृ १५४६५ ।

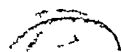
२ जनरोन १ १२२-१२१७ ।

पटेल छुट्टि गये। उनकी एक समिति बनाई गई जिसका अध्यक्ष स्वयं जालिम-सिंह था। इसका कार्य मालगुजारी वसूल करना तथा जमीन को आवाद रखना था। बाद में इस समिति को गाँव का पुलिस कार्य भी सौंप दिया गया तथा गाँव की पचायती से असंतुष्ट व्यक्तियों की अपील पर निर्णय करना भी इसका काम रखा गया। गाँव के पटेल पर गाँव की शांति, न्याय तथा मालगुजारी का कार्य सौंपा गया। इसके अलावा गाँव का पटेल विदेशियों के प्रवेश व चाल-चलन पर भी निगरानी रखता था। इन पटेलों व पटेल समिति पर नियंत्रण रखने के लिये उसने कठोर गुप्तचर व्यवस्था का संगठन किया।

भूमि की पैदाइश—पटेल सम्मेलन के समय जालिमसिंह ने तत्कालीन भूमि-व्यवस्था की पूर्ण रिपोर्ट प्राप्त की। कर कैसे वसूल किया जाता है? कितना? कब? भूमि कैसी है? खेती में क्या बोया जाता है? यह सूचना प्राप्त करने के बाद उसने जमीन को नपचाया। जमीन की चकवदी की गई। उसको तीन भागों में विभक्त किया गया। पोवत, गोरमा और मौमभी। इसके अनुसार लगान निश्चित किया गया। साथ ही घोपणा की गई कि लगान नकद लिया जायेगा। पटेल की वसूली प्रति बीघा डेढ़ आना की गई। इससे राजकीय आय बढ़ने लगी।

कर व्यवस्था—जालिमसिंह के इन सुधारों से कृषक वर्ग को कष्ट से छुटकारा प्राप्त हो गया हो, ऐसी बात तो नहीं है। पटेलों के पास कुछ ताकतें ऐसी थी जिससे वे खेत काटने से पहले धन प्राप्त कर सकते थे। इस अवस्था में किसान उधार रुपया लेकर पटेल को प्रसन्न रखता था। कभी उपज का कुछ भाग पहले ही पटेल का हो जाता था। क्योंकि पटेल ही किसान को रुपये उधार देता था। अतः जालिमसिंह ने पटेल-व्यवस्था का ही अन्त करने का निश्चय कर लिया। स० १८६७ (ई०स० १८१०) में सब बड़े २ पटेल राज्य द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। उनकी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार कर लिया गया। जमीनों पर राज्य के हवाले स्थापित किये गये। राज्य का हिस्सा सस्ती से वसूल किया जाता था। जो किसान विलम्ब करता उसकी जमीन खालसा करली जाती थी। राज्य की ओर से खेती होने लगी। सन् १८२०-२ में राज्य के द्वारा संचालित ४ लाख बीघा जमीन थी और १६ हजार बैल थे। बैलों की खरोद व बिक्री के लिये नये २ मेले व उत्सव आयोजित किये गये। उपज बढ़ने लगी। प्रति वर्ष

१ ४००० हल ४,००,००० बीघा भूमि जोतते थे। और दूसरी फसल में भी इतनी ही भूमि जोती जाती थी। प्रति बीघा ४ मण अनाज पैदा होता था। इस प्रकार ३२ लाख मण अनाज पैदा होता था। टाड ५० १५६२।



३२ साक्ष मण अन्न पेदा होने लगा। अन्न बचने का अधिकार भी राज्य को था। दुमिख के समय काठारों में मरे हुए अन्न को महंगे भावों पर बेचा जाता था। किसानों और व्यापारियों को व्यक्तिगत रूप से अन्न बेचने पर एक प्रकार का कर देना पड़ता था जिसे कट्टा कहते हैं। सीगोंटी, घोघोटी, बाणी मापो छापो, बेसक कंवरमट आदि कर तो परम्परा से ही चले आ रहे थे। जासिमसिंह द्वारा लगाये गये नये करों में विधग, बगड तूम्या बराड भाङ्गू बराङ्ग चूल्हा बराङ्ग कागली कूलड़ी जागोरदार आदि थे। इनके प्रतिरिक्त पटेलों चोहरों व व्यापारियों की भाय से तिसाला दण्ड के रूप में कर लिया जाता था। इन करों को किस प्रकार एकत्र किया जाता था इनका हिस्साब खाता व सर्च का बटवारा कैसे होता था यह स्पष्ट ज्ञात नहीं है।

प्रायिक मेलों की व्यवस्था—प्रायिक कर सेने की प्रथा के कारण अज्ञाति फैलने लयी और स० १८८० से १८८५ में राज्य के विरुद्ध कई विद्रोह होने लये। जासिमसिंह को इस अप्रियता के विरुद्ध कर-मुक्ति की नीति अपनानी पड़ी। पटेल व पटवारियों को जनता से सव्यवहार करने की हिदायत दी गई। इसका प्रायिक स्थिति पर असर पड़ा। जूवार का भाव बि स १८३८ में साडे तीस द मण था। धान अधिक छो था पर रोगों के पास खरोदने को पैसे नहीं थे। राज्य का कोष मरहठों व समातार मुर्दों के कारण खाली हो रहा था। मरहठों को धन देने के लिये व्यापारियों से ब्याज पर ऋण सेना पड़ता था। प्रायिक स्थिति सुधारने के लिये जासिमसिंह ने पशुओं व साधारण व्यापार के सेसे प्रारम्भ किये। विशपकर उम्मेदगंग और नाता का बुननायजी का मेसा व अजसरापाटन का मेसा प्रारम्भ किया। इन मेलों में आने वाली वस्तुओं पर कर नहीं लिया जाता था। दूर-दूर से व्यापारियों को आने का निमन्त्रण दिया जाता था। अपने आदमियों को डाक द्वारा सूचना भजी जाती थी। यह काम सेठ किशनदास हस्दिया किया करता था।

उम्मेदसिंह का देहान्त—महाराज उम्मेदसिंह ५ वर्ष तक राज्य करके स० १८१७ में मार्गशीर्ष शुक्ला २ दानिवार (ई स० १८१६ की २१ नवम्बर) को एबाणक रामचरण हो गये। उस समय मुसाहिव जासिमसिंह भ्रमसा भ्रमसरा पाटण की छाषमी में रहता था। महाराज की मृत्यु सुन कर वह तुरत फाटा गया और नर्नस टाड को महाराज के देहान्त की सूचना देत हुए यह पत्र लिखा कि महाराज उम्मेदसिंह दानिवार की शाम तक पूणरूप से स्वस्व थे सूर्यास्त के बाद श्रीबजनायजी के मन्दिर में गये और छ. बार दण्डवत की। सातवीं बार दण्डवत करते के लिये भरते ही उनको मूर्छा आ गई और उसी दशा में रात को दो बजे

उनका देहान्त हो गया। यहाँ उनके जेष्ठ राजकुमार किशोरसिंह को गद्दी पर बैठा कर आपको मित्रता के नाते यह सूचना दी है^१। महाराव उम्मेदसिंह के किशोरसिंह, विष्णुसिंह और पृथ्वीसिंह नाम के ३ पुत्र थे।

महाराव किशोरसिंह दूसरा (वि० स० १८७६-१८८४)

इसका जन्म वि० स० १८३६ (ई० स० १७८१) में हुआ था। गद्दी पर बैठने के समय इसकी अवस्था ४० वर्ष की थी^२। सम्वत् १८७६ मार्गशीर्ष सुदि १४ को इसका राज्याभिषेक हुआ। इसके समय में मुसाहिवभाला का पद जालिमसिंह भाला को ही दिया गया था। अंग्रेजी सरकार की गुप्त संधि के अनुसार^३ यह पद भाला वंश का प्रेतृक हो गया था। जालिमसिंह कोटा राज्य का सर्वेसर्वा था। वृद्धावस्था में इसकी नजर अति कमजोर हो गई थी। अतः इसने अपने पुत्र कुवर माधोसिंह भाला को मुसाहिव बना दिया था तथा स्वयं छावनी में रहने लगा था। फिर भी बिना उसकी सलाह से कोई निर्णय या नीति राज्य निश्चित नहीं करता था। महाराव किशोरसिंहजी जालिमसिंह के प्रभाव से मुक्त होकर स्वयं शासक के रूप में राज्य करना चाहता था। परन्तु जालिमसिंह का समर्थक अंग्रेजी सरकार का राजदूत कर्नल टाड था जो कि कोटा-अंग्रेज-संधि के अनुसार जालिमसिंह की स्थिति बनाए रखना चाहता था।



जालिमसिंह के दो पुत्र थे। एक माधोसिंह और दूसरा औरस पुत्र गोवर्धन दास। था माधोसिंह कुछ गर्विला और राजमद में छका हुआ था। उसके और गोवर्धनदास के बीच में अनवरण थी^४। इससे गोवर्धनदास महाराव से जा मिला।

१ कर्नल टाड की यह सूचना उस समय प्राप्त हुई जब वह मारवाड से मेवाड जा रहा था। उदयपुर कुछ दिन ठहर कर वह कोटा पहुँचा जहाँ गद्दी के लिये युद्ध की सभावना थी। टाड राजस्थान, तृतीय भाग, पृ० १५८५ व फुटनोट में पत्र का उल्लेख है।

२ राजकुमार के रूप में किशोरसिंह अधिक उदार प्रवृत्ति का था। अधिकतर समय इसका एकान्त में बीतने के कारण धार्मिक प्रवृत्ति अधिक थी। अपने कुटुम्ब पर इसे गर्व था जिसे जागृत करने पर यह जालिमसिंह से लड़ पड़ा।

३ २१ मार्च १८१८।

४ गोवर्धनदास तथा पृथ्वीसिंह (महाराव किशोरसिंह का छोटा भाई) में घनिष्टता थी जिसे माधोसिंह पसन्द नहीं करता था। एक बार माधोसिंह ने गोवर्धनदास को गिरफ्तार करके हवालात में भी रखवा दिया था जिसे दोनो भाइयों की शत्रुता बढ़ गई। टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५८४।

महाराज का दूसरा भाई विष्णुसिंह तो जामिनिसिंह से मिल चुका था और सबसे छोटा भाई पृथ्वीसिंह महाराज की तरफ रहा। उस समय महाराज ने एक ससीता पोसिटिक्स एन्ड टर्नस टाड को लिख भेजा कि जब प्रहमबनामे में यह शर्त है कि महाराज और उसके वधधर उत्तराधिकारी अपने मूलक के पूरे मानिक होंगे फिर उसके विरुद्ध कार्यवाही क्यों होती है? इस पत्र ने अग्नि में प्राहुति का काम किया और विरोध अधिक बढ़ गया। तब कर्नस टाड जो जामिनिसिंह भ्रमसा का मित्र था कोटा आया^१। उसने महाराज को समझाने का प्रयत्न किया तथा गोवर्धनदास व महाराज पृथ्वीसिंह को कोटा से निकाल देने की सलाह दी। मगर उन्होंने एक न मानी। बात यहाँ तक बढ़ गई कि गोवर्धनदास ने गुस्से में आकर ससवार की मूठ पर हाथ डाला कि कर्नस टाड ने शान्ति और भेष द्वारा काम समाप्त करने का सोचा। टाड के इस व्यवहार को युद्ध का सम्यक्ष समझा गया। महाराज और उनके साथी जो किसे में युस कर सामना करने की तयारी करते रहे। कर्नस टाड को जामिनिसिंह के अधिकार सुरक्षित करने थे। उसने किसे का घेरा डलवा दिया। तब आकर महाराज अपने ५०० साथियों सहित ब्रवमाय की मूर्ति लेकर नक्कारा बजाते हुए फौज के बीच में से होकर निकल पला गया^२। जब इसका पता टाड को लगा तो उसे भय हुआ कि महाराज किसे के बाहर रह कर फिसाव करेगा। उसने जामिनिसिंह से सलाह ली जामिनिसिंह ने अपनी स्वामी भक्ति का परिचय देते हुए महाराज को लौटा लेन तथा उसकी पुनः किसे में रखने की कोशिश की^३। माधोसिंह का दृष्टिकोण महाराज की ओर अधिक

१ महाराज मद्यपि शान्त प्रवृत्ति का था पर उसका भाई पृथ्वीसिंह तथा गोवर्धनदास महाराज को व कोटा की बनवा का जामिनिसिंह व माधोसिंह के निरंकुश आत्याचारी आसन से युद्ध करना चाहते थे। अतः उन्होंने महाराज को स्वच्छन्द-रूप से आसन करने की सलाह दी।

२ वास्तव में संवत् १८१६ की संधि को मान्यता न देने का था जो कि महाराज को मामूम नहीं थी।

३ कालींते के उत्तर में लिखा "महाराज नाम मान के सासक हैं" कोटा राज्य का मासिक सासक जामिनिसिंह है न कि महाराज"। टाड राजस्वाम जिल्द ३ पृ १२६।

४ टाड राजस्वाम जिल्द ३ पृ १२६।

५ "यह अपने स्वामी के बरतों की सेवा में रहना चाहता है। यह नामवाच्य आकर मजबूर बनना बर्दाश्त करने न कि मासिक के साथ विद्रोह करके अपना मुद्द कासा करेगा। जामिनिसिंह। टाड राजस्वाम जिल्द ३ पृ १२६१।

भूलकता था^१ । कर्नल टाड घोड़े पर सवार होकर उस तरफ चला जिधर महाराव गया हुआ था । महाराव ने रगवाड़ी में अपना डेरा स्थापित किया था । बिना सूचना दिये कर्नल टाड रगवाड़ी जा पहुँचा । उस समय महाराव के साथ मलाहकार के रूप में गोवर्धनदास भाला तथा महाराज पृथ्वीसिंह थे । कर्नल टाड ने यह स्पष्ट किया कि अंग्रेजी सरकार आपकी इज्जत और मर्तव्य का बहुत ख्याल रखती है परन्तु १८१८ ई० को कोटा-अंग्रेज सन्धि में जालिमसिंह के प्रति जो शर्तें हो चुकी हैं वे किसी दशा में रद्द नहीं की जा सकती हैं । महाराव और जालिमसिंह के इस झगड़े को सुलह में परिवर्तित करने में कर्नल टाड का मुख्य हाथ था । अपने सलाहकारों की राय न होते हुए भी महाराव टाड के साथ पुन किले में चले गये । जालिमसिंह ने चरण छुकर नजर दी और माधोसिंह भाला ने तलवार बाँधने की रस्म अदा कर नजर न्यौछावर की^२ । गोवर्धनदास को पेशान देकर सदा के लिये कोटा से निर्वासित कर उसे देहली भेज दिया^३ ।

यह शान्ति अल्पकालीन ही रही । सम्वत् १८७७ (ई० स० १८२०) में राज्य की सेना के कुछ अधिकारियों से मिल कर महाराव ने किले पर पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया^४ । उम वक्त जालिमसिंह ने किला घेर कर गोलें चलाने आरम्भ किये । महाराव किला छोड़ कर कोटे से बिना मवारी और बिना नौकरों के पैदल ही अपने भाई पृथ्वीसिंह सहित पोप वदि ३ (ता २२ दिसम्बर १८२०) को बून्दी चले गये । वहा रावराजा विष्णुसिंह ने पहिले तो उनका बडा आदर-सत्कार किया परन्तु जालिमसिंह के दवाव व अंग्रेजी सरकार की

१ वातचीत के दौरान में दोनों दल इतने गर्म हो गये कि गोवर्धनदास ने तलवार की मूठ पर हाथ रखा कि कर्नल टाड को ही समाप्त कर दिया जाये पर सरदारों ने बीच-बचाव कर शान्ति की । उपरोक्त

२ किशोरसिंह का दूसरी बार राज्याभिषेक हुआ । कर्नल टाड की उपस्थिति में इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने देशी नरेशों को जब तक शासक स्वीकार करना स्थगित कर दिया जब तक उनका प्रतिनिधि राज्याभिषेक में शरीक न हो । यह परम्परा प्रारम्भ हुई । महाराव ने १०१ मोहूर गवर्नर जनरल को नजर की और गवर्नर जनरल ने एक खिलमत भेजा । टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५६३ ।

३ उपरोक्त पृ० १५६५ ।

४ गोवर्धनदास दिल्ली में रहने लगा । थोड़े समय बाद वह भाबूआ शादी करने गया और वहा से वह महाराव को पत्र-व्यवहार करने लगा । एक बार वह पुन अपने पिता और भाई से बदला लेना चाहता था । इस पर जालिमसिंह ने किले पर निगरानी रखनी शुरू कर दी । महाराव सेफअली से सहायता प्राप्त कर किले में युद्ध की तैयारी करने लगा । टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५६६, वशाभास्कर, चतुर्थ भाग, पृ० ४०२१ ।

समय के कारण महाराज किछोरसिंह को अधिक दिनों तक शरण न दे सका। महाराज बूंदी से देहली पहुँचा। वहाँ अंग्रेजी सरकार के उच्चाधिकारियों से मिल कर स्थिति को साफ करवाना चाहा परन्तु वहाँ पर भी उसे कोई सहारा प्राप्त न हुआ। तब वह मथुरा-बृन्दावन चला गया। महाराज की यह दशा देख कर राजपूताने के कई राजा उससे सहानुभूति रखने लगे।

बृन्दावन में अर्ध स सग भाकर महाराज हाडोती को सरफ १८२१ ई में रवाना हुआ। हाडोती के बहुत से जागीरदार और हाडा सरदार लगभग तीन हजार हाडा राजपूतों के साथ महाराज की सहायता के लिये उपस्थित हुए और ये सब सीधे कोट के बिल में प्रविष्ट हुए। १६ सितम्बर १८२१ में महाराज ने पोलिटिकल एजन्ट को सूचना दी कि मामा जालिमसिंह का तो मुझ भरोसा है। वह अपनी मृत्युपर्यन्त राज्य का काम किया कर परन्तु माधोसिंह से मेरी नहीं बनती है इसलिये उसको बुदा जागीर देवी जावगी और उसका पुत्र वापुसान (मदनसिंह) मेरे साथ रहेगा। सेना तथा खजाना आदि मेरे हाथ में रहेंगे। इस पत्र में लिखी हुई बातें कर्नल टाड ने स्वीकार नहीं की। एक बार पुन किछोरसिंह को अंग्रेजों की पूर्ण मातहत में रहने का और माधोसिंह को जालिमसिंह के कहने के अनुसार बसने का आदेश दिया गया परन्तु महाराज को जो नई शक्ति राजपूताने के शासकों व हाडा सरदारों से प्राप्त हो रही थी उसके आघार पर उसने अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रखने का प्रयास किया। अंग्रेजों को यह बन्ध सहन ही सकता था। कर्नल टाड ने अंग्रेजी सरकार से फौजें मंगवाई और जालिमसिंह को साथ लेकर वह कोटा गया। नदी में बाढ़ आ जाने के कारण काशीसिन्ध के बिनारे कई दिन तक उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। इस बीच में कर्नल टाड ने महाराज को पुन इस बात पर राजी बनने को तयार किया कि जालिमसिंह व माधोसिंह से झगड़ा नहीं किया जावे। महाराज का यही उत्तर मिला प्रविष्टा बिना जीवन और अधिकार के बिना मानिक कहमाने में कोई महारथ नहीं है। इसलिए मैंने अपने पिता पितामहों को तरह राज्य करना या मर मिटना ही निश्चय किया है। उम समय जालिमसिंह ने चाहा कि सरकारी सेना ही महाराज से युद्ध करे और वह स्वयं युद्ध में प्रविष्ट न हो जिससे कोरा मरेगा व बिच्छू हुरामगारी बनने का कर्मक तो म सग सखिन कर्नल टाड ने इस बात

१ टाड सिन्ध १ नू १३१८-१८।

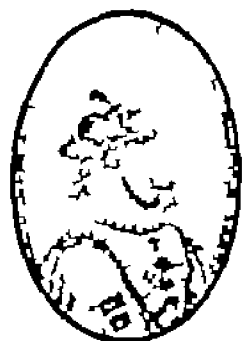
२ उपरोक्त नू १३११ पटनो- यह वन किछोरसिंह ने दिली जागीर बंधमी १८२८ १६ सितम्बर १८२२ को लिखा।

३ टाड राजस्थान सिन्ध १ नू १६ १।

पर अधिक दबाव डाला कि या तो महाराव के प्रति राज्य-भक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है या अपने अधिकार ही सुरक्षित रखे जा सकते हैं। जालिमसिंह ने अपने अधिकारों को सुरक्षित बनाए रखना ज्यादा उचित समझा और महाराव के विरुद्ध युद्ध के लिये तैयार हो गया।

महाराव के पास ७-८ हजार सेना ग्रामीण-हाडा-राजपूतों की थी पर उनके पास तोपखाने की कमी थी। उधर दीवान जालिमसिंह भाला के पास उसकी आठ पल्टनें, चौदह रिसाले, और ३२ तोपे थी। इसके अलावा जालिमसिंह की सहायता के लिये दाहिनी तरफ अंग्रेजों की ओर से एम मिलन की अध्यक्षता में २ पल्टनें, ६ रिसाले और एक बड़ा तोपखाना था। नदी के उस पार महाराव की फोज थी। अंग्रेजी फोज आगे बढ़ी चली गई। इस फोज और महाराव की फोज के बीच सिर्फ २०० गज का फासला रह गया। उस समय भी आगे बढ़ कर कर्नल टाड ने महाराव को सुलह कर लेने के लिये समझाया परन्तु महाराव युद्ध करना अधिक पसंद करते थे। टाड ने पौन घंटे की मोहलत दी। यह समय व्यतीत होने पर युद्ध आरम्भ हुआ। अंग्रेजी तोपे आगे उगलने लगी। महाराव के हाडों ने भी अपनी वश परम्परागत बहादुरी व रण-कौशल का परिचय देना आरम्भ किया। महाराव के साथियों ने हमला करके तोपखाने को छीनना चाहा और कई राजपूत तोपों के मुह तक पहुँच कर मारे गये। यदि उस समय अंग्रेजी रिसाले का धावा उन पर न होता तो वे अवश्य फोजदार जालिमसिंह भाला को नीचा दिखा देते। परन्तु उनके भाग्य में पराजय लिखी थी। सैकड़ों वीर हाडा खेत रहे। महाराव जल्दी से नदी उतर कर ५ कोस दूर जा ठहरे। अंग्रेजी फोज ने पीछा किया और रिसाले का पुनः हमला आरम्भ हुआ। इस बार अंग्रेजी सेनापति को विश्वास हो गया कि महाराव की फोज भाग जावेगी परन्तु राजपूत लोग लोहे की लाट की तरह मैदान में डटे रहे व दुश्मनों को पास आने दिया और फिर एक एक कर उन पर टूट पड़े। इस द्वन्द्व युद्ध में कोयला के जागीरदार राजसिंह और गेंता के कुवर बलभद्रसिंह व सलावतसिंह तथा उसके चाचा दयानाथ, हरीगढ के चन्द्रावत अमरसिंह और उसके छोटे भाई दुर्जनसाल आदि ने जिस वीरता का प्रदर्शन किया उससे अंग्रेजी फोज के पैर उखड़ने लगे। ठाकुर राजसिंह ने लेफ्टीनेंट क्लार्क और कुवर बलभद्रसिंह ने लेफ्टीनेंट रीड का काम तमाम कर दिया। उनका बड़ा अफसर लेफ्टीनेंट कर्नल जेरिज युद्ध-क्षेत्र में घायल

महाराज रामसिंह (बूसरा) (वि० स० १८८४-१९२२)



इसका जन्म वि स० १८६५ (ई स० १८७८) में हुआ था। यह महाराज किशोरसिंह के लघु भ्राता महाराज पृथ्वीसिंह का पुत्र था। किशोरसिंह के कोई पुत्र नहीं होने के कारण अपने बाद रामसिंह को उत्तराधिकारी घोषित किया। इसका राज्याभिषेक स० १८८४ (ई स० १८२७) में हुआ था। इसका शासन प्रारम्भ में शांति व अल्प राज्यों से मित्रता का काल था। स० १८८८ (ई स १८३१)

में अपने मुसाहिब अहिंद अजमेर सार्ज विनियम बटिंग से मिले। उस समय इसको भवर इनायत हुआ। माधोसिंह अपनी पिछली बरतूतों के प्रायश्चित्त के रूप में इसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास करता था, परन्तु स० १८९० (ई० स० १८३३) में मुसाहिब आसा माधोसिंह का देहान्त हो गया। अंग्रेजों के साथ

घापस में युद्ध कर रहे थे) मित्रता बनाये रखना अंग्रेजों की बड़ती हुई शक्ति को कोटा के पक्ष की ओर बमाला सही व्यक्ति का काम हो सकता है। वह एक बोम्ब सेनापति तथा साहसी सिपाही था। युद्ध क्षेत्र में प्रथम पक्ति में लड़ना तथा हारे हुए युद्ध को विजय में बदलना यह उसकी विशेषता थी। अपनी राजनीति की सफलता के लिये मित्रता को भी वह ठकरा सकता था। अन्धकारी इंगले उसकी इस नीति का शिकार था। अपने पुत्र मोर्षनराव को जिसे कि वह अत्यन्त प्यार करता था। अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखने के लिये उसने उसका बेटा त्याग करवाया। बेटे की परिस्थितियों का उसे सही ज्ञान था। कोटा को कभी अपने पेशवा सिधिया अंग्रेज और पिढारियों की उत्सम्भों में इतना नहीं खँसने दिया कि वह उसे न बना सके। उसमें अतियोचित धीरता थी और मरहूटो की सी नीति। विजय पराजय दोनों का वह नाम उठाना जानता था।

वह एक उच्च कोटि का प्रशासक था। उसके सैनिक-मुबार भूमि-अर्बभ राजकीय खेती प्रणाली कर व्यवस्था धार्मिक सर्व-व्यवस्था से भिन्नती मुमती है, परन्तु उस युग में यह मुबार जनप्रिय न हो सके। क्योंकि वह बारम्बार समय से प्रागे की थी। जन-अस्वास्थ्य कामिमिह का अरोप्य नहीं था। वह शिर्ष इन सामनो द्वारा अपनी शक्ति का प्रत्यक्ष करना और अपना प्रभाव विस्तार करना चाहता था। बड़ी पहला राजस्वानी का जिसे राजस्वान के द्वार अंग्रेजों के लिये खोल दिये। अंग्रेजों ने भी उसकी स्थिति मजबूत बनाने का अत्यन्त प्रयत्न किया।

१ इसके नाम में प्रथम बार अंग्रेज सरकार के मन्त्र अजरल ने राजस्वान व हैपी रिबासियों के माताओं से मुनाबतली की। अजमेर में वह उन अंग्रेजों से मिल कर अंग्रेजी सत्ता के प्रति अप्यारा इन अंग्रेजों द्वारा इन्हें धार्मिक धानि बनाए गये में मरद का मास्वा लन दिया। सन् १८३४ में अशराला अजमेर कोटा प्राये। इन प्रकार राज्यों के अंग्रेजों की विजय प्रया अत्यन्त हुई जिनके धानि और मित्रता बनी रहे।



जी हुई गुप्त सधि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिव पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ में तो दोनों युवक शासनकर्ताओं में बनी रही परन्तु धीरे-धीरे २ दोनों की शत्रुता इतनी बढ़ गई कि कोटा का विभाजन करना पड़ा।

मदनसिंह जब किले में प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगावाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतों से महाराव और उसमें गहरी अनबन हो गई। कोटा की प्रजा भाला मदनसिंह मुसाहिव आला को नहीं चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था में अंग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मंत्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह भाला को कोटा की पैतृक मुसाहिवी से त्याग पत्र देना पड़ा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश में १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी^२। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह भाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम भालावाड रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह भाला को स्वीकार कर लिया गया^३। कोटा की खिराज में से ८० हजार रु. सालाना घटा कर भालावाड की तरफ जोड़े गये। एक नयी सरकारी

१ मदनसिंह भाला की कई अन्य हरकतों को महाराव पसन्द नहीं करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहनशील, क्षीघ्रगामी और स्वतंत्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओं का वह पालन नहीं करने लगा। गढ़ में उसका जन्म-दिवस धूमधाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओं पर नरेशों की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा, अंग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति भाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अतः महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अंग्रेजों से कोटा कान्टोनमेंट का निर्माण-कोण कोष से कर दिया। यह भी अनबन का एक कारण था।

२ उन परगनों में चौमहला व साहवाड के परगने भाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य में मिलाए थे। इनकी आमदनी पाच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चैचट, सकेत, आवर, डग, गगराड, भालरापाटन, शीववा, बफानी, बाहलनपुर, कोटडा, भाजन सरडा, रटलाई, मनोहर-पाना, फूलबहादे, चाचोरोनी, गुजारी, छीपावडोड, साहवाड। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५६६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैशाख शुक्ला ३, सम्बत् १८६४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशों को राजराणा की उपाधि से विभूषित किया जाता है जो कि भाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओं के बदले दी थी। भालावाड को छावनी या वृजनगर भी कहा जाता है।

होकर गिर पड़ा^१। विजय महाराज को सेहरा बाँध रही थी। इस स्थिति का लाभ उठा कर महाराज काटा गुप्त रूप से लौट जाना चाहता था। वह एक मक्का के बत्त की घोट लेकर निकल गया परन्तु इस तरह रण-क्षेत्र से भाग जाने में अपने ब्रह्म की कसक भगने का त्याग कर महाराज का छोटा भाई पृथ्वीसिंह लौट पड़ा। उसने राजगढ़ के आगीरदार इबसिह घादि २५ राजपूत वीरों के साथ दूसरी तरफ से विमान जासिमसिंह पर आक्रमण कर दिया। इस मकसद जासिमसिंह के पास ३०० मिपाही थे। २५ वीरों के युद्ध क्रोधसे जासिमसिंह की सेना में हड़बड़ाहट तो फल गई परन्तु वे कहीं तक सड़ते। उनके सामी मारे गये। देवसिंह घायल हुआ। महाराज पृथ्वीसिंह भी घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। उसकी पीठ में एक रिमानदार के हारम का बर्छा लगा। वह एक खेत में बाद में पड़ा मिला। टाढ़ उसको पासकी में सिटा कर अपने डर तक लाया और बड़ी हिकाजत के साथ दस्ताज करना शुरू किया परन्तु वह दूसरे दिन ही मर गया^२ मरस समय भी उस वीर राजपूत ने हिम्मत न हारी। उसकी तसवार तथा घंगूड़ी तो कोई ले गया था परन्तु मरा दस कठमासा और दूसरा खबर जो वह पहने हुए था वे सब ऐजेंट को दते हुए कहा कि "मरा पुत्र घापने भरोसे है"। कलकटाट ने "म युद्ध में प्रदक्षित हाड़ा राजपूतों की वीरता का सर्वश्रेणीय धर्मों में उत्तमस मिया है। यह घमासान युद्ध राजधानी कोटा से ५ मील उत्तर पूर्व पालमवा के तट पर गाँव मांगराल में बि सं० १८७१ घादिवन सुनि ५ सोमवार (ई ग १८२१ १ अक्टूबर) को हुआ था। इसमें विजय फौजदार जासिमसिंह भाला को ही मिला।

फिर महाराज विजोरसिंह किसी तरह रणक्षेत्र में निकल कर पावती नदी की पार कर गया म हाथ हुए गाढ़ा के ठिकाने गिरपुर बडाट की तरफ चला गया। बड़ी से मापडागा (मवाड़) गया जहाँ उसने कोटा राज्य की भयबान धोनापत्रो के साथ पर दर्पण कर दिया। परा बागल दे रि दूसरी आगाय के निवा घब लन ७ १ बागिन नापगारे को का। म उम भेंट के लपत्र में निवा आना है। विजय के बाग बनन टाड म जासिमसिंह ने विराधी पन मानों के प्रति उ आया। मीनि घटना^३। महाराज के पना याया का लामा प्र ११ को

१ टाड ५ १६ ३।

२ क बागल दे रि बागल ५ रीनिह का प्रव टाड के पना के भाया तथा ला जासिमसिंह के उतक कायो के विन का वीर बडगा री को विजय के भी घटी बर गया। पर टाड का १।७३ क न वीर व

३ पका ३६ अदुपे लान ५ १६ ११ ३।

गई और उन्हें पुन उनकी जागीरें दे दी गईं । हाडो ने इसे स्वीकार किया और वे अपनी २ जागीरो मे चले गये । महाराव किशोरसिंह और जालिमसिंह भाला के बीच मे समझौता कराने का कार्य उदयपुर के महाराणा भीमसिंह न किया था^१ । यह समझौता २२ नवम्बर १८२१ मे हुआ । इस समझौते के अनुसार महाराव का खास खर्च महाराणा उदयपुर के बराबर कर दिया गया और महाराव के निजी कामो मे दिवान और दिवान के रियामती कामो मे महाराव का हस्तक्षेप नही करने का समझौता हुआ^२ । महाराव कर्नल टाड के साथ पोप वदि ६ ता० ३१ दिसम्बर को वापस कोटा आया^३ । इसके २ वर्ष बाद वि० स० १८८० जण्ट सुदि ८ (ई० म० १८२४ ता० १५ जून) को ८५ वर्ष की आयु मे मृमाहिव जालिमसिंह का स्वर्गवाम हुआ और उसका पुत्र माधोसिंह भाला राज्य का दीवान व फौजदार बना । यह अपने पिता के काल मे ही कोटा राज्य का सब प्रकार का प्रवध करता था परन्तु महाराव से जो पिछली नाराजगी हुई उम विषय मे जालिमसिंह ने माधोसिंह को बहुत झिडकिया दी और कहा कि यह सब उपद्रव तेरी खराब आदतो के कारण हुआ है । इसी शर्म से माधोसिंह ने अपनी आयुभर महाराव को हर प्रकार से प्रसन्न रखा^४ । वि०स० १८२४ आषाढ सुदि ८ (ई० स० १८२८ ता २२ अगस्त) को महाराव किशोरसिंह भी परलोक सिधारे । उमके कोई पुत्र नही था । असली हकदार उसका छोटा भाई अणता का महाराज विष्णुसिंह था पर महाराव ने अपने तीसरे भाई महाराज पृथ्वीसिंह के पुत्र रामसिंह को युवराज बनाया, अत रामसिंह ही उत्तराधिकारी हुआ । इसका एक यह भी कारण था कि विष्णुसिंह ने फौजदार जालिमसिंह भाला का पक्ष लिया था^५ ।

१ भीमसिंह किशोरसिंह की बहन से शादी कर चुका था, अत ऐसी अवस्था मे मध्यस्थ बनना पडा ।

२ टाड जिल्द ३, पृ० १६०६ ।

३ महाराव इस विश्वास पर कोटा पुन लौटा कि उमके प्रति विश्वासघात न हो और अग्रेजी सरकार इस बात की जिम्मेदारी ल ।

४ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० ५८० ।

५ जालिमसिंह का चरित्र —

१८ वी शताब्दी के अन्तिम चरण और १९ वी शताब्दी के प्रथम चरण मे राजपूताने के प्रमुख राजनीतिज्ञ के रूप मे जालिमसिंह भाला हमारे समक्ष उपस्थित होता है । उसने अपनी योजता, नीतिज्ञता, वीरता और क्षमता के बल पर ही यह उच्च पद प्राप्त किया । वह उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ था । कोटा के महारावो के प्रति भक्त होते हुए भी वह अपनी स्थिति मजबूत बनाये रखना चाहता था । एक ही वार होल्कर और अग्रेजो ने (जो



महाराज रामसिंह (कुतरा) (वि० म० १८८४-१९२२)



जन्म वि सं १८६५ (ई० स० १८७८) में हुआ था। यह महाराज बिचोरसिंह के लघु भ्राता महाराज पूर्वोक्तसिंह का पुत्र था। बिचोरसिंह के कोई पुत्र नहीं होने के कारण अपने भाए रामसिंह का उत्तराधिकारी घोषित किया। इसका शासन प्रारम्भ में दार्जिलिङ्ग राज्य राज्यों में मित्रता का बान था। सँ १८८८ (ई० म १८९१)

में अपने मुगलसिंह महिन अजमेर लाह विमियम ब्रिटिश से मिले। उग समय हमको शरर बनायन हुआ। माधोसिंह अपनी विद्युती बरसूती के प्रायद्विषय कल्प में उग हर प्रकार म प्रमत्न रागने का प्रयास करता था परन्तु स० १८९० (ई० म० १८९३) में मुगलसिंह भामा माधोसिंह का दहाम्न हो गया। चंयकों के साथ चरम म यदु बर रहे थे। मित्रता बनाय रगता चपकों की बहनी हुई शक्ति का बोटा के पत्र की धार बनाया उमो शक्ति का बाम हा गकना है। यह एक साध्य गनारति तथा साहसी विरागी था। स० स० में प्रथम बलि में मरना तथा शारे हुए मउ की विजय में ब जता यह उमो विद्वेगता को। पानी शरनीति को गनरता क विम मित्रता का भी बर उदरा सकना था। सावारी ईगम उगकी उग नीति का सिचार था। अपने पुत्र गोपंनराग को बिके दि बर साप्यन प्या करता था। पानी शक्ति अरबन बनाये रागने के विधि उगने उगका देय। शरर काबाबा। देय की शक्तिविधि का उमे की ज्ञान था। बोटा को बभी अपने पैयवा निधिवा उदर छोरे। शक्ति को उगमनों में हुना मदी केंबने शिवा दि बह उमे म बका मर। उगम काय विन बीरता को छोरे बाहरी की की नीति। विजय व। उग दोमों का यह नाम उ। सा का ग का।

उर उर उ। य का। का बलामरु का। उगर गीनिबन्धपाए मदि बरुव साखीर मनी उगनी का चपकना साप्यनक चरु पाव का के मित्रनी बानी है। य म्नु उग कुन के बर साप्यन उगविउ म शो मने। उमो उ उद साप्यनका ममर के चाने की की। उगमराग का मर का उदरेक मरी था। यह मिरुं हर लावनी उ। पानी शक्ति का मयन बरना को उर। उग व दि लावना काउता था। करी बरता। उरपायी का शिको साप्यन के उग। उ। मी के। ब लाव वि। उर। मी के। य। वि। मरबन बनाये का अरिउर बरना वि।

की हुई गुप्त सन्धि (मार्च १८२१) के अनुसार मुसाहिव पद पर माधोसिंह का पुत्र मदनसिंह नियुक्त किया गया। प्रारम्भ में तो दोनों युवक शासनकर्ताओं में बनी रही परन्तु धीरे-धीरे दोनो की शत्रुता इतनी बढ़ गई कि कोटा का विभाजन करना पडा।

मदनसिंह जब किले में प्रवेश करता तो महाराव की तरह तोपें दगवाता था। यह इज्जत शक्ति का प्रदर्शन समझी जाती थी। ऐसी ही कई हरकतों से^१ महाराव और उसमें गहरी अनबन हो गई। कोटा की प्रजा भाला मदनसिंह मुसाहिव वाला को नहीं चाहती थी। आम विद्रोह होने का भय हो गया। ऐसी अवस्था में अंग्रेजी सरकार ने मध्यस्थता द्वारा प्रधान मंत्री व शासक के बीच समझौता करा दिया जिससे मदनसिंह भाला को कोटा की पैतृक मुसाहिबी से त्याग पत्र देना पडा। उसके स्थान पर उसे कोटा राज्य की एक तिहाई आमदनी का भाग दिया गया। इस प्रदेश में १७ परगने थे और वार्षिक आमदनी १२ लाख रु. थी^२। अंग्रेजी सरकार ने मदनसिंह भाला से एक प्रथम सन्धि करली जिसके अनुसार इस भाग (जिसका नाम भालावाड रखा गया) का स्वतंत्र शासक मदनसिंह भाला को स्वीकार कर लिया गया^३। कोटा की खिराज में से ८० हजार रु. सालाना घटा कर भालावाड की तरफ जोड़े गये। एक नयी सरकारी

१ मदनसिंह भाला की कई अन्य हरकतों को महाराव पसन्द नहीं करते थे। मदनसिंह स्वभाव से ही उदण्ड, असहृणशील, शीघ्रगामी और स्वतंत्र प्रकृति का था। रामसिंह की आज्ञाओं का वह पालन नहीं करने लगा। गढ में उसका जन्म-दिवस वूमघाम से मनाया जाता था। राजाज्ञाओं पर नरेशों की तरह उसका नाम भी लिखा जाने लगा, अंग्रेजी राज्य की पूर्ण शक्ति भाला के पीछे होने पर महाराव सिर्फ नाम मात्र के शासक थे। अतः महाराव उससे अधिक नाराज हो गये। मदनसिंह ने अंग्रेजों से कोटा कान्टीनजेंट का निर्माण-कोण कोष से कर दिया। यह भी अनबन का एक कारण था।

२ उन परगनों में चौमहला व शाहवाड के परगने भाला जालिमसिंह ने कोटा राज्य में मिलाए थे।^१ इनकी आमदनी पाच लाख ही थी। परन्तु मदनसिंह ने १७ परगने लिए व १२ लाख के स्थान पर १७ लाख की आय के परगने लिये। चैचट, सकेत, आवर, डग, गगराड, भालरापाटन, रींधवा, बफानी, बाहलनपुर, कोटडा, भाजन, सरडा, रटलाई, मनोहर-पाना, फूलवाडा, चाचोरोनी, गुजारी, छीपावडोद, शाहवाड। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास २, पृ० ५६६।

३ इस राज्य की निर्माण तिथि वैसाख शुक्ला ३, सम्बत् १८६४ (सन् १८३७) की है। इसके नरेशों को राजराणा की उपाधि से विभूषित किया जाता है जो कि भाला जालिमसिंह को महाराणा उदयपुर श्री अरिसिंह ने उसके प्रति की गई सेवाओं के बदले दी थी। भालावाड को छावनी या वृजनगर भी कहा जाता है।

फौज कोटा के सिधे तयार की गई। उसका खर्च ३ लाख रु वार्षिक कोटा से सिमा जाना तय हुआ। महाराज रामसिंह ने जब इसका कड़ा विरोध किया तो स० १६०० (ई स १८४३) में महारकम घटा कर २ लाख रु करदी गई। यह सेना कोटा कान्टिन्जेंट कहलाती थी और इसका मुख्य स्थान छावनी कोटा से एक मील दूरी पर रामचन्द्रपुरा नामक गाँव में रखा गया।

सन्वत् १६१४ (सम् १८५७ की मई १०) को उत्तरी भारत में अंग्रजों के विरुद्ध भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया। उस समय नीमच में भार लोभ सैनिकों के विद्रोह का भय था। तब मराठों कोटा और बूंदो राज्यों की सेनायें वहाँ पर अंग्रजी सरकार की सहायता के लिये पहुँची। हाइली का पोसिटिवस एक्ट मेजर ब्रिटन भी कोटा से सेना लेकर नीमच पहुँचा। नीमच के विद्रोहियों को दबा कर तीन सप्ताह बाद १२ अक्टूबर १८५७ को कोटा लौटा। अपना कुटुम्ब नीमच के अंग्रेजों के मरोसे छोड़ कर महाराज से मिलने आया। १३ अक्टूबर को ब्रिटन की महाराज से मुलाकात हुई जिसमें कोटा विद्रोही आंग्रियों व अफ़सियों को दण्ड देने (मृत्यु दण्ड या निर्वासित) का आदेश महाराज को दिया गया। जब सामता को यह भासूम हुआ तो वे और उनके सिपाही अंग्रेजों सत्ता के विद्रोही होकर रेजिडेंसी हाँस्वीटल पर हमला कर बैठे। सर्जन सेडनर और डाक्ट सबिक मार डाले गए। फिर रेजिडेंसी पर हमला कर मेजर ब्रिटन और उसके दो पुत्रों को भी उसके साथ वे तलवार के घाट उतार दिये गए। राजकीय सेना के नायक जयदयाल और महाराजसाँ ने विद्रोहियों से मिल कर महाराज रामसिंह को भी बँध कर लिया। कोटा महाराज ने ऐसी स्थिति में गुप्त रूप से पत्र भेज कर करौली राज्य से सहायता प्राप्त की। करौली की सेना ने पहुँच कर विद्रोही सेना से महाराज को मुक्त कराराया। किन्ता महल व घामे

१ विस्तृत विवरण के लिये देखो—कोरेण्डा हिस्ट्री ऑफ़ द इन्डियन म्यूटिनी बिस्व ३ पृ २२२ २२६।

२ गुप्त रूप से महाराजा सरीता भेज कर मिल-जुल खातों से सहायता रसवाता जा। एक छोटी जयदयाल के हाथ पड़ गया जिससे अंग्रेज सैनिकों का बुरा हाल किया। कई ठाण्डों ने विद्रोह कर भरपूर पैसा पसखा बाकि ठाण्डों ने गुप्त रूप से महाराजा के पास सैनिक बँधने मुक्त लिये की सहायता १५ तक पहुँच गये थे। अंग्रेजी सरकार को सहायता के लिये गरीबे लिये गये। यह कार्य महाराज सभियों को गीता गया।

३ करौली के महाराजा अरजसिंह रामसिंह के सहाय थे। रामसिंह के पुत्र राज ठाल की पत्नी करौली राजकुमारी से हुई थी। यह सम्बन्ध इन समय नाम में आया। जयजय १५ सैनिक महाराजा ने भेजे थे। इनके बापक ठाण्ड नामूचचामरी और विजयराजरी थे।

शहर और नदी के घाट पुन महाराव के अधिकार में आ गए^१। इसी बीच में नसीराबाद की अंग्रेजी छावनी से अंग्रेजी सेना लेकर राबर्ट ता० २२ मार्च १८५८ को कोटा पहुँचा। करौली और अंग्रेजी सेना ने मिल कर कोटा विद्रोहियों के विरुद्ध २६ मार्च से गोलाबारी शुरू कर दी। विद्रोही कोटा छोड़ कर भाग गए। उनकी ५० तोपें छीन ली गई^२। महाराव के राज्य में पूरा अधिकार और शान्ति स्थापित कर अंग्रेजी सेना वापिस नसीराबाद चली गई।

अंग्रेज सरकार ने यद्यपि महाराव रामसिंह को निर्दोष समझा^३। परन्तु उन्होंने विद्रोह को मिटाने और सरकारी अफसरो को बचाने की पूरी कोशिश नहीं की थी इसलिये सरकार ने अप्रसन्न होकर महाराव की सलामी के लिये १७ तोपों के स्थान पर घटा कर १३ तोपें कर दी^४। सम्बत् १६२३ में अन्य नरेशों की तरह इसे भी गोद लेने की सनद अंग्रेजी सरकार द्वारा प्राप्त हुई। इसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले ही कोटा का राज्य-प्रबंध बिगड़ चला था और मनमानी करने वाले मेमियों की कार्यवाहियों से राज्य पर २७ लाख रुपये का कर्ज बढ़ गया था।

३८ वर्ष राज्य करके ६४ वर्ष की आयु में सम्बत् १६२३ चैत्र सुदि ११ (ई० स० १८६६, २७ मार्च) को महाराव रामसिंह का स्वर्गवास हुआ। इसकी एक शादी उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह की बहिन से हुई थी। ऐसे समय में महाराणा ने इससे यह शर्त लिखवाई थी कि उदयपुरी रानी से उत्पन्न

१ कहा जाता है, महाराव ने विद्रोहियों से सुलह करनी चाही। कुछ दिनों के लिये अल्पकालीन शान्ति रही। इस शान्ति की सुलह कराने का श्रेय मथुरेशजी के मन्दिर के गुसाई कन्हैयालाल को दिया जाता है।

२ विद्रोहियों के नेता मोहम्मदखा, अम्बरखा, गुलमुहम्मदखा युद्ध में मारे गये। पकड़े हुये कैदियों के सिर कटवा दिये गये और नदीदेख आदि को तोप से उड़ा दिया गया।

३ सन् १८५७ में अंग्रेज सरकार का कोटा नरेश के नाम एक खरीता आया जिसमें गदर की शान्ति के लिये उनको बधाई दी गई। डा० शर्मा, कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६२८।

४ विद्रोह के बाद कोटा राज्य में परिणाम —

(1) विद्रोही नेता मेहरावखा और लाला जयदयाल पकड़े गये तथा उन्हें ऐजन्टी वगले के पास फाँसी दी गई। (ii) रामसिंह को मेजर वर्टन की विद्रोहियों द्वारा हत्या की न रुकवाने के कारण उसकी सलामी की तोपें १७ से १३ कर दी। (iii) मेजर वर्टन का स्मारक राजकीय कोष से बनवाया गया। (iv) शहर का व्यापार नष्ट हो गया, राज्य की आर्थिक क्षति पहुँची। चोरियों व डकैतियों का राज्य कायम हो गया। (v) शहर पर महाराव का प्रभाव हो गया, पर सूदूर गावों में विद्रोहियों का ही कई वर्ष तक हुकम बना रहा। उपरोक्त पृ० ६२६-६३०।

पुत्र ही चाहे वह छोटा हो राज्याधिकारी होगा उदयपुर की राजकुमारी की प्रतिष्ठा सब रानियों से बढ़ कर रहे उदयपुर की राजकुमारी को (१००००) रु सासना भामदनी की आगीर अलग मिले तथा उदयपुर की राजकुमारी की डपोड़ी या मोहरे में कोई अपराधी दारण लवे वह सजा से बचाया जावे । य धर्ते महाराणा ने एजेंट गवर्नरजनरल राजपूताना क पास स्वीकृति के लिए भजी सकिम उक्त गाहब ने प्रथम धर्त क सिचाय सब धर्तों को मजूर करके कहा कि यह पहली धर्त महाराणा अम्बरसिंह द्वितीय तथा जगतसिंह द्वितीय के समय में तय हुई थी । उयका फल अशुद्धा नहीं निजसा क्योंकि किसी दूसरी रानी से उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ पुत्र हो तो भी वह राज्य से वधित रहे तो अगड़ की समावना होती है । इनसे राजपूतों में पहल भी फूट पड़ गई थी और मरहठों की टाकिये बढ़ कर राजपूताना की विनास की ओर ल गयी । अम्बरजी सरकार ऐसे अम्बरों की जड़ कायम करना मही चाहता थी । अतः यह धर्ते अस्वीकृत की गई ।

महाराय दामुगास (वि० सं० १९२३ १९४६)



रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका गोद लिया हुआ पुत्र भीमसिंह गद्दे पर बैठा । वि० सं० १९२३ क्षेत्र सुदि १ (ई सं० १८६६) । अतः म इका नाम बदल कर दामुगास रख दिया गया । इसकी सलाही की तौपें अम्बरजी सरकार ने पुन १७ कर दीं । पहले तो इसने राज्य का मुद्रबन्ध किया परन्तु बाद में कुसगत और मन्त्रिराज के कारण दागत कार्य म उन्मीनता मान गया । परिणाम स्वरूप शासन का प्रथम विगट गया । सूट-मार और रिदयत का आचार गर्म हो गया । यात्रियां और गोलागरीं का बढ़ी बढिनाद्यों का सामना करना पड़ना था । हर जगह हर बहाने में कुछ म कुछ म्गूग से लिया जाता था । अनातनी में ग्यान गही हागा था । पत्थ पत्थी से हटा रिय गय । जिसने मन्त्ररामा निवा उमे पुन

१ अम्बरका उदगांमद शिमीय की बहिन की पारी शक्ति से हुई । अतः प्रथम तय हुआ कि उ उगी महाराणी से ही उत्पन्न हुआ पुत्र राज्य ही कर बनेगा । बोट के पार कुंभकाम आवाक के उभरगिह के इग वायवरा को स्वीकार क किया । ही वायवरा के का म उन्तु बोट बहिन शिमीय की कुंभ के पार (१९ १७४१) अंग्रेज पुन ईरवी गिह पार उरगुनी गी के पुन आवाक के बीच गरी के रिय कर्ण हुआ कि वे राजु मे से बाय की का उदेर हा बका । अम्बरु दागरी से ब ही पाल के आकर पारी सस्वीति क का-रिय का पत्र बगका ।

२ अतः वह भी राज्य की बला बने जो दाव काका अम्बर का ।

पटेली दी गई^१ । कोटा राज्य आर्थिक सकट से गुजर रहा था । अंग्रेजी सरकार का खिराज, फौज खर्च, सन् १८५७ के विद्रोह को दवाने का खर्च, उससे अस्त-व्यस्त आयकर, भालावाड का निर्माण । अतः ग्रामदानी के क्षेत्र की कमी आदि स्थितियों ने कोटा की आर्थिक दुर्दशा को और भयंकर बना दिया था । राज्य का कर्जा बढ़ गया जो ६० लाख तक पहुँच गया^२ । अयोग्य मनुष्यों के हाथ में शासन का उत्तरदायित्व होने से प्रजा पर अत्याचार होने लगे । राज्य के परगने ठेके पर दिये जाते थे । अंग्रेजी सरकार ने बार-बार शत्रुशाल को शासन-प्रवर्धक ठीक करने के लिये समझाया परन्तु उसने प्रभावशाली व्यक्तियों से मुक्ति नहीं पाई । अन्त में शत्रुशाल ने अंग्रेजी सरकार को एक सुयोग्य प्रबन्धकर्ता को कोटा भेजने की प्रार्थना की । अंग्रेजी सरकार ने मुसाहिव के पद पर नवाब फौज-अलीखा को नियुक्त किया ।

नवाब फौजअलीखा प्रबन्धक के रूप में अक्टूबर १८७४ (सम्मत १९३०) के आसोज में कोटा आया^३ । नवाब ने आय-वृद्धि की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया । खजाने में उस समय ६३२२७ रु. ही जमा थे और कर्जा ६० लाख रुपये का था । ऊपर से दुर्भिक्ष, भारी कर से किसान तग आ चुके थे । राज के नौकरों को तनखाह कई मास से नहीं मिली थी । खर्च का कोई हिसाब नहीं था । नवाब साहिव ने आज्ञा दी कि स्वीकृत चालू खर्च के सिवाय जिलेदार और कुछ खर्च न करें और यदि ऐसा हुआ तो वसूली उसी कर्मचारी से ही की जायेगी । बाद में चालू खर्च की भी स्वीकृति लेनी पड़ने लगी । प्रति मास कर्मचारियों को वेतन देने की व्यवस्था की गई । बकाया लगान की किश्तों को वसूल किया गया और व्याज सहित राजकोष में जमा करने की आज्ञा दी गई । कर-संग्रह का कार्य जिलेदार को सुपुर्द कर दिया गया । भिन्न २ विभागों से वसूली करने का काम हटा दिया गया । नजराना के एक लाख रुपये जो बकाया

१ नजराना ८ आ० प्रति बीघे के हिसाब से लिया जाता था । डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, ६४० ।

२ सम्मत १९०३ (सन १८४६) के आसपास राज्य की यह स्थिति थी । शत्रुशाल के समय राज्य की आय २१ लाख रुपये थी जिसमें १४ लाख लगभग तोपखाना, मामलात और कर्ज की किश्तों तथा काज में खर्च होता था । उपरोक्त, पृ० ६५४-५५ ।

३ मदनसिंह भाला जब कोटा का मुसाहिव न रहा तो महाराज रामसिंह ने पाडे गोपाल को मुसाहिव का पद दिया पर वह मफलतापूर्वक कार्य न कर सका । शत्रुशाल ने गणेशलाल बीजा को मुसाहिव पद दिया । आर्थिक स्थिति को सुधारने का कार्य बीजा से न हो सका अतः नवाब फौजअलीखा बुलाया गया । यह पहले जयपुर का एक मन्त्री रह चुका था । अंग्रेजी सरकार ने इसे ६ तोपों की सलामी दी तथा इस पर चवर हुलता था ।

से भूमि-कर में कई बरों में जो द बाकी थे, राज्य कमी-कमी सकावी प्रण देता था वे भी बापिस न थाय थे टम्कीबराह व अगीरबराह कर से पूर्णतया बाकी थे । जिसदारों को इन बकाया खर्चों को शीघ्र तथा सस्ती से प्राप्त कर हिस्सा वेश करने की आज्ञा दी गई । एक बकाया महममा अलग स्थापित किया गया । सरकारी बचत के लिये टप्पण की बचहने^१ गोडवी और सोमे को आमदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की । गुप्त हरकारे जो राज्य के लिये सूचना इकट्ठी करते थे कुच रिस्वत सते और घातक जमा बैठे यह आज्ञा निकास दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें । न हरकारे घूस लें । अन्धबा कठोर दण्ड दिया जायेगा^२ ।

नबाब ने कुछ अन्य महत्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही । सम्बत् १२३० में डाकखाने का प्रदन्ध किया गया । सील पर डाक महसूल लिया जाता था जो एक प्राग सोसा था । सरकारी व कामिगत डाक की मिश्र २ व्यवस्था की गई । प्रत्येक जिन्ने को गजटियर बनाया गया^३ । मुक़ासा प्रथा को व्यवस्थित कर दिया गया । बापिक कर सीम किस्तों में दिया जाना था । बिस्ता प्रबन्ध में भी सुधार किया गया । कोटा राज्य ८ निजामतों में बांटा गया । प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी आमदनी ८ रु पी । प्रत्येक निजामत में दो तहसीलें होती थीं । तहसीलदार को १० रु मासिक वेतन दिया जाता था । इसके अलावा खर्च पर नियन्त्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तयार किया गया । बि स १२३१ में सड़के व सड़कियों के स्कूल खारी लिये गये जहाँ अंग्रेजों हिन्दी व फ़ारसी पढ़ाई जाती थी^४ । शिक्षा पर कुम खर्च ३७६ रु होता था^५ । पहला सुम्बवस्थित अस्पताल कोटा में सम्बत् १२३१ में खोला गया और नगर सफ़ाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग कर्मचारी नियत किया गया । राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ । अठ सड़क

१ सरकारी कार्य के लिये जाया कराने वाली के वैभिक खर्च का विवरण रखने वाली बचहनी थी । यह वैभिक खर्च जिसके यहाँ कर्मचारी जाता था देता था । कर्मचारी यहाँ जाता जाने भी जाता और वैसे ही जल । यह वैसे वय बचहनी में बना होते थे किंतु कि वही आमदनी करते थे ।

२ गुप्त हरकारे प्रथा मुवाहिज बाजिसिद्दह में स्थापित की थी ।

३ यह गजटियर सिर्फ जनगणना तक ही सीमित था—नाम के लिये पुस्तक नाम-रुचने कुच, बाबडी वरके मकान बेटी की भूमि मन्दि, मन्दि, प्रादि पर यह जोचना सफल नहीं हो सकी ।

४ सम्भाविकाओं और सम्भाविकाओं का वेतन १ रु मासिक होता था ।

५ डा खर्च कोटा राज्य का इतिहास पृ १६६ ।

इमारत विभाग स्थापित किया गया। उर्दू भाषा राज्य की भाषा बनाई गई। जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में भी सुधार किये गये। पुन जमीन की पैमाइश हुई तथा लगान नियत किया गया। इस कार्य के लिये सम्बत् १६३१ में २४०० रु बजट में रखे गये थे^१।

नवाब फ़ैजअलीखा दो वर्ष तक ही कार्य कर सका। महाराज से उसकी बनती नहीं थी^२। अतः स० १६३३ (सन् १८७६ की १ दिसम्बर) को इस्तीफा देकर नवाब चला गया। अंग्रेजी सरकार ने शासन भार स्थानीय राजनैतिक एजेन्ट को सौंप दिया। नवाब ने सम्बत् १६३१ में ३ सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण किया था^३। यह न्याय सम्बन्धी कार्य की देखरेख भी करती थी। एजेन्ट की एक सलाहकार समिति के रूप में इसका विकास हुआ। यह कौंसिल सम्बत् १६५३ तक कार्य करती रही। एजेन्ट कर्नल बेन्ती के तत्वावधान में कौंसिल ने कोटा राज्य के शासन में सुधार करने की कोशिश की। इस कौंसिल ने कोटा को ऋण-मुक्त कराया। नवाब फ़ैजअली के समय ६० लाख रुपये ऋण में थे। परन्तु बोहरो से ऋण की विगत मागी गई तो ४७ लाख रु. ही निकले^४। इस कौंसिल ने अपने अन्तिम समय में बर्खास्त होने से पहले राज-कोष में १७ लाख रु बचाया था। यह सब बचत जनहित कार्य के कामों में खर्च करने के बाद बची थी। नवाब ने जालिमसिंह के भूमि-प्रबन्ध में सुधार करने का प्रयास किया पर अपने सुधारों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के पहले ही वह इस्तीफा देकर चला गया। इस पर कौंसिल ने वह कार्य पूरा किया। कौंसिल में कर्नल पोलिट ने यह कार्य मुन्शी दुर्गाप्रसाद को सौंपा जिसने सम्बत् १६३३ में कार्य प्रारम्भ किया और सम्बत् १६४३ को कार्य समाप्त किया। प्रत्येक बीघे

१ उपरोक्त पृ० ६७०।

२ महाराज नवाब की नियुक्ति से पसन्द नहीं था क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने इस मुसाहिव आला को जो सम्मान व पद दे रखे थे वे महाराज को अच्छे नहीं लगते थे। कहा जाता है कि प्रथम दिन के मिलन से ही महाराज नवाब से अलग रहने लगा और गढ़ में उसके प्रवेश करने पर उसकी सलामी में तोपें नहीं दगवाई थी। अंग्रेजों के दबाव में आकर महाराज ने इस प्रबन्धक को स्वीकार किया था परन्तु जब नवाब ने सम्बत् १६३३ में झालावाड़ के राजराणा पृथ्वीसिंह की मृत्यु पर कोटा में झालावाड़ मिलाने का प्रयास किया तो राजराजा उससे पूर्ण अप्रसन्न हो गया।

३ प्रथम तीन सदस्य पलायथ के आप श्री अमरसिंह, राजगढ़ के आप श्री कृष्णसिंह और प० श्री रामदयालजी। डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, पृ० ६७२।

४ कुछ इतिहासकारों का मत है कि ऋण तो ६० लाख रु ही था पर बोहरो को चुकाने के लिये ६ या १० अना रुपये में से दूरी पैसे दिये गये।

य भूमि-कर के कई वर्षों के जो रु बाकी थे राज्य कमी-कमी लकाबी ब्रह्म देता था वे भी वापिस न माग्य थे टम्कीवराड व जगीरवराड कर तो पूर्णतया वाकी थे । जिलदारों को इन बकाया रुपयों को सीधे तथा सक्ती से प्राप्त कर हिसाब पेस करने की आज्ञा दी गई । एक बकाया महकमा भलग स्थापित किया गया । सरकारी बचत के लिये टप्पण की कचहरी^१ तोड़ दी और सोने को प्रामदनी सीधी राज्य-कोष में जमा करनी शुरू की । गुप्त हरकारे जो राज्य के क्रिय सूचना इकट्ठी करते थे कुब रिश्बत सते और भातक जमा बँटे थे यह आज्ञा निकाल दी गई कि लोग इन्हें घूस न दें । न हरकारे घूस लें ; अन्यथा कठोर दण्ड दिया जायगा^२ ।

नवाब ने कुछ ग्रन्थ महस्वपूर्ण सुधार कर कोटा राज्य की स्थिति में प्रगति करनी चाही । सम्बत् ११३० में डाकखाने का प्रबन्ध किया गया । तोर पर डाक महसूस लिया जाता था जो एक भाग सोसा था । सरकारी व कामिगत डाक की मिश्र २ व्यवस्था की गई । प्रत्येक जिसे को गजटियर बनाया गया^३ । मुकाटा प्रमा को व्यवस्थित कर लिया गया । वार्षिक कर तीन बिस्तों में दिया जाता था । जिम्मा प्रदत्त में भी सुधार किया गया । कोटा राज्य ८ निजामतों में बाँटा गया । प्रत्येक निजामत पर एक नाजिम होता था जिसकी भामदनी ८० रु थी । प्रत्येक निजामत में दो तहसीलों होती थी । तहसीलदार को ३० रु मासिक बतन दिया जाता था । इसके असावा सर्भ पर नियन्त्रण करने के लिये प्रत्येक विभाग का बजट तयार किया गया । वि स० ११३१ में लड़ने व सड़कियों के स्कूल जारी किए गए जहाँ अंग्रेजी हिन्दी व फ़ारसी पढ़ाई जाती थी^४ । शिक्षा पर कुल खर्च ३७६० रु होता था^५ । पहला सुव्यवस्थित ग्रन्थतास कोटा में सम्बत् ११३७ में लोसा गया और नगर सफाई के प्रबन्ध के लिये एक अलग नमबारी नियत किया गया । राजधानी में सड़कों का निर्माण प्रारम्भ हुआ । अल सड़क

१ सरकारी कार्य के लिये जाबा करन वालों के बैनिक सर्भ का हिसाब रखने वाली कचहरी थी । यह बैनिक सर्भ जिसके वहाँ कामचारी जाता था देता था । कर्मचारी वहाँ जाता जाने भी जाता और देने भी लता । यह पैसे इन कचहरी में जमा होते थे जिसे कि गरी पावशनी कहते थे ।

२ गुप्त हरकारे प्रमा मुताहिक जातिवनिह में स्थापित की थी ।

३ बड़ पत्रटियर निर्दे जतनगला तक ही घोषारित थे-बाब के ली गुप्त बाब-बन्धे गुए, बाबरी ११३१ अदाल मिठी की भूमि गरीर, कसिअर घाटि पर बड़ बीजना लठन नहीं हो गयी ।

४ व्यवसायियों और व्यवसायों का वेतन १ रु मासिक होता था ।

५ हा पर्व कोटा राज्य का इतिहास पृ १६६ ।

के नियम बनाये। अंग्रेजी सरकार का सिक्का जारी होने के बाद कोटा की टकसाल बन्द करदी गई। शिक्षा की उन्नति के लिये सम्वत् १९५० में शिक्षा का बजट २० हजार तक बढ़ गया और प्रत्येक व्यापारिक केन्द्र पर एक-एक स्कूल खोला गया। अजमेर के मेयो कालेज में एक छात्रालय कोटा राज्य की ओर से निर्मित हुआ और कालेज को आर्थिक सहायता दी गई। प्रजा की सेहत के लिये तहसीलों में अस्पताल खोले गये।

इस प्रकार कौन्सिल की सरक्षता में कोटा राज्य ने उन्नति की। महाराव शत्रुशाल ने अपना राज्य-प्रबन्ध अंग्रेजी सत्ता पर छोड़ कर ऐश्वर्य में जीवन व्यतीत किया। इसके कोई सन्तान नहीं थी। वह सदा बीमार रहता था। अतः अपने जीवन-काल में ही उसने अपना कोई पुत्र नहीं होने के कारण, कोटडा के जागीरदार महाराज छगनसिंह के दूसरे पुत्र उदयसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया। इसकी मृत्यु ज्येष्ठ सुदि १३, सम्वत् १९४६ (ई० सन् १८८६ ता० ११ जून) को हुई^३।

महाराव उम्मेदसिंह (वि० स० १९४६-१९६७)

महाराव शत्रुशाल के कोई सन्तान न होने से कोटडे के जागीरदार का पुत्र भीमसिंह गोद लिया गया^३। राज्याभिषेक के समय इसका नाम बदल कर उम्मेदसिंह रखा गया। इसका जन्म स० १९३० भाद्रवा सुदि १३ शुक्रवार (सन् १८७३ ता० ५ सितम्बर) को हुआ। राज्याभिषेक १६ वर्ष की आयु में ही ज्येष्ठ सुदि १३ स १९४६ (सन् १८८६ को ११ जून) को ही हो गया था



१ उपरोक्त, पृ० ६७६-६९६।

२ कहते हैं इसको मारने के लिये कुछ कामियों ने जहर दे दिया था। इस सम्बन्ध में धाय माय घोसा और वैद्य रामचन्द्र गिरफ्तार कर लिये गये। वैद्यराज की मृत्यु तो जेल में ही हो गई। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई पर्याप्त प्रमाण नहीं मिले हैं।

३ कुछ इतिहासकार इनका आदि नाम उदयसिंह भी कहते हैं किशोरसिंह विशनसिंह (अन्ता के जागीरदार, दक्षिण में पिता के साथ न जाने कारण गद्दी में वंचित)

धनसिंह (पाचवाँ पौत्र, विशनखेडी का जागीरदार)

छगनसिंह (कोटडे का जागीरदार)

उदयसिंह या भीमसिंह या उम्मेदसिंह

का नाप सब स्थान पर एक सा कर दिया। सुकड़ों प्रकार की डोरियाँ घमास करके केवल ११ प्रकार की रहने दीं जिनका नाप १३० फिट ५ इंच से १४६ फिट ८ इंच तक रहा^१। इससे राज्य के १ वर्ष में ४ लाख रु खर्च हुये। और १ लाख रु की वार्षिक वृद्धि हुई। इसके अलावा कृषकों को कम व्याज पर रुपये राज्य द्वारा देने तथा बीज देने की प्रथा भी जारी की गई। सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण किया गया। पार्वती नहर अकलेश का सागर, रामनड की नहर आदि निर्मित हुई जिसमें सम्बत् १६५२ से साढ़े ११ हजार बीघे भूमि की सिंचाई होने लगी^२।

कौन्सिल द्वारा स्याय सत्र में भी सुधार किये गये। सम्बत् १६३६ में धोरतों को कोड़े लगाने बन्द किया गया। पुरुषों के कोड़े लगाने से पहले उनका डाक्टरी मुधायमा किया जाता। कैदियों को राज्य की धोर से सुराज मिलने लगी। अन्य सुधारों में अगाठ विभाग में सुधार किया गया। राज्य के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर माल ले जाने पर जो महसूस लिया जाता था वह सम्बत् १६३१ में बन्द कर दिया गया। सम्बत् १६४० में अगाठ विभाग और माल विभाग पृथक कर दिये गये। सम्बत् १६३३ में कौन्सिल ने अगम के ठके देने के नियम बनाए और सम्बत् १६३३ में इसकी आय ३ हजार के ऊपर हो गई। कोटा में अफीम की खेती को कम कर दिया गया। पहले से सम्बत् १६५ में २५% कम की गई। कोटा राज्य में मसक बनाने का कार्य अब भारत-सरकार ने ले लिया अब मुभावना प्रति वर्ष १६ हजार रु दिया जाने लगा।

सम्बत् १६३७ में सेना का पुनः प्रबन्ध किया गया। सेना का खर्च पार लाख रु से ऊपर किया जाने लगा। नगर पुलिस व जिन्ना पुलिस में सुधार करने के लिये सम्पूर्ण राज्य के तीन विभाग किये गये और प्रत्येक डिवीजन में एक उपाध्यक्ष पुलिस नियुक्त किया। जामेदार जो मासगुजारी बसूस करते थे वह कार्य उनसे अलग किया गया। कई अन्य प्रकार के नियम बनाये गये। जमीन छोड़ने बेचने व गिरबी रखने के नियम बने। माल विभाग में नये तरीके का प्रदर्शन किया गया। अध्येस के लिये दो उपाध्यक्ष रखे गये। एक कोटा में और दूसरा शेरगढ़ में अगम मास से असम किया गया परन्तु पुनः सामिल कर दिया गया। पशु-बाई बने। खेतों का लगान मकर दिया जाने लगा। सम्बत् १६४७ में कौन्सिल ने राज्य-कर्मचारियों की वेतन

१ इसे हाकी वाला बन्धोबस्त भी कहते थेकीकि यह बन्धोबस्त मुन्शी बेबीप्रसाद ने हाकी कर बैठ कर किया था। डा अर्मा कोटा राज्य का इतिहास भाग २, पृ १७७।

२ उपरोक्त पृ १७७-१७८।

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। धीरे-धीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सन् १९५३ में इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह सम्बत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहात हो गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्शी शिवप्रनाप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद में इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-वासन में दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान हो जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य में गठ कमेटी के सदस्य के रूप में प्रारम्भ कर धीरे-धीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ जी. के रूप में कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक सभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय बहादुर प० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु स० १९६२ में इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर स० १९३६ में सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पड़ोसी राज्यों से मित्रता की नीति अपनायी प्रारम्भ की। बून्दी के हाडा शासकों से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी^१। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। स० १९८० (सन् १९२३) में बून्दी के नरेश बीमार पड़े। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षों की वैमनष्यता का अंत हो गया और पुन हाडाओं में मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर में भी वैमनष्य था^२। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक संबन्ध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ठ पुत्र थे^३। कोटा

१ जाजव का युद्ध मार्च १७०८, औरगजेव की मृत्यु के बाद उसके बड़े शाहजादा युवराज मुअज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लड़े जिसमें मुअज्जम का पक्ष बून्दी वालों ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाडाओं ने लिया। जिसमें मुअज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात् मुअज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाडा के युद्ध में कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनों राज्यों में अनबन बढ़ती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराजा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुवर के साथ सन् १८६२ में हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८६५ में मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ में मृत्यु हो गई तीसरी शादी ईशरदा ठिकाना के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

परन्तु नामाभिग होने के कारण राज्य-कार्य कौन्सिल के हाथ में रहा। राजकाज के अधिकार इसे वि स १९५६ को पोप सुवि २ धुषवार (ई० सन् १८६२ वा २१ दिसम्बर) को दिये गये^१। और स १९५३ में कौन्सिल की समाप्ति कर कोटा राज्य के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व इसने अपने ऊपर ल लिया। इसकी शिक्षा मयो कामेज धम्मर में हुई थी।

शासन कार्य प्रारम्भ करते समय इसने जन-कल्याण की प्रथम धोषणा की। पूर्ण शासन प्राप्ति के विषय 'कोस्तबेट इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की जो कि एक सार्वजनिक पुस्तकालय सम-कूद के मैदान के रूप में स्थापित हुआ^२। कासांतर में शासन-कार्य से प्रसन्न होकर समय २ पर अंग्रेजी सरकार इसे अपनी पदवियों से सुशोभित कर इसका अंग्रेजी सरकार की सेवाओं का धावर करता रही। स १९२७ (ई सन् १९०) में इसे के. सी एस आई की पदवी दी गई^३। जून १९७ का भी सी आई ई^४ और १ जनवरी १९१८ को बी बी ई^५ की उच्च पदवियां दी गईं। सन् १९१३ में सम्राट एडवर्ड सप्तम ने इसे देवसी रेजीमेंट का धानरेरी मेजर नियुक्त किया और सन् १९१४ में धानरेरी सेप्टीनेंट कर्नल बनाया। शिक्षा के क्षेत्र में समय २ पर दान-दक्षिणा देने की प्रथा कोटा में महाराज उम्मेदसिंह ने शुरू की। काशी बिश्व बिद्यालय की स्थापना के समय इसने मदनमोहन मानवीयजी को डेढ़ लाख रु दिया। और दिल्ली की लेडी हाइंग मेडीकल कामेज को १ लाख रु दिये। सन् १९२७ में काशी बिश्व बिद्यालय ने महाराज उम्मेदसिंह को एस एस जी की उपाधि दी।

महाराज उम्मेदसिंह का शासन-काल सुधार और प्रगति का शासन-काल था। वह अन्य रियासतों से मित्रता प्रमोभाब तथा सहयोग की नीति का अनुसरण करता था। जनता के सुख और उन्नति के मार्ग की बाधाओं को दूर करने की नीति इसने अपनाई थी। इसके शासन-कार्यों में मुख्य सत्साहकार चौद सर रघुनाथदास सी एस आई और मुशी सिखप्रताप थ। कौन्सिल के कार्य-काम में

१ इस समय इसे सेना कर्नल रियाह पुष्य विभाग और महलों के प्रबंध का अधिकार दिया गया।

२ यह संस्था कोटा निवासियों की धापा में धारण है। १ नवम्बर १८६६ में राज नैतिक प्रतिनिधि सर राबर्ट कोस्तबेट महाराज को पूर्ण शासन धार बीपने को धापा। इसकी स्मृति में यह संस्था स्थापित की।

३ नाइट बमाल्डर स्टार धाब इण्डिया।

४ जनरल कमाण्डर पाब इण्डियन इम्पायर।

५ जनरल कमाण्डर पाब इण्डिया।

रघुनाथदास माल विभाग का अध्यक्ष था। घीरे-घीरे अपनी योग्यता के कारण कौंसिल की सहायता प्राप्त की और सन् १९५३ में इसे कोटा राज्य का दीवान बनाया। इस पद पर यह संवत् १९८० तक रहा जबकि इसका देहात ही गया। २७ वर्ष तक यह राज्य का दीवान रहा। मुन्गी शिवप्रताप महाराव का प्राइवेट सेक्रेटरी था। बाद में इसे शिक्षा विभाग का अध्यक्ष बनाया गया। राज्य-शासन में दीवान इसकी सलाह लिया करता था। दीवान रघुनाथ का देहावसान ही जाने के बाद दीवान पद पर पलायथे के ठाकुर ओंकारसिंह को नियुक्त किया गया। आप ओंकारसिंह ने भी कोटा राज्य में गढ कमेटी के सदस्य के रूप में प्रारम्भ कर घीरे-घीरे माल विभाग के उपाध्यक्ष, गिराही महकमा (पुलिस विभाग) के अफसर व आइ जी. के रूप में कार्य करने के बाद सेनाध्यक्ष और फिर दीवान का पद प्राप्त किया। यह पद ६ जनवरी १९४२ तक सभाला। महकमा खास का अन्य सदस्य राय वहादुर प० विशम्भर भी था। यह सर रघुनाथ का पुत्र था। परन्तु स० १९९२ में इसने अस्वस्थता के कारण त्यागपत्र दे दिया। उसके स्थान पर स० १९३६ में सरदार कान्हचन्द की नियुक्ति हुई।

महाराव उम्मेदसिंह ने पड़ोसी राज्यों से मित्रता की नीति अपनायी प्रारम्भ की। बून्दी के हाडा शासकों से अनबन सन् १७०८ से चली आ रही थी^१। इस वैमनष्य को दूर करने का प्रयास महाराव ने किया। स० १९८० (सन् १९२३) में बून्दी के नरेश वीमार पडे। स्वास्थ्य-लाभ पूछने के लिये महाराव उम्मेदसिंह बून्दी गया। वर्षों की वैमनष्यता का अंत हो गया और पुन हाडाओं में मेलजोल व भाईचारा स्थापित हो गया। इसी प्रकार कोटा-जयपुर में भी वैमनष्य था^२। इस अनबन को दूर करने के लिये कोटा नरेश ने वैवाहिक सवध स्थापित किये। जयपुर के प्रसिद्ध ठिकाने ईशरदा के ठाकुर की बहिन से इसने विवाह कर लिया। जयपुर के राजा मानसिंह ईशरदा ठाकुर के कनिष्ठ पुत्र थे^३। कोटा

१ जाजव का युद्ध मार्च १७०८, औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके बड़े शाहजादा युवराज मुग्रज्जम और दक्षिण का सूबेदार शाहजादा आजम दिल्ली पर अधिकार के लिये लडे जिसमें मुग्रज्जम का पक्ष बून्दी वालों ने तथा आजम का पक्ष कोटा वाले हाडाओं ने लिया। जिसमें मुग्रज्जम की जीत हुई। बून्दी के राव बुद्धसिंह अर्थात् मुग्रज्जम से कोटा प्राप्त करने का फरमान ले लिया।

२ सन् १७६१ के मरवाडा के युद्ध में कोटा से जयपुर हार गया। तब से दोनों राज्यों में अनबन बढ़ती रही।

३ महाराव के ३ विवाह हुए। पहला विवाह उदयपुर महाराणा फतहसिंह की पुत्री नन्दकुवर के साथ सन् १८९२ में हुआ। परन्तु वह प्रसव-वेदना से १८९५ में मर गई। दूसरा विवाह कच्छ के महाराव की पुत्री से हुआ जिसकी सन् १९२३ में मृत्यु हो गई तीसरी शादी ईशरदा ठिकाणा के ठाकुर की बहिन से किया। इसके एक पुत्र भीमसिंह है।

राज्य से बलसग भ्रमसावाड़ राज्य की स्थापना हुई। भ्रमसा मदनसिंह को स १८१४ (ई० सन् १८३७) में भ्रमसावाड़ का राज्य दिया गया। स० १८१३ (ई० सन् १८१६) में भ्रमसावाड़ के तख्तवालीन राजराणा बालिमसिंह का शासन प्रबंध बुरा होने के कारण उसे गद्दी से उतार दिया और उसके कोई पुत्र न होने के कारण ये को १७ परगने थे उनमें से १५ परगने सन् १८१६ में कोटा राज्य को दे दिये गये। ये परगने कोटा में मिस्र आने से भ्रमसों व हाड़ों में घनबन होगई। परन्तु १८२४ में महाराज उम्मेदसिंह ने महाराज राणा भ्रमसावाड़ से मिमता करली और भ्रमसावाड़ का नरेश उम्मेदसिंह से मिसन कोटा प्राया^१।

अंग्रेजी सरकार के प्रति महाराज कोटा ने सहयोग व राजभक्ति का प्रदर्शन किया। लार्ड कर्जन ६ नवम्बर १८०२ को कोटा प्राया और महाराज का ४ दिन तक मेहमान रहा। इसी तरह लार्ड मिटन १८२५ में कोटा आया और मार्च १८२६ को लार्ड रीडिंग ने कोटा-यात्रा की। सब वायसरायों ने कोटा राज्य की शासन प्रगति की प्रशंसा की। कोटा में हाड़ोती एजेन्सी का प्रमुख केन्द्र करीब १० वर्ष स १८७४ से १८७६ तक रहा। महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती कोटा में स १८१६ में धूमधाम से मनाई गई। सन् १८०१ में महारानी विक्टोरिया मरी तो राज्य में लोक की खुशियों की गई व ८१ तोपें बसाई गईं। एडवर्ड सप्तम की गहोनशीनी के उपसभ्य में महाराज को स्वर्ण पदक दिया गया। स १८११ में लार्ड पब्लम ने दिल्ली में ग्राम दरबार किया। महाराज वहाँ उपस्थित थे। उसे क सी एस आई की पदवी से विभूषित किया गया। महाराज ने सम्राट को कोटे आने का निमन्त्रण भेजा। सम्राट तो न आया परन्तु साम्राज्ञी मेरी २४ दिसम्बर १८११ को कोटा आई। महाराज ने अंग्रेजों को युद्धों में हमेशा सहायता दी। स १८१६ में अफ्रीका में अंग्रेज का बोधरों से युद्ध छिड़ गया^२। कोटा राज्य ने अंग्रेजों को आर्थिक व रसद की सहायता दी। प्रथम महायुद्ध १८१४ से १८१६ तक यूरोप में हुआ। भारत में अंग्रेजी सरकार ने देशी राज्यों से सहायता चाही। कोटा नरेश ने अंग्रेज १८१७ में अंग्रेजी सरकार को युद्ध में ५ लाख और राजमहिमाओं ने १ लाख रु दिये। कोटा की जगता से बल इकट्ठा करने के लिये एक समिति बनाई गई जिससे ३ लाख रु इकट्ठा किया। अन्य प्रकार के फण्ड जोसे गये। भारतीय रिजर्व फण्ड

१ डा कर्ज कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय पृ ७१५।

२ यह प्रसिद्ध द्वितीय बोधर का युद्ध था। (१८१६ से १८२२) जबकि ट्राइबनाल का भी कारण के बोधर राज्य अंग्रेजों ने विजय कर बहिष्की चक्रीक में मिला लिये। इसी युद्ध में महात्मा बाबी स्वयंसेवक बन कर बाधरों की सेवा सुधुपा करते थे।

वायुयान फण्ड आदि, रेडक्रास आदि में भी धन दिया गया। कोटा से करीब १५ लाख का धन गया। युद्ध-समाप्ति के बाद राष्ट्र सघ १९१६ ई० में निर्माण हुआ। जन-कल्याण के लिये इस सघ ने नशे की वस्तुओं का उत्पादन रोकना चाहा। कोटा में भी अफीम का उत्पादन कम किया गया। १९१६ के भारतीय सविधान के कानून (चेन्सफोर्ड माटेग्यू सुधार) के अनुसार नरेन्द्र मण्डल की स्थापना हुई। महाराव इस मण्डल का सदस्य बना। १९३५ के सघीय विधान में कोटा राज्य के सम्मिलित होने की स्वीकृति महाराव ने देदी। दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ में महाराव ने प्रथम महायुद्ध की तरह अंग्रेजों को भरपूर सहायता दी।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन-काल में कई सुधार हुए। भूमि-प्रवध आधुनिक ढंग से सुव्यवस्थित किया गया। राजकीय लगान निश्चित किया गया। भूमि की उपज और पीवत के अनुसार साठे छ (६।।) रु बीघा से लेकर ६ आने तक नियत की गई। सेर के वाट नये जारी किये गये। पडत जमीन उपजाऊ कराई गई। यह बन्दोवस्त का कार्य १९०० में प्रारम्भ हुआ और १९१६ में समाप्त हुआ। मि० बटलर ने यह कार्य किया। राजकीय आय में ३ लाख रु. की वृद्धि हुई। इस प्रकार हर १०वें साल बन्दोवस्त की प्रथा शुरू की। तीसरे बन्दोवस्त में जमींदारी जमीन का भी बन्दोवस्त किया गया। कृषि में सुधार किये गये। कृषकों को तकाबी दी जाने लगी। नये प्रकार के बीज दिये गये और वैज्ञानिक ढंग से खेती करने को प्रोत्साहन दिया गया। पटेलों को भारत के भिन्न २ कोनों में होने वाली कृषि-प्रदर्शनियां देखने भेजा गया। वहाँ से राज्य के लिये नये कृषि यंत्र खरीदे गये। कोटा में समय २ पर अकाल पडते थे। सम्वत् १९५६ में, १९६१ में, १९७५ में भयंकर अकाल पडे। राज्य ने दुर्भिक्ष सहायता के लिये कमेटी निर्मित की। अन्न को निकासी पर मारी कर लगा दिया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में महाराव उम्मेदसिंह के समय काफी उन्नति हुई। सम्वत् १९५० में राज्य भर में १८ पाठशालाए थी। और १०८५ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे व ३४ अध्यापक थे और ८ हजार ७ सौ १० (८७१०) रु शिक्षा पर खर्च

१ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७४६-७४७।

२ १९०४ में भूमि कर की आय २२ लाख १६ हजार १ सौ ४४ रु. थी। १९०६ में २४ लाख ३७ हजार ४ सौ ६४ हो गई और इसमें खर्च ३ लाख ५६ हजार ३ सौ ४६ हुआ। 'उपयोगी जमीन १९०४ में १८६२०२७ बीघा थी। १९२० में २४३०८४६ बीघा होगई डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास द्वितीय, पृ० ७५६-६०।

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अग्रस्त १६४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराजा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराज भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। जब बृहत् राजस्थान ३० मार्च १६४६ को बना तो उदयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराज भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १६५६ तक समाप्त। बाद में १ नवम्बर १६५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त कर दी गई।

महाराज भीमसिंह शिक्षा प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग की खेपर की स्थापना के लिये धन देकर राजस्थान के इतिहास व शोध के लिये निष्ठाधियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१३वीं शताब्दी के अन्तिम अरब १२७४ ई० में बूम्ही के शासक राज समरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भीम से अकबरगढ़ के मुठ में कोटा छीन कर हाड़ाओं का राज्य यहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पूषक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी गरीब की अधीनता में रहा करते थे। ई १५४६ में कोटे पर मालवा के केशरखी और डोकरखी पठान सैनिकों का अधिकार हो गया। राज सुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सन् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र भोज के सुपुर्ष कर लिया^१। जब राज सुर्जन ने अकबर के साथ रणबन्धोर समर्पण करने की संधि १५६६ ई० में की तो सम्भव है कि कोटा

१ इसमें बीकानेर, बयपुर, बयसतमेर व जोधपुर की विभासर्तें भी शामिल हो गईं।

२ बूम्ही राज्य का इतिहास बूम्ही राज्य का सुपुर्ष से सम्बन्ध।

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। स० १६३६ (१५७६ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा में राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया^१।

(क) मुगल राजनीति की देन—‘कोटा’—कोटा की स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापना मुगल सम्राटों की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की^२। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिंह एक स्वतन्त्र शासक के रूप में कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओं के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों के कारण भगड़े उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कहीं जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम में ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव में रहने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वयं शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नहीं हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी^३। अतः शहरयार को राज्यारूढ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाडली बेगम की शादी शहरयार से अप्रैल १६२१

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट न० २।

२ सागर फूटघो जल बहयो, ध्रुवकी करो जतन।

जातो गढ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन ॥ टाड पृ० १४८६।

३ डा० भास्कीर्वादीलाल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

होता था। अग्रणी शिक्षा राजधानी में ही थी। स्त्री-शिक्षा नाम मात्र की थी। अग्र शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होने लगी। १९२३ में हाई स्कूल खुला। बाद में यह कॉलेज बन गया जिसे आज हरवर्ट कॉलेज कहते हैं। स्त्री-शिक्षा के सिद्ध महारानी कन्या पाठशाला की स्थापना हुई। नार्मल स्कूल स्थापित किये गए। विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त के लिये छात्र-वृत्तियाँ दी जाने लगीं। चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत कोटा राज्य में स्थान २ पर अस्पताल खुलने लगे। सम्वत् १९२६ में पाँच सफाकामे थे पर सन् १९४० तक हर सड़कीस में १-१ अस्पताल खुल गया। कई सामाजिक सुधार हुए।

सम्वत् १९८० में बेगार प्रथा बन्द करदी गई। सन् १९२७ में यह कानून बना दिया गया कि १२ वर्ष से पहा लड़कने और १६ वर्ष से पहले लड़के का विवाह करना जुर्म है। कोटा में पहली रेलवे लाइन सम्वत् १८५६ में बारी तक बनी थी। कोटा राज्य ने इसका सर्प दिया। सम्वत् १९६९ में कोटा तक यह लाइन खुल गई। स १९६५ में मथुरा नागदा रेलवे मार्ग खुल गया। इसी प्रकार कोटा राज्य ने इस काल में डाक तार का भी प्रबन्ध किया। सन् १९० में कोटा राज्य का डाक विभाग प्रिन्सेजी सरकार ने ले लिया। कोटा में पहली तार लाइन २१ मई १८९२ में देवली से कोटा तक खोली गई। सहकारी समितियों बैंक १९२३ ई में स्थापित किये गये। रस के आने पर रूई के पैच टेन को फैक्ट्री पत्थरों की खानें आदि व्यवसाय खारी हुए। बारी और रामगंज मछी इन व्यवसायों के मुख्य नगर थे। कोटा में पहले हाली और मदनसाही खप बसते थे। सन् १९० में कलवार खपे शुरू किये। उम्मेदसिंह के समय बनने वाली इमारतों में हरवर्ट कासज कर्जन बाबली स्मारक कापेस्ट इन्स्टीट्यूट, महाराणी कन्या पाठशाला (प्राजकल कॉलेज) राजकीय भवन आदि प्रसिद्ध हैं। कोटा में प्रथम बार राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ इसके समय में हुआ। सन् १९१४ में जयपुर के प्रसिद्ध देवभक्त प अजु नमाल सेठी भी ए तथा धाहपुरा (मवाड़ निवासी) नेसरीसिंह बारहठ कोटा के हीराछास बालोटी आदि धारा बिहार महत्त्व हत्या का तथा जोषपुर महत्त्व हत्यानेस नाम के राजनीतिक मुकदमे प्रिन्सेजी सरकार के हतारे से कोटा राजधानी में बलावे गये और इन अभियुक्तों को दोषी करार देकर कई वर्षों की सजा दी गई। राजपूताने के राज्यों में यह पहला ही राज नीतिक पदपत्र का मामला था।

१९२२ में केन्द्रीय बारा-गंगा में पारवा कानून बना कर विवाह की उम्र निर्धार करदी। लड़के की उम्र १८ वर्ष और लड़कियों की १४ वर्ष होने पर ही विवाह करने का कानून बना। यह कानून गणज न ही सरा। इसी प्रकार कोटा राज्य का यह कानून भी बनचन रहा।

महाराव उम्मेदसिंह का देहान्त सन् १९४० की २७ दिसम्बर को हुआ। इसके बाद उसके पुत्र भीमसिंह राजगद्दी पर बैठे। महाराव उम्मेदसिंह अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। सम्वत् १९७१ (ई० सन् १९१४) में इसने द्वारिका-यात्रा की। सन् १९१७ में यह हरिद्वार गया और वहाँ पुण्यदान दिया। अपने राज्य में पुराने मन्दिरों व मस्जिदों का जीर्णोद्धार करवाया।

महाराव भीमसिंह—वि० स० १९९७-२००४

राजस्थान-निर्माण के समय कोटा के राज्य पर महाराव भीमसिंह विराजमान थे। इसका जन्म स० १९६५ (सन् १९१८) में हुआ था। प्रारम्भ से ही इनकी शिक्षा मेयो कॉलेज अजमेर में हुई। शिक्षा-प्राप्ति व खेलकूद में इन्होंने अपना नाम विद्यार्थी जीवन्त में उच्च स्तर तक पहुँचा दिया था। मेयो कॉलेज के १९१७ से १९२९ तक विद्यार्थी रहे। बाद में शासन-प्रबन्ध की शिक्षा प्राप्त करने के लिये महकमा खास और महकमा माल का काम देखने लगे। इनका विवाह महाराजा बीकानेर श्री गंगासिंह की पुत्री से ३० अप्रैल १९३० को हुआ था। अपने पिता की मृत्यु के बाद (२७ दिसम्बर १९४०) कोटा की राजगद्दी पर आप बैठे। इनका शासनकाल राजनैतिक उथल-पुथल का काल था। गद्दी पर बैठते ही द्वितीय महायुद्ध का सामना करना पड़ा। युद्ध-काल में अंग्रेजों के प्रति इन्होंने वही नीति अपनाई जो कि इनके पिता ने अपनाई थी। १९४५ में युद्ध समाप्त होगया तो भारत का राजनैतिक वातावरण क्रांति की ओर अग्रसर होने लगा। कोटा भी इससे अछूता न बच सका। कोटा में अखिल भारतीय लोक परिषद् की शाखा खुली। कोटा में स्वशासन स्थापित करने की माग पर जन आंदोलन हुए। यद्यपि जन आंदोलन कमजोर था परन्तु महाराव समय की गति को देख रहे थे। अगस्त १९४१ में 'भारत छोड़ो आंदोलन' की देखादेखी यहाँ के प्रताप मण्डल ने भी पूर्ण उत्तरदायी शासन की माग की। तथा रियासत का अंग्रेजी सरकार से सबंध विच्छेद के लिये महाराव को कहा गया। इस पर कोटा में उपद्रव हुए। नेता गिरफ्तार किये गये। इस पर जनता ने बहुत विरोध किया। महाराव ने किसी प्रकार जनता से समझौता कर लिया। १५ अगस्त १९४७ को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। महाराव कोटा ने अपने यहाँ १९४७ के प्रारम्भ में ही जन-प्रिय सरकार की स्थापना की। सरदार पटेल, केन्द्रीय ग्रहमंत्री की देशी राजनीति पर छोटे २ राज्यों का एकीकरण प्रारम्भ हुआ। राजस्थान के छोटे राज्यों ने भी बड़ा राजस्थान बनाने में सहायता दी। महाराव कोटा इस काम में अग्रणी थे। २५ मार्च १९४८ को स रियासतों को छोटे राजस्थान का निर्माण हुआ।

१ इसमें वासवाडा, वून्डी, डूगरपुर, झालावाड, किशनगढ, कोटा, प्रतापगढ, शाहपुरा टोक सम्मिलित हुए थे।

बाद में इसमें उदयपुर के १८ अग्रस्त १६४८ को शामिल हो जाने पर उदयपुर के महाराणा भोपालसिंह राजप्रमुख बनाये गये और कोटा महाराज भीमसिंह उप-राजप्रमुख बने। अग्रे बृहत् राजस्थान ३० मार्च १६४९ को बना' हो उदयपुर के शासक मानसिंह राजप्रमुख बने और महाराज भीमसिंह उप राजप्रमुख बने। यह पद उन्होंने ३१ अक्टूबर १६५६ तक संभाला। बाद में १ नवम्बर १६५६ से राजप्रमुख प्रथा समाप्त कर दी गई।

महाराज भीमसिंह शिक्षा प्रेमी रहे हैं। राजस्थान विपदविद्यालय के इतिहास विभाग की क्षेत्र की स्थापना के लिये धन बेकर राजस्थान के इतिहास व खोज के लिये विद्यार्थियों को उत्साहित किया है।

कोटा राज्य का मुगलों से संबंध

१६वीं शताब्दी के अन्तिम अर्थात् १२७४ ई० में बून्दी के शासक राजसमरसिंह के पुत्र जैतसिंह ने कोट्या भीम से अकेलगढ़ के युद्ध में कोटा छीन कर हाइकोट का राज्य वहाँ स्थापित किया। यद्यपि कोटा पूरक राज्य केन्द्र हो गया था परन्तु कोटे के शासक बून्दी प्रदेश की अधीनता में रहा करते थे। ई० १५४६ में कोटे पर मानवा के कंसरखा और डोकरखा पठान सैनिकों का हमला हुआ। राजसुर्जन हाड़ा ने इनसे कोटा सम् १५६१ में छीन लिया और अपने पुत्र मोह के सुपुत्र कर दिया। जब राजसुर्जन ने अकबर के साथ राजसमोर समर्पण करने की संधि १५६९ ई में की तो सम्भव है कि कोटा

१ इसमें बीकानेर, उदयपुर, अजमेर व जोधपुर की रियासतें भी शामिल हो गईं।

२ बून्दी राज्य का इतिहास बून्दी राज्य का मुगलों से सम्बन्ध।

राज्य का फरमान अकबर से प्राप्त कर कोटा का कानूनी अधिकार स्थापित किया हो। स०-१६३६ (१५७६ ई०) के गेपरनाथ के शिलालेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोटा में राजकुमार भोज का राज्य स्वतन्त्र रूप से था। जब भोज बून्दी की गद्दी पर बैठा तो उसका पुत्र हृदयनारायण कोटे का राजा बना और उसने शाही फरमान प्राप्त किया^१।

(क) मुगल राजनीति की देन—‘कोटा’—कोटा की स्वतन्त्र राज्य के रूप में स्थापना मुगल सम्राटों की देन कहा गया है। शाहजादा खुर्रम के विद्रोह के कारण बादशाह जहाँगीर की स्थिति अत्यन्त शोचनीय होने लगी थी। उस समय बून्दी के राव रतन ने जहाँगीर की सहायता की^२। इस सेवा से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने कोटा राज्य का फरमान राव रतन को दे दिया। राव रतन ने अपने पुत्र माधोसिंह को उस राज्य का अधिकारी बना दिया। राव रतन की मृत्यु के बाद माधोसिंह एक स्वतन्त्र शासक के रूप में कोटा पर शासन करने लगा।

जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभावशाली अधिकार था। १६२२ ई० तक नूरजहाँ मुगल परम्पराओं के अनुसार राज्य करती परन्तु उसके बाद उसकी गर्वीली तथा महत्वाकांक्षी प्रवृत्तियों के कारण झगड़े उत्पन्न होने लगे। जहाँगीर का स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। नूरजहाँ को भय हुआ कि कहीं जहाँगीर की मृत्यु के बाद वह राज्य सत्ता से पृथक न करदी जाय। वह यह पद मृत्युपर्यन्त तक चाहती थी। जहाँगीर के बाद शाह बनने की योग्यता शाहजादे खुर्रम में ही थी और खुर्रम नूरजहाँ के प्रभाव में रहने वाला व्यक्ति नहीं था। अतः नूरजहाँ खुर्रम को राज्य प्राप्ति से दूर रखने के लिए योजनाएँ बनाने लगी। जहाँगीर का सबसे छोटा पुत्र शहरयार था। वह अयोग्य और निकम्मा था। उसे राज्य का उत्तराधिकारी बना कर नूरजहाँ स्वयं शासन करना चाहती थी। इसके अलावा नूरजहाँ और खुर्रम धार्मिक दृष्टि से एकमत नहीं हो सकते थे। नूरजहाँ शिया मत की थी तो खुर्रम सुन्नी^३। अतः शहरयार को राज्यारूढ करने की योजना को सफल बनाने के लिए उसने शेर-अफगन से उत्पन्न अपनी कन्या लाडली बेगम की शादी शहरयार से अप्रैल १६२१

१ टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८६ फुटनोट न० २।

२ सागर फूटचो जल बहचो, भ्रवकी करो जतन।

जातो गढ़ जहाँगीर को, राख्यो राव रतन ॥ टाड पृ० १४८६।

३ डा० धाशीर्वादीलाल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३२३-३२४।

ई० में करदी। शहरवार ८००० जात व ४००० सवार का मनसबदार बनाया गया। इसा वष नूरजहाँ क भावा-पिता का देहांत हो गया। ये दोनों व्यक्ति नूरजहाँ की निरकुशता को रोके हुए थे। नूरजहाँ का भाई आसफखान सुर्रम का स्वसुर था इसलिए उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था। सुर्रम और नूरजहाँ की घनबन के कारण राज्य क्षति सिधिल होने लगी और ठीक इसी समय फारस के शाह ने १६२२ ई में कंधार पर अधिकार कर लिया।

कंधार की पुन प्राप्ति का उत्तरदायित्व सुर्रम पर सौंपा गया परन्तु वह इस योजना को नूरजहाँ का पड़पन्न समझ कर अपनी सुरक्षा के लिए सेना पर पूरा नियन्त्रण पभाव पर अधिकार व रणधम्मोर के किले को प्राप्त करता चाहा। सुर्रम की यह मांग नूरजहाँ के लिए चुनीदी थी अब उसने शहरवार को कंधार-विजय का भार सौंपा। घोसपुर की हाकिमी क लिए भी नूरजहाँ और सुर्रम में मनमुटाव था। सुर्रम की और से दरियासाँ व शहरवार की ओर से शरीफ-उल-मालिक घोसपुर की हुकूमत पर अधिकार करने चले। दोनों में मुठभड़ हो गई। नूरजहाँ ने सारा दोष सुर्रम का धतला कर जहाँगीर को सुर्रम से पूचक कर दिया। इसी समय नूरजहाँ ने काबुल से महावतखान को बुला भेजा। उसके पद में वृद्धि की गई। साहजादा परब्रज को बंगाल से बुला लिया गया। इसी समय सुर्रम ने विद्रोह का झण्डा सड़ा कर दिया। माण्ड का अपना मुख्य केन्द्र बनाया। मेवाड़ के राजा से पगड़ी-बदल भाईकारा स्थापित किया। उसके राजकुमार भीमसिंह को अपना सेनापति बनाया।

ऐसी स्थिति में बुन्दी का राज रतन तथा कोटे का हृदयमारायण नूरजहाँ व जहाँगीर की सहायता को पहुँचे। राज रतन के साथ उसके दो पुत्र माधोसिंह व हरिसिंह भी थे। सुर्रम के विरुद्ध महावतखान व साहजादा परब्रज भेजा गया। परब्रज को ४ जात व ३० सवार का मनसब दिया गया। माण्ड के घेरे में राज रतन भी शामिल था। सुर्रम हार कर भाग गया। वह नर्मदा पार कर घसीरगढ़ की ओर चला। सुर्रम ने राज रतन को मध्यस्थ बना कर संधि की बातचीत करनी चाही परन्तु सर्वे ठग नहीं होने के कारण सुर्रम को भाग कर

१ विद्रोह की धजा पहच कर सुर्रम ने पहले पागरा भेजा चाहा पर १६२३ ई में बिलोनपुरे में उसकी हार हुई। उपरोक्त, पृ ३२३।

२ ईश्वरीप्रसाद : ए डार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रज इन इण्डिया पृ ३१४-३१५।
पोरीसकर शोध राजपूताने का इतिहास भाग १ पृ ७२३।

३ शैलीप्रसाद जहाँगीर पृ ३००।

असीरगढ के किले में शरण लेनी पड़ी। अपने कुटुम्ब को वही छोड़ कर वह बुरहानपुर चला गया। उसने अहमदनगर से मलिक अश्वर की सहायता प्राप्त करनी चाही परन्तु उसे सहायता न मिली। मुगल-राजपूत सेना ने बुरहानपुर घेर लिया। खुर्रम भाग कर गोलकुण्डा पहुँचा। बुरहानपुर विजय का मुख्य श्रेय राव रतन को दिया गया। अतः उसे बुरहानपुर का हाकिम नियुक्त किया गया। उसके दोनो पुत्रो ने भी युद्ध में भाग लिया था। गोलकुण्डा से खुर्रम उडीसा होकर बगाल पहुँचा। वहाँ स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की। उसके सेनापति भीमसिंह सिमोदिया ने बिहार पर अधिकार कर लिया। विद्रोही सेना भीमसिंह के नेतृत्व में इलाहाबाद की ओर बढ़ने लगी। इस पर जहाँगीर ने दक्षिण से महावतखा और परवेज को खुर्रम का रास्ता रोकने के लिए बुला भेजा। परवेज ने बुरहानपुर के पास के इलाको का शासक राव रतन को नियुक्त किया। हृदयनारायण परवेज के साथ पूर्व की ओर खुर्रम के विरुद्ध गया। भूसी के स्थान पर खुर्रम हार कर भाग गया। हृदयनारायण भी युद्ध के समय भाग चुका था अतः जहाँगीर ने उससे कोटा छीन कर अस्थायी रूप से राव रतन को सौंप दिया।

ज्योही महावत खा और परवेज दक्षिण से हटे, अहमदनगर के मलिक अश्वर ने शाही सेना पर हमला करना आरम्भ किया। पर राव रतन ने बुरहानपुर पर शाही अधिकार बनाए रखा। भूसी के युद्ध में हार कर खुर्रम पुनः उडीसा, तेलगाना और गोलकुण्डा होता हुआ अहमदनगर पहुँचा। इस बार मलिक अश्वर से मित्रता स्थापित हो गई। दोनो ने बुरहानपुर का घेरा डाल दिया। घोर संग्राम हुआ। राव रतन ने अत्यन्त कठिनाई में होते हुए भी विजय प्राप्त की। महावत खा व परवेज पुनः दक्षिण की ओर चले। इस पर खुर्रम ने घेरा उठा लिया। इस युद्ध में राव रतन को बहुत सा धन प्राप्त हुआ। शत्रु के ३०० सैनिक कैद कर लिए गए। माघोसिंह व हरिसिंह युद्ध करते हुए घायल^२ तो अवश्य हुए परन्तु माघोसिंह की सेवाओं से प्रसन्न होकर जहाँगीर ने १६२४ ई० में कोटा का राज्य माघोसिंह के नाम पर स्वीकार करने की अनुमति देदी।

बुरहानपुर से हार कर खुर्रम दक्षिण की ओर भागने लगा परन्तु इसमें

१ खफीखी जिल्द १, पृ० ३४८।

टाड राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १४८७।

२ इलियट डारमन जिल्द ६, पृ० ३६५ तथा ४१८।

बघभास्कर जिल्द ३, पृ० २४८७, २५००—०४

वह सप्तम न हो सका। वह बंद कर लिया गया^१। राव रतन व महावतसां दोनों ही बुरहानपुर के पासक नियुक्त हुए। महावतसां को जब गाड़ी दरबार में बुलाया गया तो राव रतन को बुरहानपुर का फौजदार बनाया गया^२। सुरम की देख रेख का भार हरिसिंह पर छोड़ा गया परन्तु उसका व्यवहार सुरम के साथ नीकरोँ जसा था। इस पर माधोसिंह को यह कार्य सौंपा गया। माधोसिंह ने उसके साथ मित्रता व प्रेम का व्यवहार रख कर सुरम की अपनी घोर कसबिया^३। मार्च १२ १६२६ को मुरजहाँ ने सुरम को यह आदेश देकर दामा देनी चाही कि रोहतासगढ़ व असीरगढ़ के दुर्ग अहाँगीर को सौंप दे। उसने यह स्वीकार किया परन्तु दिल्ली में हाजिर न होने की आज्ञा चाही। आज्ञा न मिलने पर सुरम बुरहानपुर को बंद से भाग लाड़ा हुआ। राव रतन व माधोसिंह का इस घटना में हाथ रहा हो क्योंकि भागने के पूर्व सुरम ने राव रतन को पत्र लिखा कि कारागार में माधोसिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रखा है और मातृक गमग्रह है। मैं इसको विशय राय देकर सम्मानित करूँगा^४।" इस घटना का उत्सव वहाँ नहीं मिसना है। बंगमास्कर ने रघविता सुरमस मिथन की बस्वता हो सकती है पर सुरम ने दाहज्जती वसते ही हरिसिंह को बुसा भजा। इस भय से, वहीं पुराने व्यवहार के कारण उसे दण्ड प्राप्त न हो इसलिए राव रतन ने उसे उपरिपठ नहीं किया। इस पर दाहज्जती ने सूनी के ८ परगनों को जप्त कर लिया।

जहाँगीर बादमीर में सीटता हुआ ताहोर के पास ७ मघ्यर १६२७ ई० को मर गया। सुरम ने अपने स्वगुर भागज्जती को सहायता से दिल्ली को राज्य गद्दी प्राप्त करनी। यह दाहज्जती व भाग से १६२८ ई० में गिहातनाम्न हुआ। राव रतन ने दाहज्जती व माधोसिंह को सेवार्यों की चार ध्यान प्राकृतित किया। दाहज्जती ने जोर राज्य का परमान माधोसिंह के नाम पर कर लिया^५। राव रतन ने सूनी के आठ बरगने भी माधोसिंह को दे दिए। राव रतन के देशान्त व बाद (१६३१ ई०) माधोसिंह ने अपना राज्याभिषेक किया और महाराजाधिराज की व वीं प्राण्य की। इस समय पर दाहज्जती ने माधोसिंह को गिलमत प्रदान की और उगवो २५०० आग व २२०० गमारों का ममगददार बना लिया। इस तरह काग का स्वगुर राज्य मुल्क राजधानी की देन बहा जा गयता है।

१ बल्लभसिंह की १३ वीं २०११।

२ इतिहास राजपूताने की १६ वीं ५५३ पृष्ठ ११३।

३ बल्लभसिंह की १३ वीं ५५३ पृष्ठ ११३-११४।

४ इतिहास ५ ११३ पृष्ठ ११३।

५ इतिहास राजपूताने की १६ वीं ५५३ पृष्ठ ११३।

माधोसिंह की मुगल साम्राज्य-सेवा.—गव माधोसिंह अपनी राज्य-भक्ति के कारण शाहजहाँ का कृपापात्र बन गया। अब तक शाही दरवार में जोधपुर, जयपुर, बीकानेर व जैमलमेर आदि राजपूताने की रियासतों के शासकों का ही प्रभाव था परन्तु प्रथम बार बून्दी और कोटा के हाडा राजपूतों ने साम्राज्य-सेवा में प्रवेश कर शाहजहाँ व उनके बाद की मुगल राजनीति को प्रभावित करना शुरू किया। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठते ही उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा। पहला विद्रोह खानजहा लोदी का था जिसने १६२८ ई० में दक्षिण में बालघाट की सूवेदारों से हटाने पर विद्रोह कर दिया। धौलपुर के पास युद्ध में माधोसिंह हाडा के नेतृत्व में मुगल सेना से वह हार गया। खानजहा इस पर दक्षिण की ओर भाग गया और निजाम शाही सुल्तानों से वह मिल गया। माधोसिंह ने खानजहाँ का पीछा किया। उज्जैन के पास पुनः दोनों की सेनाओं में भिडन्त हुई। वह बुन्देलखंड जा पहुँचा। वहाँ जुभारसिंह बुन्देला भी शाहजहाँ के विरुद्ध विद्रोही हो रहा था। खानजहाँ कालिन्जर के उत्तर में तालसिंघाड़े के पास मुगल सेना से थिर गया। इस युद्ध में माधोसिंह हाडा ने खानजहाँ को अपनी बर्छी से छेद दिया। उसके दोनों पुत्रों के टुकड़े कर डाले गए। तीनों के सिर बादशाह के समक्ष नजर किए गए^१। शाहजहाँ ने इस विजय के उपलक्ष्य में जीरापुर, खैराबाद, चेचट और खिलचीपुर के चार परगने माधोसिंह को दिए और उसे तीनहजारी मनसबदार बना दिया^२।

शाहजहाँ के समय वीरसिंह बुन्देला के पुत्र जुभारसिंह ने भी अपनी स्वतंत्र इकाई के लिए मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। विद्रोह का मुख्य कारण उससे बुन्देलखण्ड के हिमाव की जाच की आज्ञा कहा जाता है। इसे अपना अपमान समझ कर १६३५ ई० में उसने ओरछा में स्वतन्त्र ध्वजा फहरा दी। इस विद्रोह को दवाने के लिए शाहजहाँ ने माधोसिंह हाडा से सहायता की आशा की। माधोसिंह १५०० हाडा सैनिकों को लेकर बुन्देला-विद्रोह दवाने चला। जुभारसिंह पर उसने शानदार विजय प्राप्त की, इससे मुगल दरवार में माधोसिंह की प्रतिष्ठा

१ वादखाननामा जिल्द १, भाग २, पृ० ३४८-५०, वसुभास्कर तृतीय भाग, पृ० २५६५। डा ए एल श्रीवास्तव लिखते हैं कि खानजहाँ लोदी बादा जिले के सिंहमवा नामक स्थान पर पकड़ा गया और मारा गया। (मुगलकालीन भारत पृ० ३५१), इलियट व डालसन जिल्द ७, पृ० २०-२२।

२ ठाकुर लक्ष्मणदास ने कोटा राज्य की रूपाय में इस वीरता के उपलक्ष्य में माधोसिंह को १७ परगने देना लिखा है। फारसी तवारीखों में इसका उल्लेख नहीं है। पर माधोसिंह की मृत्यु के समय कोटा राज्य में ये परगने सम्मिलित थे। डा० एम एल शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० ११२।

बहु सफल न हो सका। यह बंद कर लिया गया। राव रतन व महावतसाँ दोनों ही बुरहानपुर के घासक नियुक्त हुए। महावतसाँ को जब चाही बरबार में बुलाया गया तो राव रतन को बुरहानपुर का फौजदार बनाया गया^१। सुरम की देस रेस का भार हरिसिंह पर छोड़ा गया परन्तु उसका व्यवहार सुरम के साथ नीकरोँ असा था। इस पर माघासिंह को यह बाय सौंपा गया। माघासिंह ने उसके साथ मित्रता व प्रेम का व्यवहार रख कर सुरम को अपनी घोर कर लिया^२। माघ १२ १६२६ को नूरजहाँ ने सुरम को यह आदेश देकर समा देनी चाही कि रोहतासगढ़ व घसीरगढ़ के दुर्ग जहाँगीर को सौंप दे। उसने यह स्वीकार किया परन्तु दिस्ती में हाजिर न होने की आज्ञा चाही। आज्ञा न मिसने पर सुरम बुरहानपुर की बंद से भाग लडा हुआ। राव रतन व माघासिंह का इस घटना में हाथ रहा ही क्योंकि भागने के पूर्व सुरम ने राव रतन को पत्र लिखा कि कारागार में माघासिंह ने मुझे बहुत आदरपूर्वक रखा है और मासिक समझ है। मैं इसको विषय राग्य देकर सम्मानित करूँगा^३।" इस घटना का उस्तप नही महीं मिसता है। बघभास्कर के रचविठा सूर्यमल मिथण की कल्पना हो सकती है पर सुरम ने दाहज्जादा बमते ही हरिसिंह को बुला भजा। इस भय से, कहीं पुराने व्यवहार के कारण उसे बण्ड प्राप्त न हो इसलिए राव रतन ने उसे उपस्थित महीं किया। इस पर दाहज्जा ने बूंदी के न परपनों को बण्ड कर लिया।

जहाँगीर बादमीर ग सीटता हुआ साहोर क पास ७ नवम्बर १६२७ ई० को मर गया। सुरम ने अपने स्वगुर आसफजहाँ की सहायता से दिस्ती की राग्य गद्दे प्राप्त करली। वह दाहज्जा के नाम से १६२८ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। राव रतन ने दाहज्जा के माघासिंह को संवार्धा की घोर ध्यान प्रावणित किया। दाहज्जा ने बाजे राग्य का परमान माघासिंह के नाम पर कर दिया^४। राव रतन ने बूंदी के आठ परगने भी माघासिंह को दे लिए। राव रतन के देहान्त क बाद (१६३१ ई०) माघासिंह ने अपनी राग्याभियन किया और महाराजाधिराज की पदयो प्राण की। इस अवसर पर दाहज्जा ने माघासिंह को गिन्सभत प्रदान की और उसको २५ आत व २५०० गवारों का समगबदार बना दिया। इस तरह बौटा का स्वगुन्य राग्य मुगल राजनीति की देन कहा जा सकता है।

१ बघभास्कर मिश्र ३ पृ २५६६।

२ इमिबट साउमन मिश्र १ पृ ४१४-४१५।

३ बघभास्कर मिश्र ३ पृ २५१-२५१२।

४ इमिबट पृ १२२३-२५।

५ बघभास्कर मिश्र ३ पृ २५६-२५७।

थे। दोनों ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नहीं था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महगी पड़ रही थी। अतः उसने औरगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो सधि कर लेना। बाध्य होकर औरगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पड़ा। इस लौटती हुई सेना पर उजबगो ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महगी पड़ी। कई करोड़ रूपयों की हानि के बाद भी मुगलों ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नहीं की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बालख से लौटने पर राव माधोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० में कोटे में हो गई। माधोसिंह मरते समय ३००० का मनसबदार था^१। बालख और बदकशा आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमशः ८०० और ४०० के मनसबदार थे^२।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४९ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा में बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखा ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलों को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० में फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४९ व १६५२ में औरगजेब के नेतृत्व में और १६५३ ई० में दारा के नेतृत्व में। तीनों बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया^३।

मुकुन्दसिंह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारों पुत्रों—दारा, शुजा, औरगजेब व मुराद में राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ^४। दारा ने औरगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौर्जे

१ अब्दुलहमीद जिल्द २, पृ० ७२२, डा० एम एल शर्मा, कागडा-विजय के बाद माधोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुशी मूलचन्द पृ० ९६।

३ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२, परन्तु इनायतखा ने कन्धार के घेरे के वरान में मुकुन्दसिंह को कहीं उल्लेख नहीं किया है (शाहजहाँनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए एल श्रीवास्तव मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

बढ़ने लगी। १६४१ ई० में पञ्जाब में कांगड़ा में विद्रोह हुआ। वहाँ के सूबदार जगसिंह ने मुगलार्ह सार्वभौमिकता से अपने की स्वतन्त्र कर लिया। शाहजहाँ मुराद के नेतृत्व में कांगड़ा पर आक्रमण करने के लिए एक बहुत बड़ी सेना भेजी गई। माघोसिंह भी मुराद के साथ चला। आक्रमण की सफलता के बाद माघोसिंह के मतसब में ५ की वृद्धि की गई।

कोटा के हाड़ा शासकों ने मुगल शक्ति को मध्य एशिया तक पहुँचाने में पूर्ण मदद की। शाहजहाँ मुगलों की मासूमि समरकन्द पर अधिकार करने की योजना निमित्त की। इसी समय समरकन्द की राजनैतिक स्थिति मुगल आक्रमण के पक्ष में थी। समरकन्द के शासक इमामकुली के भाई नजरमोहम्मद ने काबुल पर अधिकार करने की कई बार चेष्टा की। उसकी इन हरकतों को रोकने के लिए सन् १६४५ ई० में शाहजहाँ स्वयं काबुल गया और समरकन्द विजय का भार मुराद को सौंपा। उसे २० ०० सैनिक-शक्ति दी गई। उस समय माघोसिंह साहोर में था। समरकन्द विजय में शामिल होने का उसे फरमान भेजा गया। काबुल पहुँचने पर माघोसिंह को हरावल में रखा गया। दाही सेना के ३ भाग कर दिए गए। एक भाग में रावराजा राघुनाथ दूसरे भाग में विट्ठलदास राठीर व तीसरे भाग का नेतृत्व माघोसिंह को दिया गया। इस सना ने कन्दल के किले पर २२ जून को आक्रमण कर अधिकार कर लिया। २ जुलाई १६४६ को बाल्त में यह सेना प्रवेश करण लगी। नजरमोहम्मद भाग गया। उसका कुटुम्ब गिर पतार कर लिया गया। सारा शहर लूट लिया गया। प्रतुस धन प्राप्त कर तिरमिज पर अधिकार हो जाने पर मुराद बिना दाही आजा के भारत सोट थाया। बाल्त की रक्षा का भार माघोसिंह हाड़ा को सौंपा गया। मुराद की अनुपस्थिति में नजरमोहम्मद और सुराम के शासक अय्युसखजीब ने बाल्त सेना पाहा परन्तु माघोसिंह न बाल्त और उसके आसपास के क्षेत्रों से मुगलों का अधिकार नहीं हटने दिया। इसी बीच शाहजहाँ ने औरंगजेब को प्रतिरिक्त सना देवरबाल्त भजा। मार्ग में राजुमों को हराता हुआ औरंगजेब ०५ मई सन् १६४७ ई० को बाल्त पहुँचा। शाहजहाँ से माघोसिंह व लिए आही के आसपासों से असहृष्ट एक छोड़ा भजा। औरंगजेब ने भी बाल्त की किलेदारो माघोसिंह पर छोड़ दिया ताप म दाही राजाला रसद प्रादि का भार भी छोड़ कर औरंगजेब नजरमोहम्मद को पूर्ण सिवस्त देने चला। जभा नजरमोहम्मद विजयी हुआ तो जभी औरंगजेब। ७ जून १६४७ ई० को बाल्त क पाठ भयकर युद्ध हुआ। हमें बाल्त बदवगी का सामना अय्युसखजीब व कई उजबक शरदार सामिल

थे। दोनों ओर से शान्ति-प्रयास किया। नजरमोहम्मद इसके लिए तैयार नहीं था। शाहजहाँ के लिए मध्य एशिया-विजय महंगी पड़ रही थी। अतः उसने औरगजेब को लिखा कि यदि नजरमोहम्मद क्षमा-याचना करले तो सधि कर लेना। बाध्य होकर औरगजेब ने नजरमोहम्मद से सन्धि कर १० नवम्बर १६४७ ई० को काबुल लौट जाना पड़ा। इस लौटती हुई सेना पर उजबेगो ने कई बार आक्रमण किया। मध्य एशिया की नीति शाहजहाँ के लिए महंगी पड़ी। कई करोड़ रूपयों की हानि के बाद भी मुगलों ने एक इन्च की भूमि प्राप्त नहीं की। उनकी प्रतिष्ठा को धक्का लगा। बाल्ख से लौटने पर राव माघोसिंह की मृत्यु सन् १६४८ ई० में कोटे में हो गई। माघोसिंह मरते समय ३००० का मनसबदार था^१। बाल्ख और वदकशा आक्रमण के समय उसके दो पुत्र मोहनसिंह व किशोरसिंह साथ थे जो क्रमशः ८०० और ४०० के मनसबदार थे^२।

मुकुन्दसिंह और मुगल—सन् १६४६ ई० में राव मुकुन्द कोटे की गद्दी पर बैठा। शाहजहाँ ने उसे खिलअत दी व उसे ३००० का मनसबदार बनाया। गद्दी पर बैठते ही उसे मुगल-सेवा में बुला लिया गया। १६२३ ई० में शाह अब्बास, फारस सुल्तान ने कन्धार को अपने अधिकार में कर लिया था। १६३५ ई० में कन्धार के सूबेदार अलीमर्दनखा ने शाह अब्बास से क्रोधित होकर कन्धार मुगलों को सौंप दिया परन्तु १६४८ ई० में फारस के शासक ने पुनः कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ ने तीन बार कन्धार लेने का प्रयत्न किया। सन् १६४६ व १६५२ में औरगजेब के नेतृत्व में और १६५३ ई० में दारा के नेतृत्व में। तीनों बार असफलता प्राप्त हुई। मुकुन्दसिंह ने कन्धार-प्राप्ति के लिए दारा की हरावल में युद्ध में भाग लिया^३।

मुकुन्दसिंह के समय सन् १६५७ ई० में शाहजहाँ के चारों पुत्रों—दारा, शुजा, औरगजेब व मुराद में राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध हुआ^४। दारा ने औरगजेब व मुराद के विरुद्ध जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह को भेजा। मुकुन्दसिंह को भी शाही फरमान प्राप्त हुआ कि जसवन्तसिंह की सहायता के लिए फौजें

१ अब्दुलहमीद जिल्द २, पृ० ७२२, डा० एम एल शर्मा, कागडा-विजय के बाद माघोसिंह को ४५०० का मनसबदार लिखते हैं (कोटा राज्य का इतिहास, भाग १, पृ० १३०)

२ मुशी मूलचन्द्र पृ० ६६।

३ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, जिल्द १, पृ० १४२, परन्तु इनायतखा ने कन्धार के घेरे के वर्णन में मुकुन्दसिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया है (शाहजहाँनामा, पृ० ८८)।

४ डा० ए एल श्रीवास्तव • मुगलकालीन भारत, पृ० ३७२-३८०।

भेजे। मुकुन्दसिंह ५००० सैनिकों और अपने भाई मोहनसिंह, जूमरसिंह की राय और किशोरसिंह को साथ लेकर जसवंतसिंह से जा मिला। धर्मत के स्थान पर मुगल राजपूत सेना ने श्रीरंगजेव मुराद की सेना का सामना किया। मुकुन्दसिंह ने उसके भाई युद्ध करते हुए मारे गए। सबसे छोटा भाई किशोरसिंह घायल होकर युद्धक्षेत्र में गिर पड़ा^१। जसवंतसिंह जोधपुर भाग गया। श्रीरंगजेव ने इस युद्ध के बाद इस स्थान का नाम पत्तोहावाद रखा।

श्रीरंगजेव ने कोटा के हाड़ा शासक—शाहजहाँ के पुत्रों में राज्य प्राप्ति के युद्ध में श्रीरंगजेव सफल हुआ। २१ जुलाई १६५८ को दिल्ली के सिंहासन पर वह बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने राजपूत शासकों के प्रति मित्रता की नीति अपनायी। यद्यपि कोटा का राजा मुकुन्द उसके विरुद्ध धर्मत के युद्ध में लड़ा था फिर भी गद्दी पर बैठते ही उसने राजा मुकुन्द के उत्तराधिकारी जगतसिंह को दिल्ली बुला बना। जगतसिंह श्रीरंगजेव के परमान को पाकर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। उस समय श्रीरंगजेव दारा का पीछा करता हुआ पंजाब की ओर गया हुआ था। जगतसिंह भी पंजाब की ओर चला। सतलुज के समीप जगतसिंह ने श्रीरंगजेव से मुलाकात अक्टूबर १६५८ ई० की की। इस अवसर पर श्रीरंगजेव ने सिमरत देकर जगतसिंह को २०० का मनसबदार बनाया^२। पंजाब से लौट कर श्रीरंगजेव गुजरा की ओर चला। गुजरा शाहजहाँ का द्वितीय पुत्र था। बगाल का वह सूबेदार बनाया गया था। शाहजहाँ की बीमारी के समय वह वहाँ का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और दिल्ली प्राप्ति के लिए दारा के विरुद्ध लड़ गया परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। समूगढ़ के मैदान में दारा श्रीरंगजेव से हार गया। वह पंजाब की ओर भागा। श्रीरंगजेव ने उसका पीछा किया। इसका लाभ उठा कर गुजरा ने दिल्ली सेने का पुन प्रयास किया। वह दिल्ली की ओर बढ़ा। श्रीरंगजेव दारा का पीछा छोड़ गुजरा को रोकने के लिये आगरे की ओर गया। कोटा के शासक जगतसिंह हाड़ा ने उसके भाचा किशोर सिंह हाड़ा को दाही करमान प्राप्त हुआ कि वे गुजरा को आगरे की तरफ बढ़ने से रोके। सजुहा के रणक्षेत्र में गुजरा से अत्यन्त युद्ध हुआ। जोधपुर नरेश इस युद्ध में श्रीरंगजेव का साथ दे रहा था परन्तु गुप्त रूप से वह गुजरा के पक्ष में योजना बना रहा था अतः युद्ध के पहलू ही उषाकाल के समय दाही पीछ को लुटता हुआ वह आगरे की तरफ चला गया। जगतसिंह ने श्रीरंगजेव का साथ

१ आधुनिकगीरनामा पृ ५६ ५७ टाड राजस्थान भाग ३ पृ १५ २२।

२ बंधुभाण्डर तृतीय भाग पृ ९७ ९८ टाड राजस्थान विस्व ३ पृ १५२३।

३ सरकार दिल्ली की श्रीरंगजेव विस्व ९ पृ १३३ १३४।

नहीं छोड़ा। विजयश्री औरगजेब को हाडा राजपूतो की वीरता के कारण प्राप्त हुई।

राजपूतो का सहयोग पाकर औरगजेब ने अपनी शक्ति को सुदृढ करली। परन्तु शीघ्र ही वाद मे कट्टर सुन्नी होने के कारण वह राजपूतो को दूर रख कर मुसलमानी शासन व्यवस्था के आधार पर राज्य करने लगा। हिन्दुओ के विरुद्ध ध्वसात्मक नीति अपनाई गई। जब उसने १६७६ ई० मे मारवाड पर आक्रमण किया^१ तो राजपूताने के राजपूत शासको को यह मुगलाई चुनौती थी परन्तु फिर भी कोटा के शासक जगतसिंह ने मुगलाई सेवा मे तन, मन, धन लगा दिया। दक्षिण मे शिवाजी के विरुद्ध मुगल शक्ति को हाडा राजपूतो से सशक्त करने का भार उस पर सौंपा गया। जगतसिंह औरगाबाद मे रह कर दक्षिणी युद्धो मे भाग लेने लगा। मारवाड मे औरगजेब ने मन्दिर-ध्वस करने की नीति अपनाई। कोटे का शासक अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति का था। अत कही औरगजेब की इस नीति का शिकार उसके गृह-देवता श्रीनाथजी का मन्दिर नहीं हो जाय, उसके लिए उसने अपने मन्त्रियो को सूचना भेजी कि श्रीनाथजी की प्रतिमा बोरावा के स्थान पर सुरक्षित की जावे। जगतसिंह दक्षिण मे हैदराबाद के घेरे के युद्ध मे लडता हुआ मारा गया^२। सम्भवतः उसकी मृत्यु सन् १६८३ ई० मे हुई हो^३।

जगतसिंह के कोई पुत्र न होने के कारण उसका चाचा किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। वह मुगल सेवा मे रहता आया था। खज्हा के रणक्षेत्र मे शुजा के विरुद्ध उसने युद्ध किया। दक्षिण मे मराठो के विरुद्ध मुगलाई स्वामी-भक्ति का परिचय उसने दिया। बीजापुर, गोलकुण्डा को विजय करने के लिए उसने मुगलो के लिए हाडा-रक्त बहाया। राज्याभिषेक के कुछ समय पहले ही उसे एक हजार का मनसब प्राप्त हुआ था। राज्याभिषेक के बाद दक्षिण की ओर वह प्रस्थान करने लगा। वह अपने सब पुत्रो को अपने साथ ले जाना चाहता था परन्तु उसके ज्येष्ठ पुत्र विशनसिंह ने मुगल सेवा मे रहने से इन्कार कर दिया। इस पर किशोरसिंह ने उसे राज्य-च्युत कर दिया और अन्ते का जागीरदार बना दिया।

१ जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह की मृत्यु १६७८ ई० मे जमरूद (काबुल के पास) मे हो जाने के कारण मारवाड की गद्दी पर उसका पुत्र अजीतसिंह शासक घोषित किया गया परन्तु औरगजेब ने इमे स्वीकार न कर मारवाड को अपने अधीन कर लिया।

२ टाड राजस्थान जिल्द ३, पृ० १५२३।

३ टाड के अनुसार इसकी मृत्यु सम्बत् १७२६ वि० स० को हुई परन्तु सम्बत् १७४० मे दक्षिण के एक फरसि की जमानत देने का उल्लेख राजकीय कागजो से प्राप्त हुआ है अत सम्बत् १७४० के पासपास वह जीवित था।

बीजापुर के घेरे में किशोरसिंह ने भीरंगजेब का पूर्ण विश्वास जीत लिया था। इब्राहिमगढ़ भीर हूवरवाव के घेरे में जगतसिंह ने मुगसाई-शक्ति का रुढ़ बनाया था। मराठा शासक धमाजी से रायगढ़ व वसन्तगढ़ छीनने में कोटा के महाराव का प्रमुख हाथ रहा। जिस समय दक्षिण में भीरंगजेब युद्ध कर रहा था उत्तर में जाटों ने चिड़ोह कर दिया। शाहजादा बेदारबख्त व किशोरसिंह जाटों के चिड़ोह का दमाने के लिए भेजे गए। सन् १६८८ ई. में वह पुनः दक्षिण की ओर बढ़ा गया और अर्काट में राजाराम भोंसले से युद्ध करता हुआ घायल हो गया। टाइल का कथन है कि किशोरसिंह दक्षिण में अर्काट के किने पर दीवार चढ़ते हुए गिर कर मर गया था। शिवाजी का द्वितीय पुत्र राजाराम जिन्बी में रूढ़ करता था। मुगल सेनापति बुल्फिकारखाने ने जिन्बी का घेरा बाल कर राजाराम को मुगलाई अभीमता स्वीकार करने के लिए बाध्य करने लगा। यह घेरा कई बरों तक चला रहा। जिन्बी के क्षेत्रों में अर्काट पर मुगसाई अधिकार करने में किशोरसिंह ने प्रमुख सहायता दी। जिन्बी में मुगलों की सफलता अत्यन्त कठिनाई से हो रही थी। मुगल सेनापति बुल्फिकारखाने अर्काट में घेरण लेकर जिन्बी युद्ध का संचालन करता रहा। मरने के समय किशोरसिंह चारहजारी मनसबदार था।

किशोरसिंह के मरते ही सन् १६९५ ई० में कोटा गद्दी के लिए उसके पुत्रों में गृह-युद्ध छिड़ गया। ज्येष्ठ पुत्र विश्वसिंह ने अपना अधिकार प्रस्तुत किया। भीरंगजेब ने रामसिंह को कोटा का शासक स्वीकार कर उसे ३००० का मनसबदार बनाया। मुगसाई सहायता से रामसिंह कोटा के इस गृह-युद्ध में सफल हुआ। सन् १६९६ ई० में रामसिंह का राज्याभिषेक हुआ। वह पुनः दक्षिण की ओर चला गया। कर्नाटक में मरती को अपना गृह-जेन्द्र बना कर मुगल सेना को सहायता देने लगा। दक्षिण में रहते रामसिंह ने मराठा शासक राजाराम से मित्रता स्थापित करली। जब राजाराम जिन्बी के किने में घिर गया और उसके सेनापतियों सत्ताजी घोरपड़े व धन्नाजी जादव में सभर्ष होने शुरू हुए तो राजाराम ने बुल्फिकार से सीमा की जाती शुरू की। अगस्त सन् १६९७ ई० में राजाराम ने रामसिंह के मार्फत शान्ति प्रस्ताव मुगल सेनापति के पास भेजे। भीरंगजेब शान्ति के पक्ष में था। वह जिन्बी पर मुगसाई अधिकार चाहता था। राजाराम ने नेतृत्व व साहस की कमी होने के कारण एसी स्थिति में जिन्बी से भाग निकला और अपने कुटुम्ब को वहीं छोड़ दिया। जिन्बी पर १६९८ ई.

पै मुगलो का अधिकार हो गया । रामसिंह ने राजाराम के कुटुम्ब की रक्षा कर उन्हें उत्तर में राजाराम के पास भिजवा दिया । इसके बाद औरगजेव की मृत्यु तक रामसिंह दक्षिण में ही रहा । वहाँ शाहजादा आजम से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया ।

औरगजेव की मृत्यु अहमदनगर में मार्च १७०७ ई० को हुई । उसकी मृत्यु के बाद दिल्ली सिंहासन के लिए शाहजादा आजम और मुअज्जम में युद्ध की सम्भावना बढ़ने लगी । दक्षिण में शाहजादा आजम ने अपने को सम्राट घोषित कर दिया^१ । रामसिंह ने उसे सम्राट स्वीकार कर उसे सहायता दी । मुअज्जम ने भी उत्तर-पश्चिम क्षेत्र से रवाना होकर १ जून १७०७ ई० को दिल्ली पर अधिकार कर लिया । औरगजेव की मृत्यु के समय रामसिंह जुल्फिकार के साथ कर्नाटक में था । वहाँ से वह चल कर २ अप्रैल को औरंगाबाद में आजम से मिला । १४ मई को शाही सेना के साथ सिरोज पहुँचा । सिरोज से जुल्फिकार व रामसिंह के नेतृत्व में ४५००० सेना चम्बल के थागो पर कब्जा करने के लिए भेजी गई । उधर मुअज्जम के पुत्र अजीम चम्बल के थागो पर अधिकार करने आ रहा था । रामसिंह व जुल्फिकार का नूराबाद^२ के पास चम्बल नदी पर अजीम से संघर्ष हुआ जिसमें अजीम का सेनानायक मोहताखा तोपें छोड़ कर भाग गया । मुअज्जम ने औरगजेव के वसियतनामों के अनुसार साम्राज्य का विभाजन कर राज्य करने की सन्धि करनी चाही पर आजम ने इसे स्वीकार नहीं किया^३ । बूदी से राव बुद्धिसिंह ने मुअज्जम का साथ दिया । इस प्रकार हाडा राजपूतों की दोनों शाखाओं ने प्रथम बार एक दूसरे के विरुद्ध लड़ना तय किया । वास्तव में दोनों राव 'पाटन' पर प्रभुत्व के लिए मुगलाई सहायता चाहते थे । आजम ने औरंगाबाद में रामसिंह को वचन दिया था कि "मुअज्जम की सहायता से बुद्धिसिंह ने तुमसे पाटन छीन लिया है, मैं तुमको बूदी देता हूँ । तुम मेरे पक्ष में लड़ो^४ ।" जून १८, १७०७ ई० को जाजव के रणक्षेत्र में औरगजेव के पुत्रों में संघर्ष हुआ । आजम हार गया व मारा गया^५ । रामसिंह भी इस युद्ध में

१ १४ मार्च १७०७ ई० ।

२ ग्वालियर से १६ मील उत्तर की ओर ।

३ इरविन लेटर मुगल्स, जिल्द १, पृ० २२ ।

४ वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २६४७ ।

५ जुल्फिकार भाग कर ग्वालियर चला गया और जयपुर नरेश जयसिंह अपने सिंग पर दुसाला लपेट कर चपके से मुअज्जम से जा मिला । (वशभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० २६८०-२६८३ ।

वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा गया। युद्ध की समाप्ति पर मुमज्जम के आदेश से रामसिंह का शव रमखेत्र से उठा कर मुराबाद लाया गया और वहाँ उसका बाह-संस्कार हुआ। रामसिंह मुगलों का तीनहजारी मनसबदार था तथा मुगल दरबार में वह अपने शीपखाने के कारण भड़वाया कहलाने लगा था।

मुगलों का पतन और कोटा के हाड़ा शासक—औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल राजनीति का दिवाला स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा। प्रांतीय शक्तियाँ स्वतंत्र होने लगी। केन्द्राय शक्ति में क्षिणितता आई और राज्य में ऐसा कोई कूटनीतिक नहीं था जो सही नेतृत्व दे सके। जाभव के युद्ध के बाद मुमज्जम विजयी हो बहादुरशाह के नाम पर दिल्ली सिंहासन पर बैठा। बूंदी के राज बूडसिंह ने बहादुरशाह से कोटे पर अधिकार करने का फरमान प्राप्त कर लिया^१। कोटा का रामसिंह व उसके उत्तराधिकारी मुमज्जम-बिगोधी होने के कारण कोटा को मुगलाई कोष से यथा न सके। बूडसिंह ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि आक्रमण कर नव शासक राव भीमसिंह से कोटा छीन से। बूडसिंह स्वयं अजपुर और बेंगु विवाह करने भला गया। बूंदी के मन्त्रियों ने दो बार कोटे पर बढ़ाई की परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। बहादुरशाह अधिक समय तक शासन न कर सका। फरवरी १७१२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद जहांदारशाह गद्दी पर बैठा। वह कुछ मास के लिए ही शासन कर सका क्योंकि सयद भाई अय्युला व हुसैनमली की सहायता से फर्रुखसियार ने फरवरी १७१३ में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

फर्रुखसियार के गद्दी पर बैठने पर राजनीतिक स्थिति में पसटा आया। बूडसिंह ने फर्रुखसियार को कोई सहायता नहीं दी। कोटा के राज भीमसिंह ने सैयद-अय्युलों का पक्ष लिया था। इस सहायता के बदले में पुरस्कारस्वरूप भीमसिंह को बूंदी पर अधिकार करने का मुगल फरमान दिया^२। भीमसिंह ने बूंदी पर आक्रमण कर उस पर सन् १७१३ ई के अंतिम माह में अधिकार कर लिया। भीमसिंह का बूंदी पर अधिक समय तक अधिकार न रह सका। अय्यसिंह की मध्यस्थता द्वारा बूडसिंह पुनः मुगल शासन का भ्रिय प्राप्त बन गया। बूंदी पर पुन बूडसिंह का अधिकार हो गया। वाराँ व मऊ के परगने भी बूडसिंह को दे दिए गए। भीमसिंह व बूडसिंह की शत्रुता का प्रसन्न फिर भी न हुआ। सन् १७१६ ई को सैयद-अय्युलों ने मराठी व राठोड़ी सहायता से फर्रुखसियार

१ अंगनाकर अगुर्ष भाग ५ २६६-६६८।

२ अंगनाकर अगुर्ष भाग ५ १४०-४२।

को गद्दी से उतार दिया। भीमसिंह ने बुद्धसिंह के विरुद्ध सैयद-भाइयो की सहायता प्राप्त की। भीमसिंह की मलाह पर, कि कहीं बुद्धसिंह और जयसिंह फरुखसियार का पक्ष न लें। अतः उनका काम तमाम कर देना चाहिए। सैयद वन्धुओ ने २२ फरवरी १७१६ ई० को फरुखसियार पर दवाव डाला कि जयसिंह व बुद्धसिंह को दिल्ली में चले जाने का आदेश दे दे। इसी दिन भीमसिंह ने बुद्धसिंह की हत्या करने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। बुद्धसिंह का दीवान व कई आदमी मारे गए। भीमसिंह को विजय प्राप्त हुई और बुद्धसिंह अपने वचेवचाएँ सैनिकों को लेकर सराय अलीवर्दीखा में जाकर जयसिंह का आश्रय प्राप्त किया^१। सैयदों का पक्ष ग्रहण करने से भीमसिंह का शाही दरवार में बहुत सम्मान बढ़ा। उसको पचहजारी मनमव दिया गया। बूंदी राज्य, पठार, माडलगढ से बूंदी तक के इलाके और खीचीपाडे तथा उमटवाडे का उसको पट्टा दे दिया गया^२। इसी अवसर पर गागरोण का किला भी उसे सुपुर्द किया गया। फरुखसियार को गद्दी से उतारने में (२८ फरवरी १७१६ ई०) भीमसिंह ने सैयद अजीतसिंह की सहायता की। उसके एक दिवस पहले २७ फरवरी को ही शाही किले पर अधिकार भीमसिंह व कुतुबमुल्मुल्क ने कर लिया था। फरुखसियार के बाद मुगलों की राजधानी दो दल—इरानी व तुरानी—में बंट गई। सैयद-वन्धुओ ने एक के बाद एक नया शासक मुगल गद्दी पर बैठाया। दक्षिण का सूबेदार निजाममुल्मुल्क सैयदों का प्रभाव नष्ट करने के लिए तैयारी करने लगा। इसी बीच में इलाहाबाद का सूबेदार छवेलाराम ने सैयदों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। राव राजा बुद्धसिंह ने छवेलाराम को दस हजार सैनिकों की सहायता दी। इस पर सैयदों ने भीमसिंह और दिलावरखा को १५००० सैनिक देकर बूंदी पर आक्रमण करने भेजा। १२ फरवरी १७२० के आसपास यह युद्ध हुआ, जिसमें ६००० राजपूत काम आए^३। इसी समय निजामुल्मुल्क दक्षिण से मालवा पहुँचा। सैयदों का हुकम आया कि दिलावरखा, भीमसिंह और गजसिंह का साथ लेकर वह अपनी सेना का पडाव मालवा प्रान्त की सीमा पर डाले। इस अवसर पर भीमसिंह को वचन दिया गया कि निजाम का दमन होने के पश्चात् उसको उच्च कोटि का महाराजा बनाया जावेगा,

१ खफीखा जिल्द २, पृ० ८०६

वशभास्कर के अनुसार यह युद्ध सन् १७१७ में हुआ। यह असत्य है, क्योंकि फारसी तवारीखों में सन् १७१६ ई० में फरुखसियार का राज्यगद्दी पर से उतरना लिखा है।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १५२८।

३ खफीखा जिल्द २, पृ० ८४४-८५१।

सासहजारी मनसब बी जावगी । साथ ही शाही मरतब भी मिलेगा^१ । भीमसिंह २००० राजपूतों सहित व गजसिंह ३०० राजपूतों सहित मुद्दसोन में जा डटा । पम्हार के स्थान पर १६ जून १७२० ई० को युद्ध हुआ । युद्ध के पहले निजाम न भीमसिंह को एक पत्र लिख कर अपनी घोर करना चाहता^२ परन्तु भीमसिंह अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहा । कोराई बोरसा के क्षत्र में युद्ध करते हुए तोप के गोले लगने के कारण उसकी मृत्यु हो गई । भीमसिंह मरने के समय पम्हजारी मनसबदार भा घोर उसे फर्रुखसिंहार ने महाराज की पदवी से विभूषित किया था ।

भीमसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजुनसिंह गद्दी पर बैठा । मुहम्मद शाह ने उसे खिलघत घोर मनसबनशीनी भजी । १७२ ई० में समद भाइयों का पतन हो गया । अजुनसिंह सैयदों का खैरखाह होने से मुहम्मदशाह ने उसे कोई उरककी नहीं दी । अजुनसिंह के बाद दुर्जनशाह कोटे का शासक हुआ । इस समय मुगल शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चली थी । प्रांतीय शक्तियों को स्वतन्त्र होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हो रहा था । जयपुर का जयसिंह वृहत् जयपुर-निर्माण का स्वप्न देखने लगा । उसने भूमी व जोटा पर अधिकार करने का प्रयास किया । मुगल शक्ति इन राजपूत शासकों की अनुशासनहीनता को दबाने में अशक्त थी । वशिष्ठ में मराठे क्षत्त्रिशाही हो रहे थे । वे मुगल शक्ति के प्रयत्नों पर हिम्मतवादी भावशाही की स्थापना में ससज्ज थे । राज दुर्जनशाह कोटा का अन्तिम शासक था जिसने मुगलों से सन्ध बनाए रखा । मुहम्मदशाह ने राज दुर्जनशाह को टीके का हाथी खिलघत तथा मनसबनशीनी भजी । दुर्जनशाह जब दिल्ली गया तो वहाँ का गौवध उसे बुरा लगा । उसने शाही कोसबाल और कसाइयों को मार डाला पर बादशाह ने उसको कोई दण्ड नहीं दिया ।

इसी समय मराठे उत्तर भारत में मासबा व बुन्देससम्बन्ध से प्रवेश कर रहे थे । मासबा का सूबदार जयसिंह मराठों को राकने में असफल हो रहा था । १७३५ ई० में वजीर कमरुद्दीन व खानदीरान को बुन्देससम्बन्ध व राजपूताने की ओर भेज कर मराठों के प्रसार को रोकना चाहता । रास्त में महाराज दुर्जनशाह खानदीरान की सेना से जा मिला । परन्तु जब यह सेना मुकन्दरा घाटी पार करके रामपुरे की ओर जाने लगी तो दुर्जनशाह कोटा एक जमा घोर अपनी सेना को शाही सेना के साथ कर दिया । रामपुरे में खानदीरान जयसिंह अमय सिंह को सिधिया व होल्कर ने आठ दिन तक घरे रस कर मूटवाट की ।

१ लक्ष्मीका जिल्हा २ पृ ३३१ ।

२ निजाम व भीमसिंह पयझीबखश भाई थे । टाड राजस्थान जिल्हा १ पृ १५२९ ।

दुर्जनशाल सेना लेकर खानदीरान की महायता को पहुँचाने के लिए प्रयाण करने लगा परन्तु होल्कर व मिन्धिया ने उसको शाही लश्कर तक नहीं पहुँचने दिया । हार कर दुर्जनशाल कोटा लौट गया । खानदीरान ने कोटा में मरहठो से सन्धि करली । जयसिंह के प्रयत्न से यह सन्धि की गई थी कि मरहठो को २२ लाख रुपये की चौथ दी जायेगी । इस घटना के बाद कोटा पर मुगल प्रभाव समाप्त हो गया और उमका स्थान मरहठो ने ले लिया ।

मुगल शासन का कोटा पर प्रभाव—सन् १६२४ ई० में जहाँगीर की आज्ञा से माधोसिंह कोटा का राजा हुआ और मुगलो की देन कोटा, मुगल राज्य-भक्ति की सेवा में प्रवेश होकर सन् १७३५ ई० तक बना रहा । एक सदी में कोटा मुगलाई ढग में रग गया । कोटा के शासक तीनहजारी मनसवदार से बढ़ कर पचहजारी मनसवदार बन गए । 'राव' से वे 'महाराव' की पदवी धारण करने लगे । तीनहजारी मनसवदार को प्रथम श्रेणी के रूप में २४,६०० रुपये मासिक मिलते थे । कोटा नरेशो ने मुगलाई सेवा में रह कर अटूट स्वामिभक्ति का परिचय दिया । सारा राजपूताना मुगल राज्य का एक सूवा माना जाता था जिसका सूवेदार अजमेर में रहता था । यह प्रान्त कई परगनो में विभक्त था । सूवेदार की नियुक्ति शाही फरमान द्वारा होती थी । प्रत्येक कोटा शामक को गद्दी पर बैठते समय शाही फरमान लेना पडता था । यह मुगल नियन्त्रण का सूचक था पर मुगलो का नियन्त्रण इस सीमा तक ही सीमित था कि वहाँ के शासक शाही सेवा में उपस्थित रहें तथा शाही आज्ञाओ से नियुक्त अफसरो से सहयोग करते रहे । आन्तरिक रूप में वे स्वतन्त्र थे । कोटा राज्य में तीसरा अकुश मुगलाई सिक्को की सभ्यता के रूप में था । गागरोण के किले में इसके निर्माण की एक टकमाल भी थी ।

कोटा के प्रत्येक परगने में हकत व पडत जमीन का हिसाव, उसकी वृद्धि तथा कृषि की उन्नति करने का कार्य कानूगो के हाथ में रहता था । यह कानूगो शाही अफसर होता था जिसकी नियुक्ति शाही फरमान से होती थी । जागीरदारो के अन्याय व कठोरता का हाल लिख कर वह सम्राट को भेजता था । भूमि का लगान, आमद व खर्च का हिसाव लिख कर प्रति वर्ष वह दफ्तरखाना-आली में भेजता था । परगने के हाकिम, आलिम उसकी सलाह से कार्य करते थे । यह पद वंश-परम्परानुगत था । भूमि कर का दो प्रतिशत कानूगो की रसूम होती थी । कोटा में नकद वेतन की प्रणाली नहीं थी । केन्द्रीय सत्ता का व्यक्ति होते

हम भी यह बोटो रात्र को घाटा से कार्य करना था। राजपूताने की रियासत प्रति वर्ष लगभग गांधार्य का गिरावट रही थी। यह गिरावट अजमेर का मुख्य कारण बन गया था। पूर्वी राजपूताने की रियासतों का उद्भव व मूल में मलानवा (गिरावट) जमा वगैरह वगैरह का सुविधा दी गई थी। बांग का सामक वभी अजमेर वभी उद्भव व बांग काय से यह धनराशि जमा कराने थे। मलानवा विद्यो व जमा कराया जाता था। मलानवा बोट व गांधार्य की बाधित गांधे तीन गांधार्य गिरावट व इसे परतन थे।

मलानवा का बोट व पारिभिक राज पर भी प्रभाव पड़ा। बोटो से अहिंसा कर विद्यो जाता था। यह कर मलानवा से कर्मचारी वगैरह करने थे। मलानवा छोड़ कर मलानवा बनाई जाता थी। यदि गांधे पत्र काय से म मजदुरी तो उदात्त काम काम लग व यह लगी बरत मरतन थे। बांग से रूठे बांग मलानवा का ग्याद व मिला लगी करमान द्वारा बांगो नियत रित्त जाने थे। मूर्धम ई-आदि मलानवा लोकार उदने मेलन से मनाथ जात थे। लोकारों व लदन गांध व मोर व हाथी पार गिरावटो बांग व मिला दित्त जाते थे। लदन मलानवा ई-मलानवा व मजदुर-बांग से बाधितों का प्रभाव कम काम काम था परन्तु कई दरगाहो लोद मलानवा। जो मजदुर की घोर से मलानवा प्रमोद मितनी थी।

बांग मजदुर का बांगन मलानवाई बाध का था। बांगन बांगन मजदुर वगैरह व लाना से विद्यो था। मजदुर बांग हाथी का वगैरह उदने जमादाय वगैरह था। बांगन विद्यो जाता था। मूमि मेला लोद मजदुर का प्रभाव मलानवाई दून का था। मजदुर व मजदुर का मलानवा लन की प्रमोदो कोदा मजदुर व लदान थी। मला म हाथी से व पार लोद मजदुरो को लदान मलानवा था देन का। मूमि का विद्यो का। बांगो से अजमेर व बांगनेविद्यो की लदान मलानवा विद्यो का। राजपूताने मजदुर व विद्यो का मजदुरो की वगैरह मलानवा मलानवा का। मजदुर की लदान मजदुर का बांग लदान मजदुर लदान मलानवा

पृथक् नहीं था। अपील का व्यवस्थित रूप नहीं किया गया था। दण्ड का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया था। राजाज्ञा से ही दण्ड दिया जाता था। पुलिस कोतवाल ही न्यायाधीश बन जाता था। अतः कोतवाली-चवूतरा न्यायालय और भय का केन्द्र हो गया था। अपील जब कभी होती तो लिखित नहीं होती थी। तुरन्त न्याय की व्यवस्था थी। मुगल वादशाहों की तरह कोटा नरेश की कोप-दृष्टि ही सब कुछ थी।

साधारण जीवन व दरवारी जीवन में मुगलों के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखाई दे सकती थी। रावों के दरिखाने की बैठक मुगल दरवार की बैठक के समान थी। मुगलों में मनसब के अनुसार खड़े रहने की व्यवस्था की जाती थी। कोटा के राज्य दरवार में यह ध्यान रखा जाता था कि कौनसा जागीरदार किस हैसियत का है और वह अपने स्थान पर बैठता है या नहीं। जागीरदारों को सेवाओं के बदले ताजिम दी जाती थी। कोटा में राजकीय पुरुषों का पहनावा मुगलों जैसा था। चूड़ीदार पायजामा, घाघरकोट, मुगलाई-पगड़ी, बगलवदी आदि सरदार पहनते थे। उत्सव व मेले मुगलों की तरह होने लगे। गणगीर मीना बाजार की तरह, हाथियों की होली, नावड़े की होली आदि सब मुगलों की तरह होते थे। महफिल व दावतों में मुगल शिष्टाचार का प्रचार हो गया था। हुक्का और इत्र, हलुवा और खिचड़ी मुगल प्रभाव से बनने लगी। राज्य में फारसी का प्रयोग होने लगा, विशेष कर अन्य रियासतों से पत्र-व्यवहार करते समय। कला के क्षेत्र में गृह-निर्माण कला में महरावों तथा मीनाररूपी स्तम्भ-प्रणाली, छज्जे और जालिँ मुगलों के सम्पर्क में आने के बाद ही कोटे में बनने लगी। कोटा में मुगल सांस्कृति का प्रभाव इतना गहरा पड़ा कि मराठों व अंग्रेजों के प्रभाव काल में रहते हुए भी आज वे स्पष्ट रूप से जन-जीवन में देखे जा सकते हैं।

राजनीतिक इतिहास

बोटा राज्य का मरहठों से सम्बन्ध

दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य के विरुद्ध राष्ट्रीयता की सहर उठ रही हुई। शिवाजी के नेतृत्व में मराठी सामाजिक व धार्मिक प्रवृत्तियाँ संयुक्त व संगठित होकर एक राजनीतिक शक्ति बन गयी। शिवाजी ने सन् १६४७ में प्रथम बार बीजापुर के मुस्ताम के विरुद्ध एक राजनीतिक बग़ावत कर मराठवाड़ा राज्य की स्थापना प्रारम्भ की। १२ वर्ष तक १६५६ तक बीजापुर-मराठा संघर्ष होता रहा। अन्त में सब शेरित मराठा शक्ति विजयी रही। १६६० से १७०७ तक मुगल मराठा संघर्ष चलता रहा। शिवाजी की राजनीतिक शक्ति का नृपलमे का प्रथम घोरगज़ब ने तीन बार किया। १६६२-६३ में दायस्तगाँव को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। १६६५ में जयसिंह ने शिवाजी पर विजय प्राप्त कर उसे घागरा जाने का विषय किया जहाँ घोरगज़ब ने उसे हुमेगा के सिध गमाप्त कर देना चाहा और १६६८ ने १६७८ तक मुगल-मराठा संघर्ष चलता रहा। मरहठों शिवाजी को प्राप्त हुई और १६७४ ई० में उन्होंने मराठा राज्य की स्थापना कर ही वाली। जिनका उद्देश्य हिन्दू-धर्म-शास्त्रादी था। परन्तु सन् १६८० में उग्रही मृत्यु हो गयी। मराठा राज्य तो स्थापित हो चुका था पर मुगलार्द घनिष्ठ बना रहा जिनमें १६८६ में शाहजादी की हत्या कर मराठा राज्य का अन्त कर दिया। यद्यपि राज्य का अन्त तो मरहठो गया परन्तु राष्ट्रीय शक्ति अन्त न हो गयी। मराठा राजागम ने कैतूर में उसको मृत्यु कर मारा उग्रही की ताताबाई ने नेतृत्व में मराठी राष्ट्रीयता मरहठों में बग़ावत टकरा कर गयी। २ वर्ष के इग मध्ये मरहठों में घोरगज़ब की मारो शक्ति मरहठो गई। वह इतने मरहठों को दमाने दक्षिण की ओर गया परन्तु इग दक्षिणा कोड़े ने उसे बर्बर कर दिया। १७०७ ई० में वह पन्धरमरहठों में मर गया।

औरगजेब की मृत्यु के बाद उसके लडको मे गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया । अत मराठो को कई अर्से के बाद अपने शत्रु से मुक्ति मिली । उस गृह-युद्ध मे शाहजादा मुअज्जम जाजब के युद्ध मे (मार्च १७०७) सफल हो बहादुरशाह के नाम से मुगल सम्राट बना । दक्षिण मे ताराबाई के नेतृत्व मे मराठी शक्ति राष्ट्रीय युद्ध तो कर रही थी पर राजा के रूप मे जब सगठित होने का अवसर आया तो एक राजनैतिक स्थिति पैदा हो गई । बहादुरशाह दक्षिण मे मुगलाई प्रभाव रखना चाहता था परन्तु मराठो से युद्ध करने के लिये उसके पास न शक्ति थी, न योग्यता । अत जुल्फिकारखा की सलाह पर उसने शम्भाजी के लडके शाहू को, जो १६८६ मे कैद कर लिया गया था और अब तक मुगल जीवन मे रम रहा था, मुक्त कर दिया गया । जिससे शाहू-ताराबाई सघर्ष मे मराठी जन-जीवन पडा रहे और मुगल उमका लाभ उठा सके । शाहू मे रक्त तो मराठी था, वह भी शिवाजी का परन्तु मराठी गुण एक भी नहीं था । वह तो मुगलाई तौर-तरीके, आरामपसन्द जीवन का व्यक्ति था । शिवाजी की गद्दी जब उसने १७०८ मे मागी तो ताराबाई ने देने से इन्कार कर दिया । ताराबाई एक राजनैतिक औरत थी पर नेतृत्व करने के गुण से अनभिज्ञ थी । अत कई मराठा सरदार उससे अप्रसन्न थे । उन्होने कमजोर शाहू का नेतृत्व स्वीकार किया जिससे अपनी मन-मानी कर सकें । मराठी गृह-युद्ध (१७०८ ई०) मे सफल हुआ ।

शाहू सफल तो होगया परन्तु मराठो की राजनैतिक स्थिति से वह अनभिज्ञ था । उसकी कई समस्याएँ थी । उसका व्यक्तित्व उन समस्याओ को सुलभाने मे पूर्ण अयोग्य था । मराठा सरदार कभी ताराबाई, कभी शाहू का साथ देकर अपनी शक्ति का प्रसार कर रहे थे । ऐसी परिस्थितियो मे शाहू के सेवक और भक्त के रूप मे बालाजीविश्वनाथ पेशवा के पद पर नियुक्त किया गया । पेशवा की सरक्षकता में मराठी पुन सगठित और केन्द्रित होने लगे । यह काल मुगल-पतन काल था । मुगलो के पतन काल मे दक्षिण की (व्यवहारिक रूप से) सार्व-भौमिक शक्ति मराठो ने १७१६ मे मराठा-मुगल सन्धि द्वारा प्राप्त करली । वास्तव मे यह सन्धि १७१६ के भारतीय राजनैतिक इतिहास मे एक नये युग को जन्म देती है जबकि मुगलो के बाद अखिल भारतीय शक्ति के रूप मे मराठे प्रवेश करते है । बालाजी विश्वनाथ ने स्वय दिल्ली आकर यह सन्धि मुगल शासको से की । लौटते समय वह राजपूताने की ओर से जाने लगा । धौलपुर, जयपुर होता वह दक्षिण को लौट गया । उसके साथ उसका पुत्र वाजीराव था । जो हिन्दू-पद-पादशाही का निर्माता कहा जा सकता है । मुगल काल की पत-नावस्था मे दक्षिण भारत में तो मराठा शक्ति सार्वभौमिक हो गयी परन्तु उत्तरी

भारत में राजपूतों की शक्ति सार्वभौमिक हो सकती थी पर यह नहीं हुआ। जब बाजीराव पेशवा बना तो उसने राजपूत मराठा सहयोग नीति अपनायी चाही पर शीघ्र ही राजपूती रिमासतों के आपसी झगड़ों ने उसे बसला दिया कि राजपूत मराठों का साथ नहीं द सकते। अतः एकाकी रूप में बाजीराव ने उत्तरी भारत में मराठी शान स्थापित करनी चाही। राजपूत शासक, विद्यय कर जयपुर और जोधपुर के शासक मुगल सूबेदार बन कर मराठों के प्रसार को रोकते रहे लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उल्टे मराठों को विरोधी बना लिया। मुगलों को पतन से बचा न सके। १७४१ में बालाजी बाजीराव पेशवा ने मुगलों से उत्तरी भारत की प्रभुता स्वीकार प्रारम्भ कर दिया तो वे राजपूताने के शासकों के आपसी झगड़ों के न्यायकर्ता के रूप में प्रगट हुए और मराठे-राजपूत बर्हा मैत्री और सहयोगी होकर भारत में राज्य पर बढ़ती हुई अग्रणी शक्ति का विरोध कर सकते थे वह नहीं कर सके। मराठे राजपूताने के शासकों का धन घोपण करने में लग गये।

मराठों-राजपूतों का प्रथम सम्पर्क का विरोधी शक्तियों के रूप में हुआ। राजपूतों ने मराठी राष्ट्रीयता को बचाने के लिये मुगल सम्राटों को सत सत से सहयोग दिया। कोटा के महाराज भी इससे वंचित नहीं थे। सिवाजी के विरुद्ध राम बगतसिंह ने श्रीरंगजेव को पूर्ण सहायता दी। श्रीरंगजेव ने जब सन् १६८६ में रायगढ़ पर अधिकार कर मराठा राजा सम्भाजी को गिरफ्तार कर उसका सिर बटवा लिया तो उस समय किशोरसिंह भी श्रीरंगजेव के साथ लड़ा था। बसतगढ़ के घेरे में सभा उस पर दाही सेना का अधिकार करने में किशोरसिंह ने अपने हाड़ा राजपूतों का रक्त यहाया था। किशोरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र बिष्णुसिंह ने अपनी पिता के साथ दक्षिण में जाकर मराठों से लड़ने को इत्कारी करदी तो उस राज्यभ्युत कर दिया और अस्त की जागीर देदी। उसका दूसरा पुत्र रामसिंह मराठों के विरुद्ध दाही सेना में बना रहा। उसने दक्षिण भारत में राजाराम के विरुद्ध मुगल सेनापति जुल्फिकारखान के नेतृत्व में युद्ध किया। सन् १६६६ से १७७ तक वह मराठों से लड़ता रहा।

दक्षिण में अरबी (बर्माटिब) के किसे में रामसिंह ने अपना निवास-स्थान बनाया जहाँ से मराठों की दक्षिण की राजधानी जिम्मी का धरा निर्देशन हो सके। मुगलों की स्थिति से एक साथ इस बात से पट्टेया कि राजाराम के दोनों सेनापति लतात्रा घोरपडे और यशजी जादव आपस में लड़ पडे। राजाराम ने

१ लतात्रा द्विती चौड घोरपडेव सिख २ वृ ७।

२ दाड राजाराम सिख २ वृ १२२६।

अपनी स्थिति को बचाने के लिये अगस्त सन् १६६७ में रामसिंह द्वारा मुगलो से सन्धि करनी चाही पर औरगजेब ने इसे स्वीकार नहीं किया^१ । जिन्जी का पुन घेरा डाला गया जो दो माह तक चलता रहा । रामसिंह इस घेरे में 'शेतानी दरी' नामक दरवाजे के सम्मुख मुगल पक्ति का अध्यक्ष था । राजाराम को २ जनवरी १६६८ को जिन्जी छोड़ कर भागना पडा परन्तु उसका कुटुम्ब पीछे ही रह गया । उस कुटुम्ब की सुरक्षा का भार रामसिंह ने लिया और सकुशल उन्हें उत्तर की ओर राजाराम के पास भिजवाने का प्रबन्ध कर दिया । इसके बाद भी रामसिंह औरगजेब के देहावसान तक दक्षिण में लड़ता रहा और बीजापुर, रामगढ, वसन्तगढ-विजय में सहायता देता रहा ।

सन् १७०७ से १७३४ तक कोटा नरेश उत्तर में मुगल राजनीति के दाव-पेच में फसे रहे । दक्षिण में मराठे पेशवाओं के नेतृत्व में अपनी शक्ति का प्रसार करते रहे । कोटा के शासक मुगलो के अत्यन्त भक्त थे । अतः जब पेशवा बाजीराव गुजरात, मालवा, बृन्देलखड में मराठी प्रसार कर रहा था, उम समय वे मुगल शक्ति को सैनिक व आर्थिक सहायता देते रहे । मराठो की नीति कभी स्थिर नहीं रही । जिन राज्यों ने या क्षेत्रों ने उनकी आधीनता स्वीकार करली थी वहाँ वे अपना साम्राज्य या स्थायी प्रबन्ध नहीं करते थे । अकारण लूटमार करने में व घन वसूल करने में वे नहीं हिचकते थे । वे चौथ और सददेशमुखी तो प्राप्त करते ही थे, इसके अलावा कई प्रकार का कर भी लेते थे जिनमें नज-राना व जुर्माना मुख्य थे । जो राज्य उनका सामना करते, उस पर तो टिड्डी-दल की तरह टूट पड़ते थे । उनके गावो, खेतो और खलिहानो को नष्ट कर देते थे ।

मालवा पर अधिकार हो जाने से कोटा पर उनकी आख बराबर पडती रही । क्योंकि कोटा मालवा का पडसेी प्रान्त था । मराठो का प्रथम आतकीय सम्पर्क कोटा राज्य के महाराव शत्रुशाल के समय में हुआ । राजस्थान में मराठो का प्रवेश बूदी, जयपुर और जोधपुर के उत्तराधिकारी युद्धो से प्रारम्भ होता है । १७३४ ई० में पिलाजो जादव ने कोटा और बूदी पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी पर वह योजना योजना ही रही । होल्कर और सिन्धिया ने कुछ लूट-पाट अवश्य की^२ । सन् १७३५ में पेशवा बाजीराव के मालवा-प्रसार को रोकने के लिये मुगल बादशाह मोहम्मदशाह ने वजीर कमरुद्दीन को बृन्देलखड की ओर, और बख्शीखान खानदौरान को राजपूताना और मालवे की ओर भजा । सदाराव दुर्जनशाल ने अपनी सेना खानदौरान की सेवार्थ में भेजी । मुकन्दरे

१ सरकार जिल्द ५, पृ० १०५ ।

२ सरकार फाल ऑफ-दी मुगल अम्पायर, पृ० २४६ ।

की घाटी में होकर सिन्धिया व पवार ने खानखीरात को जा घरा। बौटा व दुजनगास खानखीरात की महायता के सिय खला पर होकर और पवार ने बौटा व महाराव को राहो लदकर तक नहीं पहुँचने दिया। खानखीरात ने परेपान होकर भोजास की तरफ चला गया। खूकी इस युद्ध में जयपुर मरेण जयसिंह व जायपुर मरेण भयसिंह मुगलों को सहायता दे रहे व घत होकर और सिन्धिया ने मये नय राग्या को मूटना प्रारम्भ किया। विनाय कर मांमर से सोन लाग रायो की सम्पत्ति प्राप्त की।

मराठों का बौटा में प्रवेश — सन् १७३६ में पनाबा बाजीराव ने राजस्थान का घाटा की ओर महाराणा उज्जयपुर से निमा। मराठा मवाड़ मन्धि हुई। पाणिपत गिराव १ लाग ६० हजार प्रति वर्ष सय हुआ। फिर मासदारा होने हुए बाजीराव मवाई जयसिंह से विधानगढ़ क पास चम्पौसा गाँव में मुनाबाव की। मुगल मन्नाट और मराठों के बीच वार्ता की शर्तें तय हुए पर व मुगल मन्नाट का स्वीकार न थी। फल निस्ती पर भाङ्कमण करने की योजना बनी। यह भी एक वर्ष क लिये स्थगित कर दी गई। मुहम्मदशाह ने बाजीराव की दरबारी को गैरने क सिय उत मासवा का उज-भूषणार ही मनाना चाहा परन्तु बाजीराव इसमे प्रगप्र मही हुआ फल उसने १७३६ में दिल्ली पर भाङ्कमण करने का निश्चय किया। मासवा के मार्ग में कच करता हुआ बाजीराव बौटा राग म चला। तात्र दर के पास चपनी सेना का पदाव टाल कर उसने महाराव उज्जयगास म राग मंगा। दुजनगास क सिय परसीवार करना को। म सय का मुगल कच न निमन्त्रण ना था। भन उसने बाजीराव को पूर्ण मना को। इस कच म बाजीराव ने सन् १७३८ म माङ्कगढ़ विजय करव दुजनगास को ले लिया। यह बाग बौटा मराठा का पहला मन्त्र था।

मदरि दुजनगास म बाजीराव की रगद पहुँचाई थी घोर बाजीराव म माङ्कगढ़ का निमा महाराव को लिया जा परन्तु महाराव व बाजीराव राग मीतिव सिय मही बन गये। दुजनगास घब भी मगलों की सेना से गहना चट्टण का और बाजीराव का मर स्वीकार म था कि उगव निष्पुट रात्रपुन लागत है। बौटा के मर से अब बाजीराव ने निशान का बगी तरह हुए। वा को उमको लम्ब उमगी मासव चयम हो गई घोर उगव बाङ्क महाराव हो कर घोर चयम उगव चयम को चयम को। यह मासव कर विनाय मर का घरा

१ १३१ मरदु म सिन्धिया व १ १४।
 २ सिन्धिया दुजनगास सिन्धिया व १ १४।
 ३ १४८ मरदु म सिन्धिया व १ १४८।

डाल दिया। चालीस दिन तक घेरा पड़ा रहा। अन्त में महाराव ने सन्धि करली। इस सन्धि के अनुसार महाराव ने पेशवा को दस लाख रुपये दिये। आठ लाख रुपये तत्काल व २ लाख का दस्तावेज लिख दिया^१। कोटा मरहठो में राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया। पेशवाने वालाजी यशवन्त नामक एक सारस्वत ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया^२। इस कोकणी ब्राह्मण ने दुर्जनशाल को वरखेडी नामक परगना उरमाल में जागीर में दे दिया। इस प्रकार महाराव दुर्जनशाल ने भी मरहठो के विरुद्ध राजपूतो के हुरडा सम्मेलन (सन् १७३४) के सयुक्त निर्णय—कि मरहठो के विरुद्ध राजपूत सयुक्त कारवाई की जावे—का अन्त कर दिया। वालाजी यशवन्त कोटा की मामलात को सिन्धिया, पवार तथा होल्कर तीनों में विभक्त कर देता था परन्तु यह दशा भी साफ नहीं होने पायी। वूदी पर जयसिंह ने अपना अधिकार स्थापित करने के लिये बुद्धसिंह को हटा कर दलेलसिंह को राजा बना दिया। बुद्धसिंह और उसके पुत्र उम्मेदसिंह ने मरहठो की सहायता तथा कोटा के राव दुर्जन की सहायता से पुन वूदी पर अधिकार कर लिया। इसी बीच १८४३ ई० में जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसके पुत्र ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में गद्दी के लिये युद्ध हुआ। महाराणा उदयपुर, महाराव कोटा व उम्मेदसिंह ने माधोसिंह का साथ दिया। राजमहल की लड़ाई सन् १७४३ में जहाँ मल्हारराव का पुत्र खाडेराव २ लाख रुपये देकर बुलाया गया था, माधोसिंह हार गया, परन्तु पेशवा के बीच में पड़ जाने के कारण माधोसिंह को जयपुर के चार परगने दिए तथा उम्मेदसिंह को वूदी का राजा ईश्वरीसिंह ने मान लिया। सन्धि हो जाने पर भी ईश्वरीसिंह पुन दलेलसिंह को बून्दी की गद्दी पर बैठाना चाहता था। अतः उसने होल्कर से सहायता मागी। वूदी के सहायक कोटा महाराव पर ईश्वरीसिंह व होल्कर ने आक्रमण कर दिया। ६१ दिन तक यह लड़ाई चली। हार कर सन् १७४८ में दुर्जनशाल ने सन्धि की बातचीत की। जिसके अनुसार दलेलसिंह को कापरण और केशोराय पाटन दिए गये तथा—कोटा ने चार लाख रुपये देने का वचन दिया परन्तु कुछ दिन बाद सिन्धिया के साथ पत्र व्यवहार करके कोटा के फौजदार हिम्मतसिंह भाला ने ये रुपये माफ करवा दिये^३।

कोटा में मरहठी प्रभुत्व—सन् १७५६ में महाराव दुर्जनशाल की मृत्यु के पश्चात् उसके कोई पुत्र न होने के कारण उसने अन्ता के ठाकुर अजीतसिंह के

१ हरविन लेटर मुगल्स जिल्द २, पृ० ३०४। बघभास्कर चतुर्थ भाग, पृ० ३२४१।

२ फाल्के सिदेशाही इतिहास ची साधणो, जिल्द १, पृ० ३ नो ४।

३ डा शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३६२।

पुत्र शत्रुघास को गोद लेने की इच्छा प्रकट की परन्तु पौसदार हिम्मतीसिंह म्हासा ने पिता के रहते पुत्र को गद्दी देने की व्यवस्था ठीक नहीं समझा अतः अजीतसिंह १७५६ ई० में बोटों का शासन बना। उस समय मरहठ कोटा के 'बादशाह' के अंतर्गत सिंधिया को मान्य हुआ कि अजीतसिंह यिना उससे पूर्व स्वीकृति बोटों की गद्दी पर बैठ गया तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और एक बृहत् सेना लेकर बोटों पर चढ़ाया। होल्कर और पवार भी आ पहुँचे। एसी परिस्थिति देख कर महाराणी माता (महाराज वृंजमहाल की रानी) ने राजेशी सिंधिया को राजी भोज कर भाई बना लिया और नजराने के रूप में राज्य की ओर से बालीस प्राप्त किया मरहठों को दिया गया। यह घनराशि चार वार्षिक किश्तों में दी गई। वार्षिक खण्डी इसी में भान सी गई। अन्तिम किश्त के दो लाख रुपये छूट के दिय गये। तथा मरहठों का राजपूताने के अग्र्य भागों को विजय करने में सहायता देने का वचन अजीतसिंह ने दिया। जयपुर में गदिस के वरुण तथा दुवार सुदत समय अजीतसिंह ने करीब सात हजारों रफी पास तथा भूदरों मरहठी सेना को भेजी थी।

मरहठों को विशेष कर पेशवा शासकी शशीराज को हर समय धन की आवश्यकता रहती थी। शासन युद्ध आदि के लिये धन प्राप्ति उत्तरी भारत से ही हो सकती थी। होल्कर और सिन्धिया को राजपूताने से धन प्राप्ति की आशा रहती थी। ये मरहठे सेनापति जब आहूँसे राजपूताने में प्रवेश कर लते जय पाहा जिससे आहा धन प्राप्ति करते थे। न देने पर यद्ध स्वामाधिक था। राजनैतिक समिधियों को बनाए रखना कोई महत्ता नहीं रक्तता था। अजीतसिंह के बाद जब सन् १७५८ में शत्रुघास गद्दी पर बैठे तो जनकाजी सिंधिया व मरहठराज होल्कर ने शत्रुघास से नजराना के २ लाख रुपये लेकर उसे शासक की स्वीकृति दे दी।

१७५८ ई. तक मरहठों की शक्ति सारे भारत में फैल गई। पंजाब में वे अकाल तक पहुँच चुके थे। विल्ही के मुगल सुल्तान उनके शत्रु थे। पंजाब से दक्षिण भारत तक उनका प्रभाव था परन्तु वे इस बड़े साम्राज्य को न तो संगठित कर सके और न वे एक शासनसूत्र में बाँध कर मरहठी राज्य की हकता सा सके। पंजाब पर मरहठों के अधिकार कर लेने को कानून का बादशाह अहमदशाह दुर्दान्त को पंजाब को अपना प्राप्त सम्भत्ता था सहन न कर सका। उसने चार बार भारत पर आक्रमण किया। १७५९ में वह आक्रमण कर पंजाब पर

१ पृष्ठके निम्न १ लेखाक १७९, विपणी १२४।

दत्तभास्कर अतुर्ष माय पृ ११२१।

२ डा अर्मा भाग २ पृ ४१३।

आधिकार करता हुआ नजीब रोहिला से जा मिला। जिसने मरहठो की शक्ति नष्ट करने के लिये निमन्त्रित किया था। १७६१ की जनवरी को पानीपत के स्थान पर अन्वदाली-मरहठा युद्ध हुआ। मरहठे हार गए। मरहठो की हार का लाभ उठा कर जयपुर नरेश माधोसिंह ने राजपूताने से मरहठो को निकालने का प्रयत्न किया। उसने दिल्ली सम्राट शाहआलम द्वितीय, नजीमरोहिला व कोटा, बूंदी, करौली आदि के शासको का एक गुट तैयार कर मरहठो को निकालना चाहा^१। परन्तु महाराज शत्रुशाल ने माधोसिंह की इस योजना को स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसे इसमें माधोसिंह की वृहत् जयपुर-निर्माण करने की योजना स्पष्ट दिखायी दे रही थी। तथा इधर होल्कर ने गागरोण और चन्द्रावत राजपूतो पर अधिकार कर कोटा पर आँख लगा रखी थी।

सन् १७५४ ई० मे माधोसिंह को रणथम्भोर का किला शाह अहमदशाह ने दिया था परन्तु रणथम्भोर को मरहठे लेना चाहते थे। इसलिये सन् १७५६ मे उन्होने घेरा डाल दिया। रणथम्भोर मे एक मुगल फौजदार रहता था। वह स्वयं इस पर अधिकार रख स्वतन्त्र होना चाहता था। पर अन्त मे यह किला माधोसिंह के पास आ गया। माधोसिंह ने इस किले से सम्बन्धित कोटरियो पर अधिकार करना चाहा। पर वे हाडा जाति की जागीरें होने के कारण कोटा के अधीन रहना अधिक पसन्द करती थी। इस पर माधोसिंह ने १७६१ ई० में जबकि मरहठे पानीपत के मैदान मे हार चुके थे, कोटा पर आक्रमण कर दिया तथा कोटरियो से खिराज लेना चाहा। माधोसिंह की सेना ने उणियारा, बलाखेरी पर अधिकार करते हुए पालीघाट के पाम कोटा मे प्रवेश किया। भटवाडे के मैदान मे कोटा की सेना व जयपुर की सेना का १७६१ में सामना हुआ।

इस युद्ध मे जालिमसिंह माला कोटा का सेनापतित्व कर रहा था। उस समय पानीपत के युद्ध मे हार कर भागा हुआ महारराव होल्कर पास ही पडाव डाले हुए था। जालिमसिंह ने उससे मुलाकात कर जयपुर के विरुद्ध सहायता चाही और उसके बदले मे चार लाख रुपये देने का विश्वास दिलाया। होल्कर माधोसिंह से नाराज था क्योंकि साल भर से उसने होल्कर को मामलात नहीं दी थी। परन्तु पानीपत के मैदान मे जो उसकी क्षति हो चुकी थी। उस कारण न तो वह कोटा को, न जयपुर को सहायता दे सकता था। अत महारराव ने सिर्फ इतना ही विश्वास जालिमसिंह को दिलाया कि यदि जयपुर की सेना हारने लगेगी तो वह उनके डेरो को लूटेगा^२। भटवाडे के युद्ध मे कोटा विजयी हुआ।

१ एस. पी. डी. जिल्द २६, स २७।

२ उपरोक्त जिल्द २१, स० ६४।

वसामास्कर जिल्द २, पृ० ५६२-६३।

टाट राजस्थान, जिल्द ३, पृ० १५३६।

सम्यत् १८१५ (गन् १७५८) में महाराराव होल्कर की एक टुकड़ी ने सुकेत की गद्दी को घा घरा। कोटा में ८००० रुपय देकर उस टुकड़ी को वापिस भज दिया। सम्यत् १८१७ (गन् १७६०) में होल्कर को कोटा व प्रधान राव अलमराय ने ५१००) होल्कर को दिए।

मटवाड़े के युद्ध में कोटा के मरवा ने उम्मदसिंह सूनी दासक की सेवामें मांगी थी। सूनी की सेना युद्धक्षम में आई तो घबरप परगु युद्धक्षेत्र में दर्जा के रूप में बनी रही। इस पर धनुषाल सूदी बानों से नाराज हो गया और राव उम्मदसिंह को दण्ड देस के निये अलमराय को मरहटा सरदार व पास भजा। मोयाम मामक गाँव में वह महारानी सिन्धिया ऐ मिसा^१। सन् १७६३ में कोटा व महाराव और महाराणी व पदारबी सिन्धिया ने सूदी पर आक्रमण कर दिया। ४० दिन तक सूदी का घरा पड़ा रहा। बियदा हो उम्मदसिंह ने सधि करसा। महाराजी ने महाराव धनुषाल को सतिव राव व १७१२०) ६० दिए^२। कोटा महाराव ने सूदी आक्रमण के लिये १८०००० ६० लिए व। इस पर भी जब कभी मरहठी फौज घा जाती तो और धन देना पड़ता था। प्रथयराम उसका लड़का केसावराम तथा ठाकुर किशनदास इस कार्य के लिये गोपुर और सपाड़ कई बार भेजे गय। राज्य की रसा के हेतु कोट और बिज की मरम्मत कराई गई जिससे मरहठे प्रभावक आक्रमण न करवें^३।

मरहठे व आसिमसिंह—कोटा में मरहठों का प्रभुत्व आसिमसिंह भ्रजा के समय तक बना रहा। मटवाड़ के युद्ध में घोरता प्रदर्शित करके व हारे हुये युद्ध को विजय के रूप में परिवर्तित कर देने के उपलक्ष में महाराव धनुषाल ने आसिमसिंह को फौजदार बना दिया व। परन्तु महाराव गुमानसिंह ने उसकी स्वतन्त्र प्रकृति से मुक्त होने के लिये उसे पकड़्युत कर दिया। आसिमसिंह मेवाड़ चला गया। वहाँ उसे राजराणा की पदवी दी गई। घरिसिंह के बिच्छ प्रतापसिंह ने कुम्भसगढ़ में स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करली थी और घरिसिंह व बिच्छ माधवराम सिन्धिया की सहायता लेकर मेवाड़ के बिच्छ विद्रोह कर बीठा। तब उम्मीन के पास सिन्धिया राणा युद्ध हुआ। आसिमसिंह इस युद्ध में घायल हो गया व गिरफ्तार कर लिया गया। प्रम्बाजी इससे के पिता नम्बकराव ने उसे गिरफ्तार किया। लेकिन प्रम्बाजी ने उसे मुक्त करा दिया। तब से आसिमसिंह

१ बंजमालकर चतुर्थ भाग पृ ३७६।

२ डा घमाँ भाग २ पृ ४३१।

३ उपरोक्त पृ ४३२।

और अम्बाजी इगले की मित्रता अन्त तक बनी रही' । इसी समय महाराव गुमानसिंह ने मरहठो के वकील लालाजी वल्लाल को भेज कर जालिमसिंह को बुला लिया ।

कोटा राज्य की स्थिति बड़ी शोचनीय हो रही थी । महाराव के नेतृत्व में मरहठो सेना कोटे की दक्षिणी सीमा की तरफ बढ़ती हुई आ रही थी । बकानी का घेरा उन्होंने डाल दिया । किलेदार ठाकुर माधोसिंह हाडा ने किले की सुरक्षा को बनाए रखा । माधोसिंह के पास उस समय केवल चारसी सैनिक ही थे । किले की सुरक्षा करते समय वह स्वयं मारा गया परन्तु मरहठो का अधिकार उस गढ़ पर न हो सका । इस युद्ध में १३०० मरहठे काम आए । लौटती हुई मरहठो सेना ने सुकेत पर अधिकार कर लिया और कोटे की ओर बढ़े । महाराव गुमानसिंह इस सेना का सामना करने में असमर्थ था । अतः सुलह की वार्ता करने के लिए ठाकुर भोपतसिंह भाकरोत को भेजा परन्तु वह असफल होकर लौटा । इसी समय लालाजी वल्लाल जालिमसिंह को लेकर कोटे लौट गया था । अब जालिमसिंह प्रतिनिधि बना कर वार्ता के लिये भेजा गया । इस कार्य में जालिमसिंह सफल हो गया । होल्कर को ६ लाख रुपया दिया गया और मरहठो सेना कोटे से हट गई^१ । महाराव गुमानसिंह ने इस सेवा के बदले में जालिमसिंह को पुनः अपने पद, फौजदार पर नियुक्त किया और उसकी जागीर दे दी । मरने के पूर्व महाराव ने उम्मेदसिंह कुवर को भाला के सुपुर्द किया ।

महाराव उम्मेदसिंह के शासन काल में (सन् १७७०-१८२० ई०) कोटे का सर्वेसर्वा जालिमसिंह भाला ही था । एक मफल शासन प्रबन्धकर्ता के लिये यह आवश्यक था कि मरहठे मरदारो के साथ शान्ति का सम्बन्ध रखा जाय । इस समय राजपूताने में पिडारी और मरहठो के हमले बार-बार होते थे । सन्धि की इज्जत करना उनके कोष में नहीं था । धन ही प्राप्त करना उनका जीवन तथा कर्त्तव्य था । साधनों की वे परवाह नहीं करते थे । शासन की देखरेख उनकी शिक्षा के प्रतिकूल थी । ऐसी शक्ति के विरुद्ध जालिमसिंह ने साम, दाम और भेद की नीति अपनाई । सम्वत् १८३० (सन् १७७३ ई०) में जब कोटा राज्य के दक्षिण भागों में पिडारियों ने लूटमार की तो उन्हें भगाने के लिये भट्ट दयानाथ के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिम्ने गागरोण के पास पिडारियों को हराया व भगाया^२ । पर पिडारी पुनः आ धमके, लूट-खसोट की और भाग

१ टाड राजस्थान तृतीय, पृ० १५३६ ।

२ उपरोक्त, पृ० १५८६-१५९० ।

३ आ० शर्मा भाग २,

गए। पुनः आने और भागने की नीति से तब आकर जासिमसिंह ने सन् १७७४ ई० में पिंडारियों के नेता प्रमीरखा से मित्रता कर उसे खेरगढ का किला दे दिया जहाँ वह रह सके। इस मित्रता की नीति से वह पिंडारी आक्रमण से बच गया। सम्बत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में जीवाजी श्या के नेतृत्व में मरहठी सेना बोट की सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर जासिमसिंह ने बख्शी शिवसास भस्मराम व पंडित सांथा को भज कर उसे बोटों में प्रवेश नहीं करने दिया। सम्भवतः कुछ साख रुपये भजराने के अवश्य दिये गए। होल्कर के नेतृत्व में १७७६ ई० में काटा रियात इन्द्रगढ़ सातोली करवाड़, पीपस्था को मरहठों ने सूटा। भ्रमा न सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार भ्रमा ने नरहरराव दक्षिण को १७८४ ई० में पन्डह हजारा, १७८३ ई० में सांडराव को खण्डपी की बकाया देकर मित्रता मोल ली। तुकोजी होल्कर को भी इस प्रकार समय-समय-पर रुपय लेकर संतुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होल्कर के पुत्र मल्हारराव होल्कर के विवाह पर बोट को तरफ से मात हजारा रुपये न्योत के भज गये थे। सिंधिया ने बगू लेना चाहा जहाँ उम्मसिंह का समुरास था। अतः उसे बचाने के लिये जासिमसिंह ने ६ लाख रुपये देकर बगू बचाया फिर भी सिंधिया ने सिंगोमी और रतनगढ़ से ही लिए। साहबाद के किस पर जासिमसिंह ने सिंधिया को अनुमति के बिना ही करवा कर लिया था। इस पर सिंधिया ने मामलात का हिस्सा मांगा। ३० हजार रुपये साहबाद की मामलात सिंधिया को भजने का निश्चय किया गया।

मरहठों की इस प्रकार की नीति और व्यवहार से जिसमें न न्यायित्व था न ईमानदारी न राजनतिक मोहम्मल न मित्रता जासिमसिंह तब भा खुश था। वह हमसे सेनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था। वेचन धन से इन्हें खरीद कर ही बोटों की शक्ति बनाय रख सकता था। उम धन-प्राप्ति के लिये बोट में कई नए प्रकार के कर लगने लगाए जिससे जायोरदार व अतता दानों ही लग थे। उन्नी समय पूर्वी भारत विजय करत हुए अंग्रेज दिल्ली तक आ पहुँचे। मरहठों की शक्ति से उनकी टक्कर होना निश्चित था। १८२ ई० में सिंधिया ने चपड़ा से टक्कर ली। १८३ में हास्तर रा व राड़ पड़।

१ हास्तर राजपूताने की नीति पृ. १२७।

२ हास्तर राजपूताने की नीति पृ. ४२।

३ चपड़ा का बगूचं राजपूताने की नीति पृ. १६।

४ हास्तर राजपूताने की नीति पृ. ६६।

लार्ड लेक उत्तर की ओर से और दक्षिण की ओर से आरथर वेल्लेजली होल्कर के विरुद्ध चले। लार्ड लेक ने कर्नल मानसन को तीन बटालियन देकर व कप्तान लूकन को पश्चिम की ओर से होल्कर पर आक्रमण करने भेजा। राजपूत शासको के लिये मरहठो से मुक्त होने का सुअवसर था। जालिमसिंह ने अग्रजे जी फौज और उसके नेता मानसन को कोटा मे प्रवेश करने की आज्ञा नही दी बल्कि आप अमरसिंह पलायके वाले के नेतृत्व मे कोटा की फौज भेज कर मानसन को सहायता दी। मानसन को होल्कर ने मुकन्दरा घाटी मे जा घेरा और मारकाट मचादी। होल्कर की फौज की कोटा की सेना के साथ मुठभेड हुई जिसमे आप अमरसिंह मारा गया। कोटे के चारसौ व्यक्ति घायल हुए। कप्तान लूकन युद्ध मे मारा गया और मानसन भाग कर कोटा आया। परन्तु होल्कर के भय से जालिमसिंह ने उसे शरण नही दी^१। किसी तरह वह दिल्ली पहुँचा।

अब होल्कर ने जालिमसिंह को दण्ड देने के लिये कोटे पर चढाई करदी। जालिमसिंह ने चम्बल नदी के मध्य मे नाव पर मुलाकात की। काका जालिमसिंह व मजीज होल्कर बडी शिष्टता से बातचीत करते रहे। लेकिन इमानदारी एक के कार्य मे भी नही थी। होल्कर ने मुगल बखशी से दस्तावेज प्राप्त कर कोटा से दस लाख रुपये जुर्माना प्राप्त करना चाहा। जालिमसिंह ने उसे स्वीकार नही किया। फिर भी होल्कर तीन लाख रुपये लेकर कोटा से रवाना हुआ और शेष सात लाख रुपये माँगना उसने कभी नही छोडा^२। जब होल्कर डोग के स्थान पर अग्रजे से हार गया तो राजपूताने में उसका प्रभाव कम हो गया और कोटा से प्राप्त होने वाली खण्डणी समय पर नही मिलने लगी। जालिमसिंह ने होल्कर से मित्रता भी बनाये रखी और समय पडने पर उसके शत्रुओ को सहायता भी देता रहा जिससे कि मराठो की शक्ति क्षीण होती रहे। ३० मई १८१३ में मल्हारराव के लडके परशुराम ने दूढार परगने के रामपुर किले पर अधिकार करना चाहा तो जालिमसिंह ने उसे सहायता दी^३। उदयपुर मे शक्तावतो और चूडावतो के युद्ध मे सिन्धिया ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। इसी समय सिन्धिया को जोधपुर व जयपुर की सम्मिलित सेना ने हरा दिया। उधर कोटा व उदयपुर की सेना मिल कर मराठो के श्रधिकृत क्षेत्र नीमाहेडा, निकुम्प, जीरण आदि पर अधिकार करती हुई जावत पहुँची। मरहठी सेना का नायक सदाशिव हार गया और भाग गया। इसका परिणाम ठीक नही निकला।

१ टाड राजस्थान भाग ३, पृ० १५७१।

२ उपरोक्त, पृ० १५७३।

३ डा० शर्मा भाग २,

गए। पुन आने घोर भागने की नीति से तम आकर आसिमसिंह ने सन् १७७४ ई० में पिठारियों क सेना प्रमौरखा से मित्रता कर उसे शेरपढ़ का किला दे दिया जहाँ वह रह सके। इस मित्रता की नीति से वह पिठारों आक्रमण से बच गया। सम्बत् १८३४ (सन् १७७७ ई०) में जीबाजी भण्डा के नेतृत्व में मरहट्टी सेना को सीमा में प्रवेश करना चाहती थी पर आसिमसिंह ने वस्त्री शिवनाथ अक्षयराम व पंडित तात्या को भज कर उसे कोटे में प्रबन्ध नहीं करने दिया। सम्भवत कुछ समय रुपये नजराने क भवदय दिये गए। होस्कर के नेतृत्व में १७७६ ई० में काटा रियासत इन्द्रगढ़ सातोली करवाठ पीपल्दा को मरहट्टों ने सूटा। भ्रमा ने सेना भेज कर उन्हें दूर करना चाहा। पर वह असफल रहा। इसी प्रकार भ्रमा ने नरहरराव दक्षिण को १७८४ ई० में पन्द्रह हजार, १७८६ ई० में पाँडरराव को छपड़णी की बकाया देकर मित्रता मोक्त की। तुकोजी होस्कर को भी इस प्रकार समय-समयपर रुपये देकर समुष्ट करना पड़ता था। १७८२ ई० में तुकोजी होस्कर के पुत्र महारराव होस्कर के पिबाह पर कोट की तरफ स मात हजार रुपये 'योते के भज गय थ'। सिन्धिया ने बगू सना चाहा जहाँ उम्मदसिंह का समुराम था। पर उसे बचाने के लिय आसिमसिंह ने ६ साल दय देकर बगू बचाया फिर भी सिन्धिया ने सिंगोली घोर रतनगढ़ से ही लिए। शाहबाद के क्रिस पर आसिमसिंह ने सिन्धिया को अनुमति क बिनाही बज्जा कर लिया था। इस पर सिन्धिया ने साम्राज्य क हिम्मा मांगा। ३० हजार रुपये शाहबाद की मामलात सिन्धिया को भजने का निश्चय किया गया।

मरहट्टों की इस प्रकार की नीति घोर व्यवहार से जिसमें न स्यामित्व था न ईमानदारी न राजनतिर मोहयत न मित्रता आसिमसिंह तंग आ थुरा था। यह इनग सैनिक शक्ति द्वारा विजय प्राप्त नहीं कर सकता था केयस पत्र से इन्हें शरीर कर ही कोटा की शक्ति बचाप रण गजता था। उस घम प्राप्ति के लिय कोट में कई नए प्रकार क कर इनके समान जिनग जागीरदार क जनता दायों ही लग थ। उमी समय पूर्वी भारत विजय करते हुए संश्रेत्र दिल्ली तक था पहुँच। मरहट्टा की शक्ति ता उनकी टकार टाना निश्चित था। १८०२ ई० में सिन्धिया ग पदकों ने टकार की। १८३५ में होस्कर की क ताड़ पड़।

१ राज राजाका-१ मुनीव नू १२७४।

२ राज राजी काव २ नू २५२।

३ बपभा ३ चतुर्थ काव नू ३५६।

४ राज राजी काव २ नू ४९।

कोटा शासन में मरहठी प्रभाव—पेशवा कोटा राज्य को अपना मागलिक राज्य मानता था। अतः इस अधीनस्थ राज्य को उसने सिन्धिया, होल्कर और पवारों को वाट दिया था। ये मरहठे सरदार कोटा राज्य को अपने आधिपत्य में समझते थे और इस बात पर जोर देते थे कि उनकी अनुमति और नजराना दिए बिना कोई महाराज गद्दी पर न बैठे। प्रति वर्ष वे कोटा से खण्डणी लेते थे। छोटे-मोटे मरहठा सरदार अक्सर पाकर कभी-कभी कोटा राज्य में आ घुसते, लूट-मार करते और कोटा में धन वसूल करते थे। कोटा राज्य में जाने वाले व्यापारियों की जकात स्वयं लेकर वे उन्हें मुफ्त जाने की आज्ञा देते रहते थे। उनकी सुरक्षा कोटा राज्य की करनी पड़ती थी। सिन्धिया होल्कर का स्वागत मुगल सूबेदारों की तरह किया जाता था। धन व सैनिकों से सहायता कोटा वाले मरहठों की करते रहते थे। मरहठी सरदारों के बच्चों के जन्म व विवाह पर कोटा महाराज नजराना भेजते थे।

मरहठों की ओर से कोटा में वकील रहता था। सन् १७३७ में पहला वकील नियुक्त हुआ। वह लालाजी वल्लाल था। वह कोटा में मामलात वसूल करता, राज-नैतिक गतिविधियों पर देख-रेख करता तथा उनकी सूचना मरहठा सरदारों के पास भेजता। ये उसके मुख्य कर्तव्य थे। उसकी मातहत ही एक दीवान, कई कम-विसदार अन्य कितने ही कर्मचारी व छोटे नौकर रहते थे। वकील सबका वेतन चुकाता था। मामलात वसूल करके हिस्सों के अनुसार ऊटों पर लाद कर मरहठी सरदारों के पास भेजा जाता था। कोटा की कोटरियात वकील के सुपद थी। चूँकि मामलात अधिक मात्रा में लिया-जाता था जिसे कोटरियात दे नहीं सकती थी अतः प्रत्येक कोटहों में एक मरहठा कम विसदार बहा रहता था। वह आयकर इकट्ठा करने वाला होता था लेकिन वास्तव में शासन का कर्ता-धर्ता वही था। ठाकुर नाम-मात्र के शासक होते थे। प्रारम्भ में चारों मरहठी सरदारों का एक ही वकील होता था परन्तु यह वकील सिन्धिया का पक्ष अधिक लेता था। इस कारण अन्य मरहठी सरदारों ने अपने-अपने अलग वकील नियुक्त किये। जिनमें आम तौर पर धन के बटवारे के लिये झगडा हो जाया करता था। वकील का वेतन अठतालीस हजार रुपये वार्षिक था। यह वेतन दो मास की कित्तों में मिलता था।

वकील के नीचे दीवान होता था और प्रत्येक परगने में एक कम विसदार नियुक्त किया जाता था। इसका कर्तव्य सिर्फ माल वसूली हासिल करना तथा मामलात प्राप्त करना था। परगने में इनका शासकीय प्रभाव नहीं रहता था।

शुक्रावत और चूड़ावत पुन सड़ पड़। महाराजा ने चूड़ावतों को चित्तौड़ से निकालने के लिये जासिमसिंह और सिन्धिया को मुसा भेजा। जासिमसिंह और माधोजी सिन्धिया के प्रतिनिधि अम्बाजी इंगले की संयुक्त सेना ने हमीरगढ़ सेठे हुए चित्तौड़गढ़ का घेरा डाला। यहाँ सिन्धिया सेना लेकर पहुँचा और महाराजा से मिता। यह मुसाकात जासिमसिंह के प्रयत्नों से हुई^१। महाराजा जासिमसिंह और महादाजी सिन्धिया ने चित्तौड़ के पास सेती गाँव में डेरा डाला। भीमसिंह चूड़ावत इस बात पर आत्म समर्पण करने को तयार था कि जासिमसिंह कोटा चला जाए। जासिमसिंह ने यह स्वीकार किया^२। जासिमसिंह को बढ़ती हुई शक्ति का कम करने की यह बात अम्बाजी इंगले को घी^३। मेवाड़ में शांति स्थापित कराने का भार माधोजी ने अम्बाजी को सौंपा। परन्तु १७६२ ई. में महादाजी को मृत्यु हो गई। उसके पुत्र दोसतराम सिन्धिया ने अम्बाजी के स्थान पर भकवा दादा को नियुक्त किया। अम्बाजी इंगले के प्रतिनिधि गणेशपंत ने चित्तौड़ खाली करने से इन्कार कर दिया। अम्बाजी और भकवा दादा में युद्ध छिड़ गया। महाराजा ने अम्बाजी का पक्ष नहीं लिया। इस पर जासिमसिंह ने महाराजा के विरुद्ध आक्रमण कर दिया। अम्बाजी के भाई मासेराव को महाराजा की कैद से छड़ाया और महाराजा से सन्धि कर बहाजपुर पर अधिकार कर लिया^४।

पिंडारियों के प्रति जासिमसिंह ने मित्रता की नीति बनाए रखी। मीरजाँ पिंडारी को धरमद देकर मित्र बना लिया। समय २ पर मीरजाँ की सेना को जब कभी वेतन नहीं मिलता तो कोटा राज्य के धन कोष से धन देता। सन् १८०७ में सिन्धिया ने मीरजाँ को गिरफ्तार करके ग्वांसियर के किले में बन्द कर दिया। उस समय भी जासिमसिंह ने उसको धन देकर छोड़ा था। परन्तु जब सार्जेंट हेस्टिंग्स ने पिंडारियों के धमकाने के लिये आसाम से सहायता मांगी तो कोटा की फौज ने पूर्ण सहायता दी। इसके बदले में जासिमसिंह को रंग पञ्चपहाड़ अम्बर और नगराव के परगने दिये गए। १८१८ ई० के बाद तो अंग्रेजों ने जासिमसिंह से सन्धि कर कोटा में मराठों का प्रयत्न दूर करने के लिए अग्रगण्य कर दिया।

१ अश्व राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. २६१।

२ अश्व राजपूताने का इतिहास भाग ४ पृ. २६२।

३ उपरोक्त।

४ उपरोक्त पृ. १३१।

कापरेण सिन्धिया की जागीरे थी। मरहठो के धकील को वीराखेडी व उरमाल दीवान को भराडोला परगना था। होल्कर के दीवान को जुलमी की जागीर दी गई थी। कई मरहठो ब्राह्मण भी जागीरदार थे। मरहठो जागीरो मे कुल ७१ गाव थे जिनकी ग्रामदानी एक लाख अट्ठाईस हजार थी^१। मरहठो जागीरदारो की वृद्धि कोटा के शासक नहीं चाहते थे परन्तु वे विवश थे। दक्षिणी पण्डितो का धार्मिक क्षेत्र मे भी प्रभाव था। इन जागीरदारो की प्रतिष्ठा राज-दरवार मे होती रहती थी। राज की पड़तालो पर इन्हें इनायत भी होती रहती थी। ये जागीरदार महाराज की नीकरी करते थे। इनसे भेंटें वगैरह नहीं ली जाती थी। परन्तु मरहठो प्रभाव अंग्रेजो के आगमन पर इतना शिथिल हो गया कि उनके स्थाई अवशेष किसी भी रूप मे जीवित नहीं रह पाये।

कोटा राज्य का अंग्रेजो से सवध—भारत मे अंग्रेजी राज्य की स्थापना ऐतिहासिक परिस्थितियो के अनुकूल थी। यह घटना अचानक हुई, ऐसी सभावना नहीं थी। १८वीं शताब्दी मे तीन साम्राज्यो को टक्कर मे—मुगल, मरहठो व अंग्रेज। अंग्रेज विजयी होकर भारत की सार्वभौम सत्ता के रूप मे परिणित हो गये। ई. सन् १७५७ मे जबकि मुगल साम्राज्य को अस्थिरता चारो ओर विखर रही थी और उसके अवशेषो पर मरहठो प्रभुता उत्तरो भारत से दक्षिणी भारत तक फैली हुई थी, प्लासी के मैदान मे लार्ड क्लाइव ने भारत मे अंग्रेजी राज्य की नींव डाली। मरहठो शक्ति का प्रभुत्व तो अवश्य फैला हुआ था परन उसमे शासन का स्थायित्व था व न उसके राजनीतिज्ञो मे भारत पर शासन करने की प्रतिभा थी। वे उत्तरी भारत मे जुलमीरी ही करते थे। गनीम उनका प्रिय नाम हो गया। वहाँ परिस्थितिया तो यही थी कि मुगल सम्राटो के स्थान पर वे मरहठो साम्राज्य स्थापित कर सकते थे, वहा उन्होने हर स्थान, हर जागीरदार, नवाब व राजा को आर्थिक शोषण की नीति से तग किया। धन न देने का अर्थ अराजकता, खेती का नष्ट होना, शहरो का जलाया जाना और जनता की बाहि-बाहि था। धन देकर भी इससे मुक्ति पाना कठिन था। मरहठो सरदारो और सेनापतियो मे जहाँ नेतृत्व था तो केवल इसी बात का कि उत्तरो भारत की धन की नदियो का बहाव पूना की तरफ मोडा गया। मुगलो के पतन से शासन मे जो अस्त-व्यस्तता आई थी उसे हटा कर जनता को संगठित और सुव्यवस्थित शासन देने मे असफल रहे। १७६१ मे पानीपत के मैदान मे उनकी हार ने अंग्रेजो को, जो कि भारत में अभी तक शिशु शक्ति के रूप में ही प्रकट हुए थे, अपना स्थायित्व जमाने का अवसर दिया। यह तो भारत की राजनैतिक स्थिति स्पष्ट कर रही थी कि

यह अधिकार जोटा राज्य के सिर्फ कमिश्नरों को था। परन्तु चुंकी वह एक प्रमुख शक्ति का प्रतिनिधि था अतः व्यवहार में मुकदमों का फैसला तथा शान्ति स्थापित करने का कार्य बही करता था। उसके पास काफी सेना रखी थी^१। कभी कम विसदार इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह मामलात भेजने से इस्कार कर देता था। उसको वेतन हिस्साकसी से मिलता था। बामास्तर में मराठों ने इजारे पर कई इलाके देने शुरू किए। इजारा की रकम निश्चित की जाती थी। परगने की मासपूजारी और हकुमत इजारेदार जो अधिकतर बकील होता था उसे देवी जाती। उसे भक्षण करने का अधिकार मरहठों सरदारों को था। यदि वह समय पर रकम न देता या प्रजा को दुःख देता। सिम्पिया ब होकर फरमान देकर इजारेदार को नियुक्त करते थे। मरहठों ने जोटा के प्रति कोई शासन नीति नहीं अपनाई थी। सिर्फ एक ही नीति से वे चलते थे। मामलात घसूस करना और मौका मिलने पर नजराना वसूल करना। जोटा को यह घन छुटाने के लिये कई नए कर लगाने पड़े थे। सम्बत् १८१२ में समस्त बागीरदारों पर मरहठों की मांग पूरी करने के लिए बीघाम नामक कर वसूल किया गया। इसी रूप कानूनगामियों से पेदाकरी ली गई। सम्बत् १८१६ में घोड़ी बरार नामक कर लगाया गया। इसकी रकम ६८००) वार्षिक इकट्टी होती थी। जातियों की पचायतों से कर लिया गया। बीघोड़ी और जामदारी पर शक्ति से वसूल किया गया। बीघोड़ी प्रति भर चार घामा जामदारी प्रति कुटम्ब एक रुपया लिया जाता था।

जोटा के शासकों द्वारा सिम्पिया के राज्य में रहने वाले या उनके द्वारा स्वीकृत व्यापारी को बिना कर लिए जोटे में घुसने दिया जाता था। जोटे के किचो घादमी ने सिम्पिया के राज्य के किमी व्यक्ति से घन उधार लिया हो तो बकील द्वारा उसकी वसूली होती थी। यदि जोटा राज्य किसी अन्य क्षेत्र को जोसते जो मरहठों का न होता तो उस की मरहठों भक्षण देने पड़ती थी यद्यपि मरहठों घन-मांग अधिक थी। परन्तु मरहठों ने जोटा शासकों को मुगलों की तरह मौजरी के रूप में नहीं बल्कि चादर भावना से बर्ताव रखा। बाका शब्द महाराजों के लिये प्रयोग किया जाता था। महाराजियों की घोर से मरहठों सरदारों को रागिए भरी जाती थीं। मरहठों रागियों भी राती भेज कर जोटा घराने से सम्बन्ध स्थापित करती थीं।

जोटा में कई जागिरें मरहठों सरदारों को प्राप्त थीं। बेगोराम पाटन तथा

१ पाटन के वन विनसार की माण्डरी में ७२ मरहठ २ वेतन ६ बरहामा घोर १ बरहामा १५ मरहठ के न ३४ ३८ ५ वार्षिक होत था।

होल्कर पर हमला किया जा सके। भाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक नश्वित्त तौर पर अवलोकन नहीं किया कि अंग्रेज-शक्ति को सहयोग दे। मानसन जो सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना की टुकड़ी भी भेजी। मुकुन्दरे की घाटी में होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकुन्दरा दर्रे के युद्ध में लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा में शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नहीं किया और शरण नहीं दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियों के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखा पिंडारी को शेरगढ़ का किला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियों से मुक्त करायी। जब १८०७ ई० में सिंधिया ने खालियर के किले में अमीरखा पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने घन देकर उसे छोड़ा और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियों के कई व्यक्ति कोटा के जागोरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिंह के पिंडारियों को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा में उनके कारण अशांति पैदा न हो, दूसरा कि उसकी शक्ति कोटा में बनी रहे। अपने विरोधियों का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठों की तरह अंग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अतः जब १८१३ ई० में लार्ड हैस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठों का प्रश्रय पाकर के ताकत-वर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हैस्टिंग्स ने पिंडारियों को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राजपूताना के शासकों से इस सबब में सहायता लेने के लिये लार्ड हैस्टिंग्स ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरबार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की। टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अंग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अतः पिंडारियों के दमन के लिये १५०० पैदल व घुड़मवार व ४ तोपें, अंग्रेजों को दी^१। सर जे. माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियों के दमन में कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ ट्रीटी ऑफ़ मैमेट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

अंग्रेजों की प्रशिक्षित भारतीय राज्य शक्ति बनाने के लिए मरहटों से टकराने लगे ही पड़ेगी।

१७६१ की पराजय के बाद मरहटों पुनः अपनी शक्ति संवित करने लगे। अंग्रेज भी अपनी शक्ति का विस्तार करने लगे। दोनों शक्तियाँ समानांतर रूप से भारतीय जीवन पर अधिकार करने के लिये बढ़ रही थीं। १७७६ व १७८१ में उन्होंने एक-दूसरे पर यह निर्णय नहीं हो सका कि भारत में अधिक प्रभावशाली शक्ति कौनसी है। दोनों तरफ की एक २१ वर्षीय शांति से अंग्रेजों के अपने विरुद्ध की द्वितीय धरती की शक्तियाँ—निजाम हैदराबादी व टोपू को दूर करने का प्रयत्न मिला गया। मरहटों ने वही धन प्राप्त करने की नीति जारी रखी। १७८८ में साईं बख्तखाने ने भारतीय राजनीति के रंगमंच में प्रवेश किया। वह एक साम्राज्यवादी तत्पर अमरक था। मरहटा शक्ति प्रांतीय रूप से क्षीण हो चली उसके कुशल नेता मर भुक्त व उसके अधीन के क्षेत्र व संरक्षित रियासतों उनकी निर्दोषता से इतनी विचित्र हो चुकी थी कि उसके बचने में व हर कीमत पर अपने आपको समझे समर्पित कर सकते थे जो उनकी छोटी बहुत बची हुई इज्जत की रक्षा कर सकें। ऐसी अवस्था में साईं बख्तखाने ने अपनी 'सहायक-प्रथा' की नीति प्रचलित कर मरहटा विरोधी संगठन करना शुरू किया। मरहटों की धारणी क्षमता ने उन्हें और अधिक प्रयत्न दिया और १८० ई० में बसीन के स्वातंत्र्य पर वेदव्या बाजीराव द्वितीय ने यह प्रथा स्वीकार कर भारत में अंग्रेजों की सार्वभौम शक्ति को स्वीकार कर लिया। विन्धिया और होस्कर के लिये यह प्रथमानुबंध बात थी। उन्होंने वेदव्या का विरोध किया व छोड़ा लिया। विन्धिया ने मुर्झी बख्तखाने की संधि में पूर्ण हथियारबान दिव्य होकर सड़ता रहा। साईं बख्तखाने ने होस्कर के विरुद्ध राजपूताना की रियासतों को अपनी और मित्राने की नीति अपनाई। अंग्रेज धन तक एक पाकताबर जमात के रूप में बन चुके थे। उनके सुसज्जित शासन-प्रबंध वैज्ञानिक ढंग पर लड़ने वाली युद्ध-प्रणाली तथा भारतीय शासकों को प्रांतीय रूप से स्वतंत्र बनाये रखने की नीति ने राजपूताने के शासकों को प्रभावित किया। कोटा का राजराजा फौजदार अशफा आसिफसिंह जिसने मरहटों का सामना करते २ राज्य को बियासिया बना दिया था ने इस नीति को पसंद किया। राजपूताने में अंग्रेजों के प्रवेश का सर्वप्रथम स्वागत किया गया।

१८४ ई० में होस्कर को हटाने के लिये बिस्ली से साईं सक बनता। बकिप से आर्चर बेसेवली ने सेवा सहित कृष्ण किया। साईं सक ने कर्नल माणसम और कप्तान लुक्स को राजपूताने की ओर भेजा जिससे पश्चिम की ओर

से होल्कर पर हमला किया जा सके। भाला जालिमसिंह ने जिसने अभी तक निश्चित तौर पर अबलोकन नहीं किया कि अंग्रेज-शक्ति को महयोग दे। मानसन को सहायता देने के लिये बुलाया था व ठाकुर आप अमरसिंह के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना की टुकड़ी भी भेजी। मुकन्दरे की घाटी में होल्कर ने कप्तान लूकन व आप अमरसिंह को घेर लिया। मुकन्दरा दर्रे के युद्ध में लूकन और आप अमरसिंह मारे गये। मानसन भागता हुआ कोटा में शरण लेने आया। जालिमसिंह ने उसका स्वागत नहीं किया और शरण नहीं दी। वह निराश हो दिल्ली पहुँचा।

जालिमसिंह ने पिंडारियों के साथ मित्रता की नीति अपनाई थी। अमीरखा पिंडारी को शेरगढ का क़िला देकर उससे मित्रता की और कोटा को पिंडारियों से मुक्त कराया। जब १८०७ ई० में सिंधिया ने ग्वालियर के किले में अमीरखा पिंडारी को कैद कर लिया तो जालिमसिंह ने धन देकर उसे छुड़ाया और भावी सुचरित्र का विश्वास दिलाया। पिंडारियों के कई व्यक्ति कोटा के जागोरदार थे। जालिमसिंह ने उनकी प्रतिष्ठा और मित्रता बनाये रखी। जालिमसिंह के पिंडारियों को मित्र बनाये रखने के २ कारण थे। प्रथम—कोटा में उनके कारण अशांति पैदा न हो, दूसरा कि उनकी शक्ति कोटा में बनी रहे। अपने विरोधियों का दमन करने के लिये यह आवश्यक था।

पिंडारी मरहठों की तरह अंग्रेजी सत्ता के लिये एक समस्या बन चुके थे। अतः जब १८१३ ई० में लार्ड हैस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन कर भारत आया तो पिंडारी एक अफलातून शक्ति बन चुके थे। मरहठों का प्रश्रय पाकर के ताकत-वर होते जा रहे थे। सन् १८१७ में हैस्टिंग्स ने पिंडारियों को समाप्त करने के लिये उनके विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। राजपूताना के शासकों से इस सबध में सहायता लेने के लिये लार्ड हैस्टिंग्स ने कर्नल टाड को जो कि उस समय सिंधिया दरवार में उप-रेजीडेंट था, राजराणा जालिमसिंह के पास भेजा। टाड ने जालिमसिंह से २३ नवम्बर १८१७ को रावटा के स्थान पर मुलाकात की^१ टाड-जालिमसिंह की यह प्रथम मुलाकात थी जो कालान्तर में गाढी मित्रता के रूप में परिणित हो गई। जालिमसिंह ने पिंडारी शक्ति के स्थान पर अपने को सुरक्षित रखने वाली अंग्रेजी शक्ति का मूल्य अधिक समझा। अतः पिंडारियों के दमन के लिये १५०० पैदल व घुड़सवार व ४ तोपें, अंग्रेजों को दी^२। सर जे माल्कम के नेतृत्व में यह सेना भेजी गई। पिंडारियों के दमन में कोटा सब तरह

१ उपरोक्त।

२ डीटी एंगेजमेंट व सनद, तृतीय भाग, पृ० ३५७ ३५८।

की जासूसी सूचना का केन्द्र हो गया था। जालिमसिंह की सहायता से विचारियों के नेता गिरफ्तार कर लिये गए। उसकी इस सहायता को धमक मूस न सके।

सन् १८१७ तक अंग्रेजों ने पेशवा सिंधिया घोर होल्कर को बुरी तरह हरा कर मरहूठा घक्ति का सर्वदा के लिये भारत में घात कर दिया। अंग्रेज अब प्रत्यन्त घक्तिशाली हो रहे थे। राजपूताने के शासकों से वे सभि-वार्ता कर निश्चित राजनैतिक सवध स्थापित कर सेना चाहते थे। इसके लिये भ्रामा जालिमसिंह पहल से ही तयार था। कोटा की घोर से महाराणा शिवदानसिंह सेठ जीबनराम व कामा हुसचन्द प्रतिनिधि बना कर दिल्ली भज गये। उन्होंने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि मेटकाफ से वार्ता की घोर २६ दिसम्बर सन् १८१७ में कोटा राज्य घोर अंग्रेजों में संधि हो गई जिसकी निम्नलिखित शर्तें थीं—

(१) अंग्रेज सरकार घोर महाराज उम्मेवसिंह एवं उसके उत्तराधिकारियों में सैफी का सवध रहेगा।

(२) संधि करने वास दोनों पक्षों में से एक पक्ष के अंग घोर मित्र दूसरे पक्ष के अंग घोर मित्र रहेंगे।

(३) कोटा राज्य अंग्रेजों की सरकारता में रहेगा।

(४) महाराज व उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों के आधिपत्य को मानने घोर अविव्य में उन राजाघों घोर रियासतों से संघष नहीं रखेंगे किमके साथ कोटा राज्य का सवध अब तक रहा है।

(५) अंग्रेज सरकार को पूर्व स्वीकृति के बिना कोटा के महाराज किसी अन्य राजा या राज्य के साथ किसी प्रकार की शर्तें तम नहीं करेंगे।

(६) महाराज व उसके उत्तराधिकारी किसी राज्य पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि ऐसा भ्रामा हुआ तो अंग्रेजी सरकार निर्णय करेगी।

(७) कोटा राज्य अंग्रेजों को मरहूठों (पेशवा होल्कर सिंधिया पंवार) को देता रहा है वह अंग्रेजों की सरकारता में रहेगा।

(८) कोटा किसी अन्य राज्य से कोई कर न ले सकेगा यदि ऐसा अधिकार प्राया तो इसका सत्तर अंग्रेजों की सरकार लेगी।

(९) आचमकता के अनुसार कोटा अंग्रेजों को सैनिक सहायता देगा।

(१०) महाराज घोर उसके उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से अपने राज्य के वासक रहेंगे। अंग्रेजों का आन्तरिक हस्तक्षेप न होगा।

इस प्रकार कोटा राज्य मुगल, मरहटो की अधीनना से मुक्त होकर अग्रजे की सत्ता के अधीन हो गया। कोटा ही राजपूताने का प्रथम राज्य था जिम्मे अग्रजे से इस प्रकार की सधि कर अन्य राज्यों के लिये ऐसी स्थिति पैदा करदी। जालिमसिंह की इस सेवा को अग्रजे कभी नहीं भूल सके और २० फरवरी १८१८ में जालिमसिंह के साथ अग्रजे की गुप्त सधि हो गई जिसके अनुसार यह तय हुआ कि महाराव उम्मेदसिंह के वश के ही कोटा राज्य के शासक रहेंगे और फौजदार व मुसाहिव का पद जालिमसिंह के वश में रहेगा^१। इस प्रकार की सधि ने कोटा राज्य में भगडो का श्रीगणेश कर दिया। अग्रजे ने १८१६ में चोमहला के परगने जालिमसिंह को देने चाहे पर उसने यह परगने कोटा में मिलने दिये। उम्मेदसिंह के जीवन काल में १८१७ की सधि को व्यवहारिक बनाने में कोई अडचन नहीं आई। उम्मेदसिंह १८२० में मर गया। उसके बाद उसका पुत्र किशोरसिंह गद्दी पर बैठा। जालिमसिंह चूकि वृद्ध और अर्धा हो चुका था अतः राज्य का कार्य उसका पुत्र माधोसिंह करने लगा। वह अनुभवहीन व उद्दण्ड था। महाराव उसकी निरकुशता से तग आ चुका था। अतः अपने छोटे भाई पृथ्वीसिंह और जालिमसिंह के दूसरे पुत्र गोरधनदास से मिल कर माधोसिंह का विरोध करना शुरू किया। कर्नल टाड, जो उस समय राजनैतिक प्रतिनिधि था, को यह लिख भेजा कि वह आंतरिक शासन में स्वतंत्र है। अतः २० फरवरी १८२० की गुप्त सधि को स्वीकार नहीं किया जा सका लेकिन टाड उक्त सधि की मान्यता पर जोर दे रहा था। वह महाराव को नाम मात्र का शासक मानता रहा। इस पर किशोरसिंह ने अग्रजे का विरोध किया। अग्रजे ने जालिमसिंह को सहायता दी और सन् १८२१ में मागरोल के युद्ध में अग्रजे की सहायता से जालिमसिंह ने किशोरसिंह को हरा दिया। किशोरसिंह हार कर नाथद्वारा पहुँचा। मेवाड के महाराणा की मध्यस्थता से पुनः महाराव किशोर और अग्रजे के बीच सधि हो गई जिसके अनुसार किशोरसिंह को १६४,४८८ रु का वार्षिक खर्चा प्राप्त हो गया और महाराव ने जालिमसिंह व उसके वश को कोटा के मुसाहिवआला का पद देना स्वीकार किया^२। १८२४ में जालिमसिंह की मृत्यु हो गई। माधोसिंह कोटे का दीवान नियुक्त हुआ।

किशोरसिंह की मृत्यु के बाद १८२४ ई० में उसका गोद लिया हुआ पुत्र रामसिंह गद्दी पर बैठा। उन्होंने स० १८३१ में अजमेर में लार्ड विलियम वैटिंग से भेट की और प्रतिष्ठा प्राप्त कर अग्रजे की सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर

१ उपरोक्त पृ० ३५६।

२ टाड राजस्थान, भाग ३, पृ० १६०२-१६०३।

सिया । १८४ ई० में माधोसिंह भाला की मृत्यु हो गई । उसका सड़का मन्त्र सिंह धौंजार बना । उसके घोर रावसिंह के बीच प्रारम्भ से ही घनघन होने लगी । एसी सम्भाना हाने लगी कि मुसाहिब मझला को निकालने के लिये उन भान्दालन होने वाला है । मदनसिंह मे घड़ेओं को मित्रता की याद दिसा कर उनकी सहायता प्राप्त करनी घोर उनकी राय से हो 'कोटा कोन्टिनेजेंट' सेना का निर्माण घड़ेओं ने किया जिसका सर्ज क़ोटा से लिया जाने लगा । मदनसिंह के इस दृष्टिकोण से रावसिंह क्रोधित हो उठे घोर घण जी सरकार ने इस पर महा राव की राय से मदनसिंह के लिये प्रथक राज्य को सधि करादी । कोटा राज्य के १७ परगन जिनको धामदनी १७ सारा घ थी मदनसिंह को प्राप्त हुए । नव राज्य का नाम मझसावाड़ राज्य पडा । इस सम्बंध में सन् १८३८ में कोटा राज्य घ घड़ेओं के बीच नई सधि हुई । महाराव के दर में सब ८००००० रु पडा लिय गय जो सब मझसावाड़ को देने पड़े । कोटा-कोन्टिनेजेंट' के निर्माण की स्वोदृष्टि महाराव ने देदी ।

कोटा राज्य में घण्डेओं का प्रमुख मझला राजनीति की देन थी । घण घण्डेकरण मे महाराव ने इसका स्वागत नहीं किया । घण्डेजी राज्य जिग विनाग की माचना की सेकर कोटा में प्रविष्ट हुआ—पश्चिमी तीर-नरीकों को पूर्वी तीर-नरीकों पर घण्डेखनीय रूप से साद देना—गत कोटा का जन जीवन राष्ट्रीय प्रवृत्ति व सैनिक बर्ग घण्डेजी राज्य के विरुद्ध जागृत हो गया । घण्डे यहो कारण है कि १८२७ की भारतीय क्रान्ति क समय कोटा का सैनिक घण्डे व जन-माधारण कोटा की घण्डेजी प्रभाव मे निवासने के लिये प्रयत्नशील रहा । १८२७ मे राजपूतान का १० जी० जी० आर्जे मारेंग या । महीरावा में घण्डेओं की लायनी बनी हुई थी । वही की सना मे घण्डेजा के विरुद्ध बिद्रोह कर दिया । मीमम की लायनी में गुर के बिगड़ दिगार्दे न्ने लग । बाटावा पोमीटिनम एजे मडर बडेन मीमम व बमारिन घानिगर बभन मन्नामहद की सहायता के लिये मीमम पहुँचा । राजा बानिनेर घोर जना में घण्डेओं क विरुद्ध घण्डेगीय वंला हुआ या । इमना नाम मन्नाम मझसावाड़ समी १८ का या । वही कारण है कि बा । महाराव मे मडर बडेन का पुन ना । आने क लिय घना दिया । मन्नाम बडेन मे रग घोर बार्ई ध्यान म।। या घोर मझ मे बाकर महाराव की बाधन काने लगी कि कि ओ लगी की राजकीय लक्ष्य ले हुवा लिये आरं व घण्डे व घण्डे । मझुबर १२ की मकर व न ध्यान २ मुनादलिया कोटा घण्डे । उमना कोन कोटा मे कि लव का भाव लेना व मन्नामिया की भावम

हो गया। अतः उन्होंने १५ अक्टूबर को रेजीडेंसी पर आक्रमण कर दिया। रेजीडेंसी के डाक्टर सालडर और मिस्टर सेविल मारे गये। मेजर बर्टन व उसके दोनो पुत्रो को मौत के घाट उतार दिया गया^१। कॅप्टेन ईडन ने ए० जी० जी० को सूचना देते समय (१८ अक्टूबर १८५७) इस बात का उल्लेख किया कि कोटा महाराव का बर्टन की हत्या में हाथ था^२। परन्तु कोटा नरेश के विरुद्ध कोई सबूत न मिल सका।

इन विद्रोहियो के नेताओं में लाला जयदयाल कायस्थ, मेहरावखा पठान व इसरारअली थे। बर्टन की हत्या के उपरांत क्रांतिकारियो ने कोटा पर अधिकार कर लिया। सरकारी कोठार, बगले, बाजार, तोपखाना, कोतवाली चौतरे पर कोटा कोटिनमेट के ही व्यक्ति अधिकार किये हुए थे। कई किलेदारो ने उनका साथ देकर राज्य का कोष उनके हवाले किया। शेरगढ में कोटा की सेना ने भी विद्रोह कर दिया। महाराव नजरबंद कर लिये गये। विद्रोही ६ माह तक कोटे के अधिकारी बने रहे^३।

महाराव ने ए० जी० जी० को खरीता भेजा और इस दुखद घटना पर दुःख प्रकट किया। महाराव ने सहायता के लिये कई मित्रो को खरीता भेजा। एक खरीता लेजाने वाला भैसरोड के जंगल में पकडा गया। उस समय विद्रोहियो के पास अग्नेजो से लगातार संघर्ष करने की पूरी ताकत थी। धीरे धीरे भैसरोड, गेता, पीपल्दा व कोपला के ठाकुरो ने महाराव की सहायता की। दोनो दलो में भयंकर युद्ध हुआ। ८०० विद्रोही मारे गये। महाराव के ३०० सैनिक मृत्यु के घाट उतरे^४। उसी समय करोली के शासक ने महाराव की सहायता के लिये सेना भेजदी। महाराजा मदनपाल ने १५०० सैनिक भेज कर चम्बल नदी के पूर्वी किनारे पर अधिकार कर लिया। उसी समय मथुरेशजी के गोस्वामी कन्हैयालाल की मध्यस्थता से महाराव और विद्रोहियो में वार्ता शुरू हुई। वार्ता १५ दिन तक चलती रही। उसी बीच करोली की सेना गढ में पहुँच चुकी थी। अग्नेजो की एक सेना मेजर राबर्ट के नेतृत्व में चम्बल के उत्तरी किनारे पर पहुँची। २२ मार्च १८५८ तक चम्बल के पश्चिमी किनारे पर विद्रोहियो का पूर्ण अधिकार था^५। करोली की सेना और मेजर राबर्ट के तोपखाने ने विद्रोहियो को

१ फोरेस्टर हिस्ट्री ऑफ दी इन्डियन यूनिटी, जिल्द ३, पृ० ५५६-५६।

२ खडगावत राजमथानस् रोल इर्न दी स्ट्रगल ऑफ १८५७, पृ० ६०।

३ उपरोक्त पृ० ६१।

४ डा० शर्मा कोटा राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ६७३।

५ खडगावत, पृ० ७३।

दबा दिया। प्रारम्भ में बिद्रोही सिर्फ़ भ्रमजों के विरुद्ध ही थे परन्तु अब महाराज ने सरीठे सिख कर भ्रमजों को अपनी सहायता के लिये बुलाया तो बिद्रोही महाराज के—भी विरोधी हो गए। यह बिद्रोह जन-सहयोग पर आधारित था नहीं तो न तो इतना व्यापक हो सकता था और न इतने समय तक कोटा का शासन बिद्रोहियों के हाथों में रह सकता था^१। भ्रमजों ने बिद्रोहियों को दबाने के लिये जिस घातक की स्थापना की वह स्पष्ट करता है कि कोटा में भ्रमजों विरोधी भावना कितनी प्रबल थी। कम्पनी के यूरोपिय सिपाहियों ने बर सूट, दुकानें सूटी व मन्दिरों की मूर्तियों के गहने छीन लिये। गुमानपुरा के एक कसाल ने बिद्रोहियों को धराम बेनी थी उस पर १५० रु ज़रमा किया गया। जयदमास पकड़ लिया गया और शोध से उड़ा दिया गया^२। महाराजसा को एजेंटी के पास वृक्ष पर सटका कर फांसी दी गई^३।

इस बिद्रोह को दबाने में महाराज ने भ्रमजों की सहायता अवश्य दी थी परन्तु क्योंकि मेजर वर्टन की हत्या कोटा में हुई थी अब महाराज की सत्ता की तोड़ें घटा कर १७ से १३ करदी गई। मेजर वर्टन का स्मारक बाग में स्थापित किया गया और कोटा के नागरिकों से बिद्रोह को दबाने का अर्च बसूक किया गया। 'कोटा-कॉन्टिन्जेंट' तोड़दी गई। उसके स्थान पर देवसो छावनी स्थापित कर भ्रमजों सेना रखी गई। रामसिंह की मृत्यु के पहले कोटा शासन की हारत बिगड़ने लगी।

राजकीय ऋण २ लाख रु. हो गया। रामसिंह व उसके मन्त्री इसे चुकाने की क्षमता नहीं रखत थे। सन् १८६१ में कोटा में गवीन शासन-ब्यवस्था स्थापित की गई जिसमें कोटा राज्य में पोलीटिकल एजेंट का हस्तक्षेप अधिक होने लगा। उसे की जाने वाली शिकायतें लिखित रूप में की जाने लगीं व उसका रिकार्ड पासकीक्षाने में सुरक्षित रखा जाने लगा। सन् १८६६ में रामसिंह की मृत्यु हो गई। उसका सड़का भीमसिंह क्षत्रुशास के नाम से गद्दी पर बैठा। १८६७ में क्षत्रुशास को पुन १७ तोपों की सत्तामी प्राप्त हो गई पर शासन की व्यवस्था इतनी गिरने लगी कि अन्त में महाराज ने भ्रमजों सरकार को एक सुयोग्य प्रबन्धन योजना के लिये लिखा। १८७४ में जयपुर के मृतपूर्व मंत्री नबाब फ़ैजधमी सां महादुर कोटा राज्य का प्रबंधक नियुक्त किया गया जो कि ए. बी. बी. की अध्यक्षता में शासनकर्ता बन गया। महाराज क्षत्रुशास राज्य के भीतर हस्तक्षेप

१ उपरोक्त पृ १५।

२ उपरोक्त पृ १७-१८।

३ डा. गर्गा के उपरवास को भी फांसी का होना सिद्ध है।

करने की मनाही करदी गई और खर्च के लिये एक धनराशि निश्चित की । २ वर्ष तक नवाव फैजअली कोटा रहा । १८७६ में कोटा का शासन पोलीटीकल एजेंट के सुपुर्द कर दिया गया जिसकी सहायता के लिये सदस्यों की एक कौंसिल का निर्माण हुआ । धीरे-२ जब राज्य की दशा सुधरने लगी तो राज्य का कुछ प्रबन्ध महाराव को दे दिया गया । विशेष कर दान विभाग, सेना विभाग, और गढ का प्रबन्ध । १८८१ में अफीम और नशीली वस्तुओं के अलावा व्यापारिक वस्तुओं के प्रचलन पर कर उठा दिया ।

१८८२ में अग्रेजी और महाराव के बीच नमक का समझौता हुआ । नमक बनाने व बेचने का अधिकार अग्रेजी राज्य को दिया गया । उसके बदले में अग्रेजी ने महाराव को १६,००० रु. वार्षिक देने का निर्णय किया । शत्रुशाल का ११ जून १८८६ को देहान्त हो गया । उसके स्थान पर गोद लिया हुआ उम्मेदसिंह महाराव बना । सन् १८६६ में कौंसिल तोड़दी गई और महाराव को शासन के पूर्ण अधिकार दे दिये गये । जनवरी १८६६ में अग्रेजी सरकार ने भालावाड के १७ परगनों में से १५ परगने पुन कोटा में शामिल कर दिये । फरवरी १८६६ में कोटा-बीना रेल-निर्माण के लिये इंडियन मिड-लैण्ड रेलवे कम्पनी ने समझौता किया । १९०१ में महाराव ने इंडियन पोस्टल प्रणाली कोटा में लागू की और अग्रेजी मुद्रा ने कोटा की मुद्रा का स्थान ले लिया । १९०४ में महाराव ने नागदा-मथुरा रेल-निर्माण के लिये मुफ्त में कोटा की जमीन देदी । १९१४ के महायुद्ध के समय कोटा के महाराव ने कोटा का सर्वस्व अग्रेजी राज्य के लिये दे दिया । युद्ध समाप्त होने पर अग्रेजी सरकार ने १६ तोपों की सलामी से महाराव को विभूषित किया । यह स्थिति १९४७ तक बनी रही जब कि भारत से अग्रेजी साम्राज्य समाप्त हो गया ।

अग्रेजी काल में १८५७ में जहाँ कोटा क्रांति में अग्रणी रहा वहाँ उसके पतन के बाद सामंती व औपनिवेशिक ढाँचे ने इतना कमजोर कर दिया गया कि अग्रेजी के विरुद्ध खड़े होने की लीगों में क्षमता ही नहीं रही । फिर भी भारतीय जन-जागृति का प्रभाव कोटा में भी पड़ा और कोटा में जो राजनैतिक जागृति हुई उसका श्रेय श्री अभिन्नहरि तथा उसके साथियों को दिया जाता है । उन्होंने सन् १९३१-के आन्दोलन में अजमेर जाकर भाग लिया तथा बाद में कोटा को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया । सन् १९४२ में कोटा में जन-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ । उसे दवाने के लिये भयंकर प्रयास किया गया । नये महाराव श्री भीमसिंह युग-गति के अनुसार चले । मार्च १९४८ में राजस्थान सघ स्थापित हुआ जिसकी

राजधानी कोटा रक्षी गई तथा कोटा महाराज राजप्रमुख बने। परन्तु बाद में चदमपुर के इन संघ में शामिल हो जाने पर मई १६४८ ई० में राजधानी उदमपुर तथा राजप्रमुख चदमपुर के महाराजा बनाये गये। भामसिंह उय राजप्रमुख बने। जब बृहत् राजस्थान बना तब फिर उय राजप्रमुख का पद कोटा के महाराज श्री भामसिंह को दिया गया। इस पर वह ३१ फरवरी १६२६ तक रहे। पृथ्वी नवम्बर से राजप्रमुख पद समाप्त कर दिया गया। राजस्थान-निर्माण के बाद कोटा की निरन्तर प्रगति हो रही है। अम्बल-योजना के पूर्ण होने पर ही यह एक प्रति समृद्धशास्त्री प्रदेश हो जायेगा।

कोटा राज्य के सरदार^१

कोटा राज्य के सरदारों को २ भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक राजबी और दूसरे क्षत्रीय सम्राट। राजबी कोटा प्रदेश के नजदीक के कुटुम्बी है। ठिकाना कोटरा बमोसिया शीगोद घामली खेरली घन्ता तथा मुडमी के जागीरदार किशोरसिंघोत घराने के हैं। इनसे दूसरे वर्ग में मोहनसिंघोत घराना है जिसके मुखिया पलायता के ठाकुर हैं। उन सभी को घाणवी कहा जाता है। इन्हीं घरानों से राज्य गद्दी के लिये गोव जाने की प्रथा है।

कोटा राज्य के क्षत्रीय सरदार एवं जागीरदार ३६ हैं। इनमें अधिक संख्या हाड़ा खोहानों को है। कोटा में ८ जागीरें हाड़ा बंस को एसी हैं जिन्हें कोटकी या कोटकियात कहते हैं। इन्द्रगढ़, बलवन जाठामी गेंठा करमड पीपलवा फसूड व घन्ता रहा है। ये जागीरें कोटा राज्य की १४ १६७ स. १३ आना किराज के रूप में देती हैं जिसमें से जयपुर राज्य को १४ ३२७ स. १४ भा ६ पाई दिया जाता है। ८ कोटकिया पहले बूंदी राज्य के मातहत थीं। इनका सूबा रमबम्बोर

१ 'सरदार' सामन्तों का दूसरा नाम है। यहाँ उन सामन्तों टाकुरों जागीरदारों के बेटों का विवरण दिया जाता है जो कौटा राज्य के अलग राजनीति तथा सामाजिक जीवन

लगता था। राजा सुर्जन हाडा ने जब रणथम्बोर का किला सन् १५६६ में अकबर को दे दिया तो मुगल शासको ने इन कोटडियो से खिराज लेना प्रारम्भ कर दिया। ई० स० १७६० में रणथम्बोर का किला जयपुर नरेश माधोसिंह के अधिकार में आ गया। जयपुर वालो ने मुगल परम्परा के अनुसार इन कोटडियो से खिराज मागा। इन ठाकुरो ने कोटा महाराव से सहायता मागी। ई० स० १८२३ में कोटा के दीवान राजराणा जालिमसिंह झाला ने सरकार की सलाह से खिराज जयपुर वालो को स्वीकार किया पर यह खिराज कोटा द्वारा प्राप्त किये हुए खिराज में से दिया जाता था जिससे इन कोटडियो पर कोटा का प्रभाव बना रहे। इन्द्रगढ और खातोली के सिवाय अन्य कोटडियो से जब नये जागीरदार गद्दी पर बैठते हैं तब नजराना लिया जाता है और महाराव को स्वीकृति के बिना ये गोद भी नहीं ले सकते। करवर, गेंता, फसूद और पीपलदा हरदावतो की कोटडिया कहलाती हैं। स० १६४६ में बादशाह शाहजहा ने बूदी के रावराजा भोज के बेटे हृदयनारायण के एक बेटे खुशहालसिंह को फसूद का परगना दिया था। खुशहालसिंह ने उसके चार भाग कर—करवर तो अपने पास रखा, गेंता अपने चचेरे भाई अमरसिंह को दिया, फसूद गजसिंह को और पीपलदा दौलतसिंह को दिया। पीपलदा का खास कस्बा चारो के सामने में रहा जो आज तक उसी तरह चला आ रहा है। कोटडियो के अलावा २४ जागीरदार ताजीमी हैं।

इन्द्रगढ—इन्द्रगढ कोटा से ४५ मील उत्तर की ओर है। उसे महाराज इन्द्रसाल ने स० १६६२ माघ वदि ८ को बसाया था। इन्द्रगढ में ६२ गाव जागीर के हैं जिनकी आय २,३२,८२२ रुपये है। कोटा राज्य को ये खिराज के रूप में १७५०६ रु १२ आना देते हैं जिसमें से ६६६६ रुपये जयपुर राज्य को दिया जाता है। तत्कालीन महाराज सुमेरसिंह को १६१७ अक्टूबर में छापोल ठिकाने से महाराज शंरसिंह ने गोद लिया था। इनका नजदीकी कुटुम्बी छापोल और जाटवारी के उमराव हैं।

बलवन—यहा के सरदार महाराज प्रतापसिंह बूदी के स्वर्गीय महाराजकुमार गोपीनाथ के पुत्र वैरीशाल के वंशज हैं। इस जागीर में २१ गाँव हैं जिनकी आय १६ हजार रु है। इस ठिकाने से कोटा राज्य का १७२८ रु खिराज के देने पडते हैं जिसमें ११२८ रु जयपुर राज्य को दिये

१ इन्द्रसाल का पिता गोपीनाथ था जो कि राव रत्न का पुत्र था और उसके शासन-काल में ही मर गया। महाराव इन्द्रसाल हाडा को शाहजहा के समय ८०० जात व ४०० सवार का मनसब प्राप्त था।

जाने थे। महाराज प्रतापसिंह १६२६ को राज्य के उत्तराधिकारी हुए थे।

सातोली—दण्डगढ़ व महाराज गजसिंह के दूसरे पुत्र प्रतापसिंह के दोननगाँव वि० सं० १७२६ (ई स १६७३) में सातोली छोली को घोर घनना ठिकाना स्थापित किया था। यह पार्वती नदी के किनारे बौटा नगर व उत्तर पूर में ६२ मास दूरा पर स्थित है जो कि पीपल्दा सहमीर में है। इस ठिकाना में ३७ गाँव हैं। नगे घसावा ७ गाँव स्थापित कर राज्य में लाये जा वि० सं० १८०७ (ई स १७५०) में निवपुर के राजा से प्राप्त हुए थे। इस जागिर की घामानी ८२५७८ रु है। बौटा व गिराज में ७६ रु रु स्थि जाग है घोर जगमे में जवपुर का हिस्सा २६८२ रु है। बामान जागदार महाराज भवानीसिंह है जिनका जन्म १६६० में हुआ घोर विना प्रतापसिंह की मृत्यु व बाद में १६६८ में ठिकाने के स्थापित हुए।

का स्वर्गवास ई० स० १६३० मार्च को हो गया था^१। इनको राजगद्दी १६३५ जून में प्राप्त हुई थी।

फसुद (पुसोद)—ठाकुर जगतसिंह का जन्म ई० स० १६०८ में हुआ था। इनकी जागीर में ६ गांव १७१६८ की आय वाले हैं जिस पर १००२ खिराज के दिये जाते हैं। इसमें सं ३३२ रु. जयपुर को मिलते हैं। जगतसिंह ठाकुर जयसिंह को गोद आये थे और १६१५ में ठिकाने के मालिक हो गये थे। पुसोद कोटा से ५१ मील उत्तर की ओर है।

पीपलदा—ठाकुर गुलाबसिंह की जागीर में २२००० रु० सालाना आय के ११ गांव हैं। खिराज के रूपयो में १००६ रु. कोटा को दिये जाते हैं। जयपुर का हिस्सा ३३१ रु १२ आने है। ठाकुर भारतसिंह का युवा-वस्था में ही देहान्त हो गया था इसलिये गुलाबसिंह जो इनके नजदीक कुटुम्बियो में थे, कोटा राज द्वारा ठिकाने के स्वामी बनाये गये।

अतरदा—अतरदा की जागीर में अन्तरदा तथा ६ गांव हैं जिनसे १५००० रु की सालाना आय होती है। खिराज के रु ३८२८ हैं जिसमें १०२८ रु जयपुर को प्राप्त होते हैं। वर्तमान जागीरदार वहादुरसिंह हैं। ये बूदी के गोपीनाथ के पौत्र सगतसिंह के वंशज हैं।

निमोला—निमोला इन्द्रगढ ठिकाने से निकला हुआ है। महाराज रणजीतसिंह इन्द्रसिंहोत खाँप के होने की वजह से इन्द्रगढ को ८२० रु. खिराज का देते हैं। इनकी जागीर में केवल एक गांव चम्बल नदी के दाहिने तट पर है जिसकी सालाना आय ६००० रु है। वर्तमान महाराज का जन्म ई. स १८७४ को हुआ और स्वर्गीय महाराज मोतीसिंह ने ई स १६०० में गोद लिया था^२।

कोयला—यह ठिकारणा कोटा राज्य के प्रथम नरेश राव माघोसिंह हाडा के चौथे पुत्र कनौराम ने स्थापित किया था। राज-दरवार में इनकी

^१ महाराज तेजसिंह के पूर्वज नाथजी थे जो अमरसिंह की तीमरी पीढी में थे। इन्होंने कोटा और जयपुर राज्य के बीच भटवाड़े के युद्ध में (१७६१ ई०) कोटा की ओर से लड़ कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। नाथजी के पुत्र शिवदामसिंह थे जिन्होंने कोटा राज्य के प्रतिनिधि की हैसियत से अंग्रेज सरकार के साथ सहदनामा किया। इस अवसर पर अंग्रेज सरकार ने इन्हे एक घोड़ा, एक हाथी व खिलअत तलवार प्रदान की जिनमें से पोशाक व तलवार अब तक इनके यहाँ सुरक्षित रखी हुई है।

^२ कोटा महाराज की महारानी इन पर बनी रही। अत महाराज अपने को इन्द्रगढ के अधीन न रख कर कोटा के चौथे दर्जे के सरदार बन गये। ८७१ व १४ आना माघोपुरी सिक्के खिराज के दाखिल करने हैं।

पहली बँटक होती है। ये ठाकुर के बजाय 'घाप' की उपाधि से सम्बोधित किये जाते हैं। इनकी जागीर में ११८२ व सासाना घाय में १ गाँव हैं। राज्य को य २१ १ व सासाना सिराज के देते हैं और १८१४ व पौने १२ घाने १० जमदयत के सवारों के एवज में य राज्य को सिराज देते हैं। इस ठिकाने के कुंवर पुष्पीसिंह राजमहल के युद्ध में जयपुर के माधोसिंह की ओर से ईश्वरीसिंह क बिरुद्ध लड़ा था। इस युद्ध में उसके कई घाव लगे थे। घाप अमरसिंह ने सन् १८०४ में गरोठ (इन्दौर के पास) की सड़ाई में प्रसिद्धि प्राप्त की थी जब कि वे अंग्रेजी सेना के कर्नल मानसन की तरफ से लड़ते हुए घायल हो गये थे। वर्तमान राजा भाप रघुराजसिंह हैं जो अपनी पीढ़ी के ११ वें आप हैं। घाप कोरा नरेश के ११८८ से मिष्टिटी गणित हैं। ये ११२२ से ११२७ तक राजस्थान विधान सभा के सलम्य भी रहे हैं। इनके पिता प्रियद्वियर जनरल राव बहादुर घाप गबिन्दसिंह कोटा राज्य की सेना के सेनापति रहे थे।

पत्तायता—कोटा राज्य के सत्पायक राव माधोसिंह क दूसरे पुत्र मोहनसिंह ने यदाय पत्तायता के घापजी कहलाते हैं। मोहनसिंह ने वि सं० १७०४ में ८४ गाँवों सहित पत्तायता ठिकाना स्थापित किया। मोहनसिंह वि सं० १७१२ (सन् १६२८) में फतेहाबाद क युद्ध में मारा गया। इस जागीर में अब पत्तायता तथा २ गाँव हैं जिनकी घाय २१ व सासाना है। यह ठिकाना कोटा राजधानी के पूर्व में २६ मील दूर कासी सिध मदी के दाय तर पर है। राज दरबार में इनका प्रमुख स्थान रहा है। और यहाँ के गरबार मजर जनरल घाप सर भीकारसिंह ही आई ई है। इनक पिता राव बहादुर घाप अमरसिंह रिजगो कोरिल के सदस्य ई ग १८७७ से १८१६ तक रहे। इन्होंने अपने प्रथम पुत्र कुंवर प्रतापसिंह को २ हजार का तथा दूसरे पुत्र भीकारसिंह को २ हजार व की जागीर राज्य में दियेवाई। कुंवर प्रतापसिंह की मृत्यु पर यह जागीर भी घाप भीकारसिंह को मिल गई। यह जागीर अन्ता भीर गागा परगने में है। घाप भीकारसिंह ने कोरा राज्य की सेवाय कई सों म की। ये पहल पुताग मद्रमे

१ यह बट और केव की बुराद व विरुद्ध राजा जयसिंह के बारा व सादरों की ओर के विरुद्ध था। इन बट व कोरनमेव की विरुद्ध हुई। बादनिवद काग धप मुदु रविद के साथ जयसिंह विरु का वल जयसिंह वट में प्रवेश हुए थे।

२ क रत्ता की पत्तायता का स्थान राज्य के एक ही बोरे के बाराद के दोनो एक साथ दारा के भी का है।

के जनरल सुपरिंटेंडेंट थे। फिर राज्य की सेना के सेनापति हो गये। १६३३ से राज्य के दीवान का काम करते रहे हैं।

कुनाडी—कुनाडी चम्बल नदी के बायें तट पर, कोटा नगर के सामने है। कुनाडी का ठिकाना कोटा नरेश राव मुकुन्दसिंह हाडा ने ई स १६४४ में देलवाडा (मेवाड) के राजराणा जीतसिंह भाला के तीसरे पुत्र अर्जुनसिंह को राज की उपाधि सहित इनायत किया था। यहां के सरदार राजचन्द्रसेन का प्रभाव कोटा में बहुत अधिक था। ये भाला राजपूतों के जेनाबत शाख के हैं। राज्य दरवार में इनकी प्रथम बैठक बाईं तरफ है। इस जागीर में २५००० रु आय के ८ गाव हैं। ये कोटा राज्य को खिराज के रूप में २६६० रु देते हैं। सरदार चन्द्रसेन के पिता राव बहादुर राजविजयसिंह विधानुरागी एव इतिहासप्रेमी थे। ई स १८८८ में वे राजरूपसिंह की मृत्यु पर देलवाडा (मेवाड) से गोद आकर कुनाडी के स्वामी हुए थे। चन्द्रसेन सन् १६२६ में कुनाडी के अधिकारी हुए थे।

बम्बुलिया—इस जागीर के स्वामी महाराज केशवसिंह हाडा महाराज किशोरसिंह के वंशज हैं^१। इनकी जागीर में ११ हजार रु की आय के ६ गाव हैं। यह ठिकाना कोटा राजधानी से पूर्व में ३४ मील है। राज्य को खिराज के रूप में २३५ रु देता है। सन् १६३४ में महाराज महताबसिंह के देहान्त पर वर्तमान महाराज इस ठिकाने की गद्दी के स्वामी हुए।

सरोला—कस्बा कोटा से ७० मील उत्तर पूर्व में है। और इस जागीर के स्वामी दक्षिणी सारस्वत ब्राह्मण पण्डित चन्द्रकान्त राव हैं जिन्हें दरवार में नरेश के बाईं ओर की दूसरी बैठक प्राप्त है। यह जागीर २७ हजार रु आय के ७ गाव की है। यहां के स्वामी राज्य को खिराज या चाकरी नहीं देते। यह जागीर ६२७३६४ रु में रहन रखी हुई है। इस घराने के सस्थापक बालाजी पण्डित पूना के पेशवा बाजीराव की सेवा में थे। जब मरहठों ने उत्तरी भारत पर चढ़ाई की तब कोटा राज्य से गुजरते हुए बाजीराव पेशवा ने बालाजी यशवन्त को बूंदी और कोटा दरवार से चौथ तय करने के लिये नियत किया था और बाद में बूंदी कोटा तथा उदयपुर (मेवाड) से ये खिराज वसूल करने पर भी नियुक्त हुए^२।

१ कोटा के चौथे नरेश महाराज किशोरसिंह के प्रपौत्र सूरजमल ने यह ठिकाना कायम किया था।

२ बाजीराव ने कोटा पर अधिकार कर महाराज दुर्जनशाल से ४० लाख रु प्राप्त किये। बालाजी यशवन्त नाम के एक कोकणस्थ सारस्वत ब्राह्मण को इस घन का हिसाब लेने के

घाटी—बूदी के राव वीरसिंह के पोते मेवासिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वंशजों में जोरावरसिंह महाराव भोमसिंह के साथ सन् १७३६ ई० में निजाम के मुकाबले में मारा गया। जोरावरसिंह के बेटे खुशहालसिंह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिये वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाड़े के युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष में घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाडाओं की कही जाती है जिसके अधिकार में २५०० रु वार्षिक आय के ४ गाव हैं।

खेडला के जागीरदार श्रीनल डावरी, खडेली, सारथल मडवी की जागीरें १००० रु वार्षिक आय की एक गाव की हैं। कोटडा की जागीर पहले भालरापाटण के मातहत थी। सन् १८६६ ई० में जब भालावाड के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटडा कोटा के अधिकार में आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु है और इसके अधीन में ४ गाव हैं। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाडा हैं।

बासाजी पंडित ने कोटा की भयना निवास-स्थान बनाया और सेनदेव की बुकान खोसी। बासाजी के पुत्र ने कोटा के राजराणा दोबान आसिमसिंह भामा से मित्रता बडाई और ई० स० १७६६ में जब होस्कर ने कोटा की बाना चाहा तब आसिमसिंह की सहायता की। मरहटा सेना की समझ-बुझ कर वापस कर दिया। उस समय कोटा राज्य ने इनसे २२७३६४ रु ऋण लिये थे और ई० स० १७७१ में सरोसा की जागीर इस ऋण के एवज गिरवी रखी गई। ई० स० १८१७ में अजय-कोटा-संधि के अनुसार मरहटों को दिया जाने वाला कर (सिराज) अजयों को दिया जाने लगा। बासाजी का जीव इकट्ठा करने बासा पद समाप्त हुआ पर सरोसा की जागीर पंडित गणपत राव के पास ही रही।

कचनावदा—ठाकुर मोतीसिंह हाड़ा इस जागीर के तत्कालीन स्वामी हैं। बूंदी के राज सुर्जन के तीसरे पुत्र रायमल ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। रायमल को बादशाह अकबर ने उम्दा सिद्धमल के एवज में पत्तायथा जागीर में दिया था। लेकिन रायमल के पोते हरीसिंह से वह जागीर छूट गई। हरीसिंह के बेटे दोमतसिंह को महाराज भीमसिंह ने सेरयल जागीर में दिया था। सन् १८३८ में सेरयल का इलाका अजय पाटण (अजयवाड़) में बसे जाने के कारण उसके एवज में ठाकुर मरपतसिंह को कचनावदा मिला। इस जागीर में ७३७७ रु वार्षिक आय के ३ गांव हैं। इनको राज्य को सिराज नहीं देना पड़ता है।

राजमड़—राज माधोसिंह के बेटे मोहनसिंह के एक पुत्र गोवर्धन ने इस जागीर का स्वामित्व स्थापित किया था। गोवर्धनसिंह बादशाह औरंग जद के पक्ष में युद्ध करते हुए दक्षिण में मारा गया था। उसका पुत्र बीसत सिंह महाराज भीमसिंह के साथ निजाम के बिरह युद्ध में काम आया और बीसतसिंह का पोता माधजी सन् १७६१ ई० में मटवाड़े की सड़ाई में काम आया था। माधजी के पोते देवीसिंह ने राजराणा आसिमसिंह का दूर करने में महाराज किशोरसिंह की बहुत मदद की थी। वह सन् १८२१ में मांगरोल के युद्ध में भागल होकर राजगढ़ आया। इस जागीर में ४००० वार्षिक आय के ३ गांव हैं और तत्कालीन जागीरदार माधोसिंह हाड़ा हैं।

लिये छोड़ा गया। कोटा राज्य ने मरहटों की अधीनता सन् १७६७ में स्वीकार करली थी। बासाजी बघवत की सेवा के उपलक्ष में महाराज सुर्जनबाब ने बरखेड़ी नामक इरबना जागीर में दिया। वेपदा ने उसको धपला बडीस बना कर कोटा राज्य में मिला कर दिया। हा मनुचमान घना कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृ १७२।

घाटी—बूंदी के राव वीरसिंह के पोते मेवासिंह ने इस जागीर की स्थापना की थी। उनके वंशजों में जोरावरसिंह महाराव भोमसिंह के साथ सन् १७३६ ई० में निजाम के मुकाबले में मारा गया। जोरावरसिंह के बेटे खुशहालसिंह को जागीर मिली परन्तु उसके पुत्र अजीतसिंह ने कोटा के दीवान को मार डाला इसलिए वह जागीर जप्त हो गई। अजीतसिंह के पोते गुमानसिंह ने भटवाड़े के युद्ध में जिस वीरता का प्रदर्शन किया उसके उपलक्ष में घाटी जागीर प्राप्त की। यह जागीर मेवावत हाडाओ की कही जाती है जिसके अधिकार में २५०० रु वार्षिक आय के ४ गाव हैं।

खेडला के जागीरदार श्रीनल डावरी, खडेली, मारथल मडवी की जागीरें १००० रु वार्षिक आय की एक गाव की हैं। कोटडा की जागीर पहले भालराषाटण के मातहत थी। सन् १८६६ ई० में जब भालावाड के १७ परगने कोटा को लौटाये गये तो कोटडा कोटा के अधिकार में आ गया। इस जागीर की वार्षिक आय २५३६ रु है और इसके अधीन में ४ गाव हैं। तत्कालीन महाराज दुर्जनसाल हाडा हैं।

कोटा के शासक

१	राम माधोसिंह सम्बत १६८८ से १७ ९	वर्ष १६८२-१६४६
	इसके ५ पुत्र थे—सुकुन्दासिंह मोहनसिंह नून्दासिंह कु बराम और किशोरसिंह	
२	सुकुन्दासिंह १७ ९-१७१४	१६४६-१६५७
३	जयसिंह १७१४-१७४१	१६५७-१६८४
	राम सुकुन्दासिंह के पति थे	
४	किशोरसिंह १७४१-१७४२	१६८४-१६९९
	राम सुकुन्दासिंह के छोटे भाई थे। उसके ३ पुत्र थे। विष्णुसिंह रामसिंह और हरनाथसिंह। विष्णुसिंह को मही से महकूम कर बाँटा की जागीर दी गई।	
५	रामसिंह १७४२-१७६४	१६९९-१७ ७
	न ४ के दूसरे पुत्र। इसके पुत्र भीमसिंह	
६	महाराज भीमसिंह १७६४-१७७७	१७ ७-१७२
	इसके तीन पुत्र—धर्मसिंह, स्वामिसिंह और कुर्बनशाह	
७	धर्मसिंह १७७७-१७८	१७२ -१७२३
	निःसन्तान मरे	
८	कुर्बनशाह १७८ -१८१३	१७२३-१७४६
	निःसन्तान मरे। न ७ के छोटे भाई थे	
९	सजीतसिंह १८१३-१८१६	१७४६-१७४६
	मस्ता से गोद धार्य हुए। इसके ३ पुत्र—सब शाह मुसामसिंह और रामसिंह	
१०	सब शाह १८१६-१८२१	१७४६-१७६१
	निःसन्तान मरे	
११	मुसामसिंह १८२१-१८२७	१७६३-१७७१
	न १२ के छोटे भाई। एक पुत्र—उम्मेदसिंह	
१२	उम्मेदसिंह १८२७-१८७६	१७७१-१८१६
	साथके तीन पुत्र—किशोरसिंह विष्णुसिंह व पृथ्वीसिंह	
१३	किशोरसिंह (द्वितीय) १८७६-१८८४	१८१६-१८२७
	निःसन्तान मरे	
१४	रामसिंह (द्वितीय) १८८४-१९२२	१८२७-१८६३
	न १२ के छोटे पुत्र पृथ्वीसिंह के पुत्र। इसका पुत्र भीमसिंह का जिसने अपना नाम राज राज रखा।	
१५	सब शाह (द्वितीय) १९२२-१९४५	१८६५-१८८८
	निःसन्तान मरे	
१६	नर उम्मेदसिंह (द्वितीय) १९४५-१९९७	१८८८-१९१६
	कोटा से बोर धार्य। एक पुत्र—धीरसिंह	
१७	नर भीमसिंह १९९७-२ ५	१९४

५ मार्च १९४८ को राजधानी-निर्वाण के नाश

महा जन बहादुर सागर न रहे। ३९६ वर्ग से ३७

मोनन बंधन सागर से १८५ वर्ग

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४	१	हकलेरा	डकलेरा
५	७	वडीदा	वडीद
	१४	११६०	११६०
	१५	४४०	४४०
७	१०	कोटा होता हुआ	होती हुई
८	१६	वसे वे सव	वसे वे
९	१	है वहा, कई	है कई
१०	२	आधुनिक क्षेत्र	आधुनिक ढग
११	१६	अग्नेजो के आने से पहले तक वन गई	शासन अग्नेजो के आने से पहले तक वन गया
१५	१४	अपराधो पर अर्थदण्ड	पर अर्थदण्ड
३०	४	स० १५१८	सन् १५१६
	६	सम्बत् १५२१	सन् १५२१
	१२	अम्बर का धाभाई	अकबर का
		गागरोल	गागरोण
	१७	(सम्बत् १७६४-१७७७)	सन् १७०७-१७२०
३१	२७	से गुजरते थे	से गुजरे थे ।
३४	८	(१३४३ ई०)	(१३४१ ई०)
३५	१३	सम्बत् १३२१ (१२७४ ई)	सम्बत् १४२१ (१३७४ ई)
४४	१६	वहख	बल्ख
४४	२०	"	"
४५	१२	"	"
५१	१	का प्रदर्शन करते हुए वीर-गति प्राप्त किया । उससे	का प्रदर्शन कर वीरगति को प्राप्त हुए, उससे
५४	१५	मुअज्जम मारा गया ।	आजम मारा गया ।
		आजम विजयी	मुअज्जम विजयी
५६	२६	मह	मऊ
५७	२	भीमसिंह व फरूखसियार का	भीमसिंह व फरूखसियार में
५८	२०	सत्यता निजाम की चालाकी के सामने नहीं चल सकी	सत्यता के सामने निजाम की चालाकी नहीं चल सकी ।
५९	फुटनोट	५	१
६२	फुटनोट ३	५ सख्या	५ सख्या ८०-८२

		पार्लोनी सिधिया	जनकोजी सिधिया
१४	२४		
१५	१		
	१	— १२५ की	इसका रेखांत वि सं १८१२ की
	२२	जबरोजी	जनकोजी
	२३	मुळ मरवाड़े	मुळ मटवाड़े
१७	फुटनोट २	७ जनवरी १७६१	१४ जनवरी १७६१
१७	फुटनोट ५	मरवाड़ा	मटवाड़ा
	" (२)	पंचरत्न पठाका की जाल विद्या	पंचरत्नी पठाका की हुटा विद्या
११	१८	रामादेव	रामनदेव
७०	फुटनोट १(३)	महापानी सिधिया	महावाजी सिधिया
७१	फुटनोट (४)	पू सं --	पू सं १७
७२	फुटनोट ३(२)	बैमसिंह	बैबीसिंह
७३	१	इससे पंचेजी सेना	इससे पंचेजी सेना
	फुटनोट १	१	१
	फुटनोट ३	३	३
७६	फुटनोट १	मही पुस्तक पृ	पृ ११७
	११	जम्बाजी	जम्बाजी
	फुटनोट ३	जम्बाजी	जम्बाजी
७७	फुटनोट २	मही पुस्तक फुटनोट १	मही पुस्तक पृ ७५
७९	फुटनोट २(३)	नामप्रय हो सकेया	नामप्रय हुआ
८	१३	जाबरोण	जाबरोण
	१८	गजरोब	पाबरोण
	१९	सुमिकर प्रबन्ध सुवार	सुमिकर प्रबन्ध
८८	फुटनोट १(३)	से मुळ	से मुळ
९४	फुटनोट १(३)	माधवाड के ममरसिंह	ममरसिंह
१ १	१४	सं ११३६	सम् ११३६
१ १	फुटनोट २	मरवाड़ा	मटवाड़ा
१ २	७	(सन् १११८)	(सन् ११८)
१ ६	१	१३ की सताजी के धर्मिय	१४ की सताजी के धर्मिय
		बरण १२७४ ई	बरण १३७४ ई
१२७	१७	सरदेबमुजी	सरदेबमुजी
	धर्मिय	सहायक	सहायक
१२८	फुटनोट	तिभरजल	तिभरजल
१३	८	जनकोजी	जनकोजी
१३२	११	महापानी सिधिया	महावाजी
१३३	१	मुजब	मुजब
१३६	१६	जम्बाजी के भाई	जम्बाजी के भाई
१४३	४	१८१८	१८२

OPINION

It is a matter of great congratulation that History of Rajasthan, and its component Princely States have found their own Historians. The work of M M Gaurishanker Ozha has been carried on by his worthy successor—the late Jagdish Singh Gahlot whose History of Kotah has just been published and provides a worthy monument to his great historical researches. It is not only a book of history but a comprehensive Gazetteer of Kotah—presenting a description of this state from all points of view. To a comprehensive political history has been added materials for its social, religious and cultural life. In presenting the political history—the distinguished author has pressed into service all sources of information with authoritative bibliographical references—which throw a new light on the History of Kotah. It is to be hoped that competent successors will be found to carry on the great work of the late Jagdish Singh Gahlot.

Chief Editor,
'Rupam',
Calcutta

O C GANGOLY